आप्तवाणी, कैसी क्रियाकारी!

यह 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी है और फिर ताज़ी है। वर्तमान पर्याय हैं इसलिए उन्हें पढ़ते ही हमारे सभी पर्याय बदलते जाते हैं और वैसे-वैसे आनंद उत्पन्न होता जाता है। ऐसे करते-करते यों ही समकित हो जाए किसीको! क्योंकि यह वीतरागी वाणी है। राग-द्वेष रहित वाणी हो तो काम होता है, नहीं तो काम नहीं होता। महावीर भगवान की वीतराग वाणी थी, उसका असर आज तक हो रहा है, २५०० वर्ष हुए फिर भी उसका असर होता है, तो 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी का भी असर होता है, दो-चार पीढ़ियों तक तो होता ही है।

वीतराग वाणी के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है, मोक्ष में जाने के लिए।

\- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

ISBN 978-81-89933-73-9

Price: ₹

Printed in India

आप्तवाणी श्रेणी ४

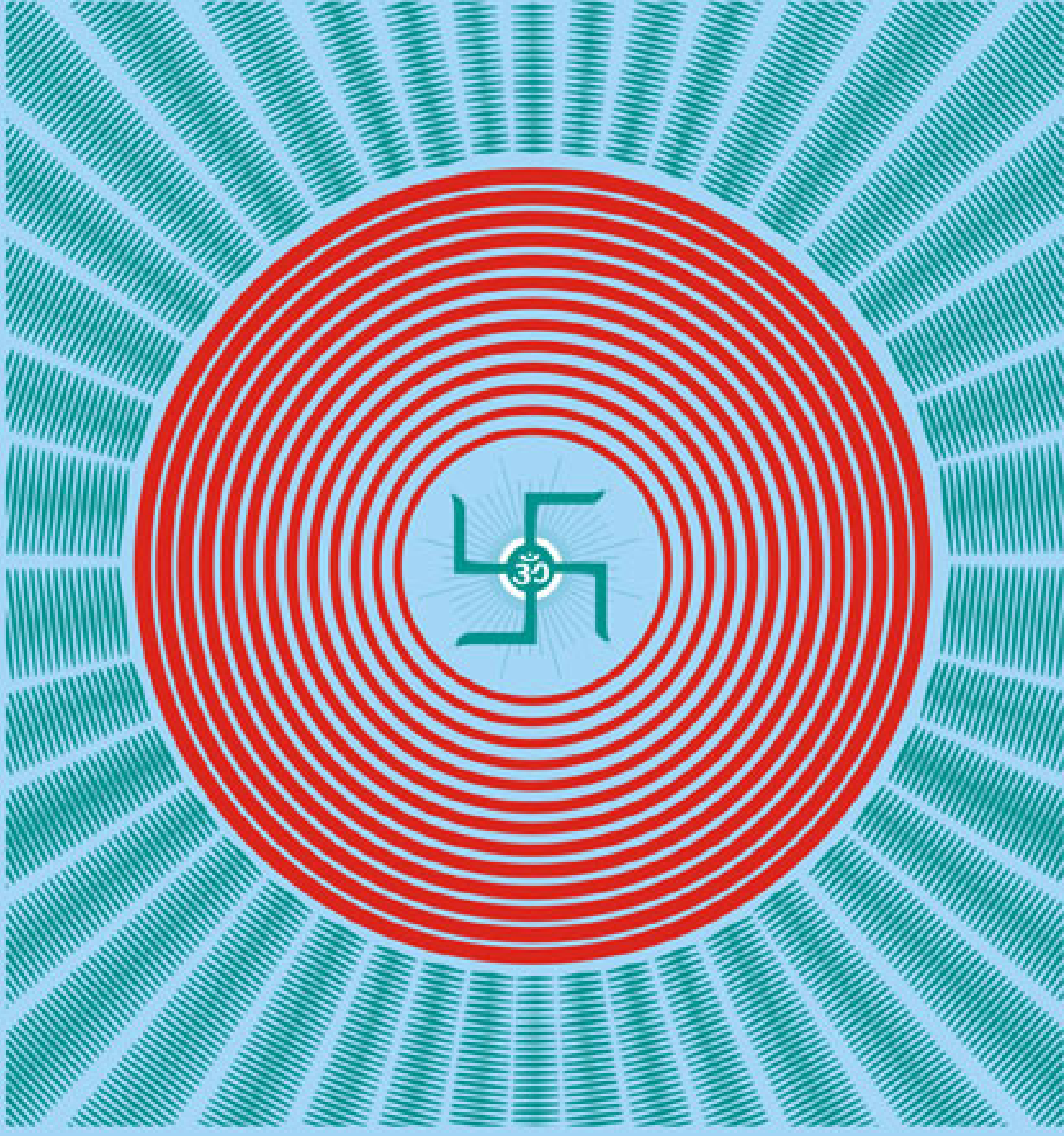

आप्तवाणी श्रेणी - ४

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी-४

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसाइटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन - (०७९) २७५४०४०८, २७५४३९७९

©
All Rights reserved - Shri Deepakbhai Desai
Trimandir, Simandhar City,
Ahmedabad-Kalol Highway, Post - Adalaj,
Dist.-Gandhinagar-382421, Gujarat, India.

प्रथम संस्करण : प्रतियाँ ३०००, नवम्बर २०१०

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : ७० रुपये

लेसर कम्पोज़ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन (प्रिन्टिंग डिवीज़न),
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नए रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (०७९) २७५४२९६४, २७५४०२१६

त्रिमंत्र

समर्पण

आधि, व्याधि, *उपाधि* के त्रिविध कलियुगी ताप में भयंकर रूप से ताप्यमान, एकमात्र आत्म-समाधिसुख के तृषातुरों के परम तृप्ति काज, प्रकट परमात्मास्वरूप स्थित वात्सल्यमूर्ति 'दादा भगवान' के जगत कल्याण यज्ञ में आहुति स्वरूप, परम ऋणीय भाव से समर्पित।

आप्त-विज्ञापन

हे सुज्ञजन ! तेरा ही 'स्वरूप' आज मैं तेरे हाथों में आ रहा हूँ ! उसका परम विनय करना, जिससे तू स्वयंम के द्वारा तेरे 'स्व' के ही परम विनय में रहकर स्व-सुखवाली, पराधीन नहीं हो ऐसी, स्वतंत्र आप्तता का अनुभव करेगा !

यही है सनातन आप्तता है। अलौकिक पुरुष की आप्तवाणी की !

यही सनातन धर्म है, अलौकिक आप्तता का !

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरूष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का विज्ञान
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. प्रेम
२९. क्लेष रहित जीवन
३०. अहिंसा
३१. सत्य-असत्य के रहस्य
३२. चमत्कार
३३. पाप-पुण्य
३४. वाणी, व्यवहार में...
३५. आप्तवाणी-१
३६. आप्तवाणी-४

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होती है।**

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया, बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिन्दी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो ''हमारी हिन्दी याने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी का मिक्सचर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।''

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गये शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गये वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गये हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गये हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गये हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में दिये गये हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

❖ ❖ ❖

आप्तवाणियों के हिन्दी अनुवाद के लिए परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से आज से पच्चीस साल पहले निकली इस भावना के फलित होने की यह शुरूआत है और आज आप्तवाणी-४ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणीयों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, उसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-४ का हिन्दी रुपांतर है।
- इस 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द को संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।
- जहाँ-जहाँ 'चंदूलाल' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें।

संपादकीय

विश्व निमित्त नैमित्तिक निरंतर प्रवर्तनशील ही है। मूल अविनाशी द्रव्यों के संयोग-संबंध का यह विशेष परिणाम है। विशेष परिणाम का विलय और स्व-स्वभाव का स्थितिकरण हर एक जीव की कामना है। निमित्त द्वारा ही छूट सकता है। और वह आत्यंतिक मुक्ति दिलवानेवाले एकमात्र निमित्त आत्मानुभवी प्रकट 'ज्ञानी पुरुष' हैं। जिनके संयोग संबंध से मुक्तदशा अनुभवगम्य निश्चित है, ऐसा वर्तमान काल में अनेकों का अनुभव है।

जो ज्ञान सामान्य रूप से ज्ञान कहा जाता है, वह 'ज्ञानी' की दृष्टि से बुद्धि का आविर्भाव है। यथार्थज्ञान, आत्मज्ञान पारंपरिक ज्ञान से लाखों मील दूर है। आत्मविज्ञान स्वरूप से है। जिसने आत्मविज्ञान जान लिया, वह जीवनमुक्त हुआ। ऐसे ये 'ज्ञानी' अनेकों को मिले और उन्हें जीवनमुक्त दशा मिली। हर एक को यह प्राप्त हो, यही अभिलाषा!

आत्मा निःशब्द है, अवाच्य है, फिर भी प्रकट परमात्मा को स्पर्श करके प्रकट हुए संज्ञासूचक शब्द हृदय बींधकर, अनंत आवरण भेदकर आत्मा को 'केवल' तक प्रकाशमान करते हैं। वैसी अनुपम वाणी को 'आप्तवाणी' में अंकित करके ज्ञानपिपासुओं तक पहुँचाने का अल्प प्रयास हुआ है। आप्तवाणी ऐसे तो परोक्ष रूप में ही है, परन्तु वर्तमान में विद्यमान 'ज्ञानी पुरुष' की आभा अवश्य हृदयभेदी बनकर वाचकों के लिए सम्यक् दर्शन के द्वार को खोलनेवाली बनेगी। उससे प्रकट होनेवाला दर्शन जीवन में धीरे-धीरे अंगुलिनिर्देश करते-करते अंतिम ध्येय, 'केवल आत्मानुभूति' के शिखर साध्य करके ही रहेगा।

आप्तवाणी श्रेणी-४ में, जगत् ने कभी जाना नहीं हो, कल्पना नहीं की हो वैसे गहन निराकरणवाले हल को सादी, सीधी, सरल, स्थानीय भाषा में परम पूज्य श्री दादा भगवान के श्रीमुख से प्रवाहित प्रत्यक्ष सरस्वती को संकलित किया गया है।

सामान्य रूप से जगत् जिसे जागृति कहता है, ज्ञानी तो उसे निद्रा कहते हैं! जिसे दृष्टा मानते हैं, वही दृश्य है। 'मैं जागृत हूँ' वह भान जिसे बरतता है

वही अनात्म विभाग है। आत्मप्रदेश तो उससे बिल्कुल ही न्यारा है।

'रिलेटिव' और 'रियल' का तादात्म्य इतना अधिक प्रवर्तित होता है कि निन्यानवे तक दोनों समानांतर, दरअसल 'रियल' के प्रतिबिंब (फोटो) के स्वरूप में भास्यमान 'रिलेटिव' सामीप्यभाव में तादात्म्य रूप से प्रवर्तते हैं। जिस अंतिम कड़ी के माध्यम से वे दोनों भिन्न होते हैं, उसका रहस्य अनुभवी 'ज्ञानी पुरुष' द्वारा ही प्रकाशमान होता है। वहीं पर भ्रांतजागृति और आत्मजागृति का भव्य भेद अनुभव में आता है।

कितने ही काल से प्रारब्ध और पुरुषार्थ के भेद के स्पष्टीकरण के लिए मंथन हुआ है। अनुभवी 'ज्ञानी' उस भेद को बताकर भी गए हैं। परन्तु परोक्ष ज्ञान की प्रवर्तना में उनकी यथार्थ समझ पूर्णरूप से विछिन्न हो गई है। सामान्यरूप से कर्तृत्व के भान को, वैसे प्रयत्नों को और उनके परिणामों को पुरुषार्थ माना जाता है। 'ज्ञानी' की दृष्टि से वह संपूर्ण प्रारब्ध है। पाँच इन्द्रियों से, मन से, जो कुछ भी प्रवर्तन होता है, वह सब प्रारब्ध के अधीन है। पुरुषार्थ विभाग सूक्ष्म है, जिसकी थाह पाना कठिन है। जीव-मात्र से भ्रांत पुरुषार्थ होता ही रहता है। जिसके आधार पर जीव का कारण-कार्य का कालचक्र अविरत रूप से गतिमान रहता है। यथार्थ पुरुषार्थ प्रकट होने पर वह विराम पाता है। यथार्थ पुरुषार्थ पुरुष होने के बाद ही परिणाम में आता है। यथार्थ पुरुषार्थ अखंड, अविरत और निरालंब है, जिसकी जागृति से निरंतर मुक्त दशा प्रवर्तती है।

विश्व में वस्तुओं की कमी नहीं है, परन्तु उनकी प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि खुद के ही डाले हुए अंतराय उन्हें रोकते हैं। इन अंतरायों के रहस्य, वैसे ही उनसे जागृत रहने की सभी गुह्य चाबियाँ प्रकट 'ज्ञानी पुरुष' ने सरल और सहज रूप से स्पष्ट की है।

कर्म क्या है? कर्म किससे बंधते हैं? किससे छूटते हैं? कर्म की माता कौन? पिता कौन? इत्यादि, इत्यादि उठनेवाले गुह्य प्रश्नों का निराकरण होना अति कठिन है। शास्त्र सबकुछ कहते हैं, परन्तु वे दिशानिर्देश के समान है। दृष्टि में फर्क होने से उत्तर दिशा का निर्देश, दक्षिण का मानकर चलते जाते हैं।

फिर दिल्ली कहाँ से आए? और चरम प्रकार का स्पष्टीकरण देने में तो शास्त्र भी असमर्थ हैं, वहाँ पर तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही काम है। कर्म जैसे अति-अति गुह्य विषय का ज्ञान परम पूज्य दादाश्री ने सहज रूप से खेल-खेल में ही समझा दिया है।

वाणी टेपरिकॉर्ड है, सर्वप्रथम ऐसा कहकर वाणी के बारे में सारी तन्मयता को परम पूज्य दादाश्री ने फ्रेक्चर कर दिया है। यह 'रिकॉर्ड' किस प्रकार बजता है। किस प्रकार 'रिकॉर्ड' तैयार होता है? उसके क्या-क्या परिणाम हैं? वगैरह वगैरह सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्य खोलकर, वाणी का विकट विज्ञान सामान्यजन को भी पूज्य दादाश्री ने समझा दिया है।

ऐसे अन्य अनेक विषयों के रहस्य प्रकट किए हैं। जिन्हें, हो सके उतने प्रकाशित करने के प्रयत्न किए गए हैं। आशा है, पोज़िटिव जीवनलक्षी विचारक, तत्वचिंतक, जिज्ञासुओं, वैसे ही मुमुक्षुओं को आप्तवाणी प्रति क्षण की जागृति देनेवाली बनी रहेगी।

प्रस्तुत ग्रंथ की कमियाँ एक मात्र, 'ज्ञानी पुरुष' के श्रीमुख से प्रवाहित हुई प्रत्यक्ष सरस्वती को परोक्ष में परिणमित करने में उपजी हुई संकलन की खामी ही है, जिसकी हृदयपूर्वक क्षमा प्रार्थना...

- डॉ. नीरूबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

[१] जागृति

'खुद' आत्मा है, पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशमान करने की क्षमता रखता है, 'खुद' अनंत शक्ति का धनी है। फिर भी ये सारी लाचारी, वेदना, दु:ख, नि:सहायता अनुभव करता है। यह कितना बड़ा आश्चर्य है! इसका कारण क्या है? खुद के स्वरूप का, खुद की शक्ति का, खुद की सत्ता का ही 'खुद' को भान नहीं है। एक बार 'खुद' जागृत हो जाए तो पूरे ब्रह्मांड के स्वामी जैसा सुख बरते।

पूरा जगत् भावनिद्रा में फँसा हुआ है। इस लोक और परलोक के हिताहित की अभानता, क्रोध-मान-माया-लोभ, मतभेद, चिंताएँ, ये सभी भावनिद्रा के कारण टिके हुए हैं। पौद्‌गलिक जागृति में पूरा जगत् खोया हुआ है, जब कि ज्ञानी तो आत्मिक जागृति में, केवल आत्मा में ही रमणता करते हैं। संपूर्ण जागृति, वह केवलज्ञान है, जागृति सौ प्रतिशत तक पहुँचे तब केवलज्ञान प्रकट होता है।

जागृति ही मोक्ष की जननी है। संसार-जागृति की वृद्धि होने से संसार असार लगता है, जो अंत में उत्कृष्ट वैराग्य में परिणमित होता है। और जागृति की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ इन्द्रिय ज्ञान कभी भी मतभेद में नहीं पड़ता, 'एवरीव्हेर एडजेस्टेबल' होता है। बाक़ी, अजागृति में ही क्रोध-मान-माया-लोभ का उपार्जन होता है। कषाय हुए उसका पता भी नहीं चले - वह महान अजागृत, उसका पता चले - वह कम अजागृत और जो ऐसा होने के बाद प्रतिक्रमण करके धो डाले - वह जागृत कहलाता है। और सच्चा जागृत तो कषाय होने से पहले ही मोड़ ले - वह। कषायों को खुराक दे दे, वह भयंकर अजागृत कहलाता है।

निज के दोषदर्शन जागृति की निशानी है। अन्य के दोषदर्शन जागृति पर भयंकर आवरण लानेवाले होते हैं। 'ज्ञानी' जागृति के 'टॉप' (शिखर) पर बिराजे हुए होते हैं। खुद के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूलों के, जो कि जगत् में किसीको बाधक नहीं होते, उन्हें ज्ञान में देखते हों और धो डालते

हों, खुद निर्दोष होकर पूरे जगत् को निर्दोष देखें, वह जागृति की अंतिम दशा कहलाती है। सर्वोच्च जागृति कौन-सी, कि किसीके साथ बात करें, तब उस लक्ष्य सहित करें कि सामनेवाला व्यक्ति वास्तव में तो शुद्धात्मा ही है।

क्रमिकमार्ग में भावजागृति को सर्वोत्तम माना है, जब कि अक्रम में तो भावाभाव से परे ऐसी स्वभावजागृति, 'ज्ञानी-कृपा' से सहज ही उत्पन्न हो जाती है। ज्ञाता-ज्ञेय रूप में संपूर्ण ज्ञान निरंतर हाज़िर रहे, वह संपूर्ण जागृति कहलाती है। 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा में निरंतर रहा जाए, वह ऊँची जागृति कहलाती है। जीव-मात्र के भीतर शुद्धात्मा दर्शन का उपयोग रहे, वह भी ऊँची जागृति मानी जाती है।

प्रथम व्यवहार जागृति जगती है। उसके बाद व्यवहार में सोए और अध्यात्म में जागृति जगती है। व्यवहार जागृति में आया कब कहलाता है कि कहीं भी टकराव में नहीं आए, मतभेद नहीं हो। व्यवहार जागृति में कषाय खूब होते हैं, जब कि निश्चय जागृति में कषाय निर्मूल हो गए होते हैं! अंत:करण की प्रत्येक क्रिया में जागृत, वह सच्ची जागृति! जागृति की शुरूआत में खुद से कोई कभी भी क्लेशित नहीं होता, उसके बाद दूसरों से खुद कभी भी क्लेशित नहीं होता और अंतिम जागृति में तो सहज समाधि रहती है।

कुंडलिनी जागृति या मेडिटेशन, वे जागृति को बढ़ानेवाले नहीं हैं, परन्तु अहंकार को बढ़ानेवाले हैं। मेडिटेशन एक प्रकार की मादकता ही है। जलन में जागृति विकसित होना संभव है, जब कि मेडिटेशन की मादकता से जागृति पर राख फैल जाती है!

खुद के स्वरूप की जागृति में आए, तब से लेकर ठेठ केवलज्ञान तक की जागृति में आ चुके जागृत पुरुषों की भजना से उस दशा तक की जागृति प्राप्त हो ऐसा है! संपूर्ण जागृत, आत्यंतिक कल्याण के परम निमित्त ऐसे वीतराग तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी जो वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान हैं, उनके साथ ज्ञानी कृपा से तार जोड़कर, उनकी निरंतर

भजना से उनके चरणकमल में स्थान प्राप्त किया जा सकता है, जहाँ से मोक्ष संभव है।

भौतिक में जगत् जागता है, वहाँ ज्ञानी सोते हैं और अध्यात्म में जगत् सोता है, वहाँ ज्ञानी जागते हैं! संसारी जागृति अहंकार सहित है और जहाँ निर्‌अहंकारी जागृति है, वहाँ मुक्ति!

[२] ध्यान

ध्यान क्या है? ध्यान, वह करने की चीज़ नहीं है। ध्यान तो सहज ही उत्पन्न होता है। ध्यान, वह परिणाम है। जगत् जिसे ध्यान कहता है, वह ध्यान, ध्यान नहीं है, पर एकाग्रता है।

वीतरागों ने चार प्रकार के ध्यान बताए हैं। कोई गाली दे, तब अंदर उल्टे परिणाम खड़े हों, रौद्र परिणाम खड़े हों, उन्हें रौद्रध्यान कहा है और उन परिणामों का असर खुद को और सामनेवाले को भी पहुँचता है! अब यदि वह असर खुद तक ही सीमित रहे, अन्य को सहज भी चोट नहीं पहुँचाए, वह आर्तध्यान है। मेरा क्या होगा? भविष्य की चिंता, वह आर्तध्यान में समाता है। असर करनेवाली घटनाओं में, ऐसा परिणाम खड़ा हो कि यह तो मेरे ही कर्म का उदय है, सामनेवाला निमित्त है, निर्दोष है, तो वह धर्मध्यान है। खुद का स्वरूप शुद्धात्मा है, वैसा निरंतर लक्ष्य में रहे, सामनेवाले में शुद्धात्मा के दर्शन होते रहें, वह शुक्लध्यान।

ध्येय नक्की हो जाए और खुद ध्याता हो जाए, फिर दोनों का संयोजन हो जाए, तब ध्यान सहज ही उत्पन्न होता है। ध्येय नक्की होने में अहंकार का अस्तित्व है, ध्यान में नहीं। क्रिया में अहंकार होता है, ध्यान में नहीं। क्रिया ध्यान नहीं है, पर क्रिया में से जो परिणाम उत्पन्न होता है, वह ध्यान है, जिसमें अहंकार नहीं है। ध्यान किया नहीं जाता, हो जाता है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान हो जाता है। कोई उन्हें करता नहीं है, धर्मध्यान और शुक्लध्यान भी सहज हो जाते हैं। आर्तध्यान हो जाने के बाद यदि 'मैं आर्तध्यान कर रहा हूँ' वैसी मान्यता घेर ले, वहाँ अहंकार है। आर्त, रौद्र और धर्मध्यान में ध्याता अहंकार है। शुक्लध्यान में अहंकार ध्याता नहीं

है, वह तो स्वाभाविक परिणति है, शुक्लध्यान - वह आत्मपरिणति है।

आत्मध्यान के अलावा अन्य किसी ध्यान का मोक्ष के लिए महत्व नहीं है। आत्मध्यान निरंतर समाधि में रखता है।

राग-द्वेष निकालने के लिए ध्यान नहीं करना है। वीतराग विज्ञान समझें, तब राग-द्वेष जाते हैं।

[३] प्रारब्ध-पुरुषार्थ

प्रारब्ध और पुरुषार्थ की भेदरेखा समझे बिना 'खुद' का कर्त्तापन, अकर्त्तापन कितना है, वह खुद को कैसे समझ में आए? पूरा जगत् इस अनसुलझी पहेली में फँसा हुआ है। दरअसल पुरुषार्थ-धर्म में आए हुए 'ज्ञानी पुरुष' के बिना कौन यह भेद प्राप्त करवाए? विश्व में इस काल में प्रथम बार प्रारब्ध और पुरुषार्थ के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद संपूज्यश्री दादाश्री की वाणी द्वारा प्रकट हुए हैं, जो मुमुक्षुओं को नई राह दिखाते हैं।

पाँच इन्द्रियों से जो-जो होता है, वह पुरुषार्थ नहीं है, सबकुछ प्रारब्ध ही है। सुबह से शाम तक भागदौड़ करते हैं, नौकरी-धंधा करते हैं, श्वास लेते-छोड़ते हैं, पुस्तक पढ़ते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं, सामायिक करते हैं, जप-तप करते हैं, वह सारा ही प्रारब्ध है। भोजन खाने के बाद पाचन में हमारा क्या पुरुषार्थ है? 'हमारी' दख़ल के बिना कुदरत अंदर की मशीनरी इतने सुंदर प्रकार से चलाती है तो क्या वह बाहर का नहीं चला लेगी? वास्तव में तो वही चलाती है। पर उससे संबंधित अज्ञान के कारण अहंकार किए बिना रह नहीं सकता कि 'मैं करता हूँ'!

नर्मदा के नीर में बहते हुए बड़े पत्थर आमने-सामने रगड़ खाते हुए, टकराते हुए, अंत में नदी के मुहाने पर शालिग्रामवाले देवता बन जाते हैं। उसमें किसीका क्या पुरुषार्थ? और दूसरे पत्थर, पत्थर ही रहकर समुद्र में डूब गए, उसमें उनका क्या प्रमाद? इसमें किसका, कितना कर्त्तापन? यह तो जिसे जो संयोग मिला, वैसा हुआ! समसरण मार्ग में, धक्के खाते हुए, टकराते हुए जीव अंत में हिन्दुस्तान में जन्म पाते हैं और उसमें भी

यदि कभी समर्थ 'ज्ञानी पुरुष' से भेंट हो जाए और उनके द्वारा समकित प्राप्त हो गया तो हो गया शालिग्राम! समकित होने के बाद ही 'पुरुष' होकर 'रियल' पुरुषार्थ में आता है, तब तक भ्रांत पुरुषार्थ ही कहलाता है। पुद्गल परिणति में कहीं भी राग-द्वेष नहीं हो, वह 'रियल' पुरुषार्थ।

अहंकार के अस्तित्व के कारण कर्मबीज डलते ही रहते हैं, जो परिणाम स्वरूप कड़वे या मीठे फल देते ही हैं। अब वहाँ उल्टे परिणाम को सीधे में बदलना वह भ्रांत पुरुषार्थ! संयोग मिला वह प्रारब्ध और उसमें समता रखे, वह पुरुषार्थ। फिसल जाने के संयोग में स्थिर रहे, वह पुरुषार्थ। आर्तध्यान-रौद्रध्यान को धर्मध्यान में बदल दे, वह पुरुषार्थ।

'अक्रमज्ञानी' ने प्रारब्ध-पुरुषार्थ की उलझन में से निकालकर 'कौन कर्त्ता' की यथार्थ समझ 'व्यवस्थित शक्ति' के नये ही अभिगम द्वारा देकर प्रकट की है। जो स्वरूपलक्षियों को केवलज्ञान तक पहुँचा दे, वैसा है! खुद को कर्त्तापना का भान बरतता है, तब तक 'व्यवस्थित' की समझ सोने की कटारी के समान है! जहाँ अहंकार - वहाँ 'खुद' का कर्त्तापन, निर्अहंकार वहाँ 'व्यवस्थित' का कर्त्तापन।

शुद्ध उपयोग 'रियल' पुरुषार्थ है। कषाय के संयम को पुरुषार्थ कहा है और समता और ज्ञान से उत्पन्न होनेवाले को स्वभाव कहा है। यम, नियम, संयम को पुरुषार्थ कहा है। संयम और तप में क्या फर्क है? संयम में तपना नहीं होता और तप में तपना होता है, मन को तपाना होता है! ज्ञानी की आज्ञा में बरते, वह पुरुषार्थ है, वही धर्म है।

न तो प्रारब्ध बड़ा, न ही पुरुषार्थ बड़ा। इन दोनों को जो यथार्थ रूप से समझे वह बड़ा, ऐसा 'ज्ञानी पुरुष' कह गए हैं।

फुटकर, जो मिला वह खा ले, वह प्रारब्धकर्म और पेट में मरोड़ हों, वह प्रारब्ध कर्म का फल और फुटकर खाया जाता है वह पूर्वभव के संचित कर्मों के कारण! बोलो, अब इस प्रारब्धकर्म के फल को बदला किस तरह जाए? बदलाव संचितकर्म निर्मित होते समय ही हो सकता है।

सारा द्रव्य प्रारब्ध है और भाव पुरुषार्थ है। भ्रांत दशा में जीव-मात्र

को भाव-पुरुषार्थ चलता ही रहता है, उसके हिसाब से अगले भव के कर्म बंधते हैं, जिनका खुद को भी भान नहीं होता!

[४] श्रद्धा

अंधश्रद्धा को ठुकरानेवाले जानते नहीं कि खुद कितनी अधिक अंधश्रद्धा में है!!! किस श्रद्धा के कारण पानी पीया जाता है? उसमें विष नहीं उसका क्या भरोसा? खाने में छिपकली या जीवजंतु नहीं पड़ा उसका क्या भरोसा? कोई इसकी जाँच करता है? तो ये अंधश्रद्धा पर ही चलते हैं न? इस तरह जिनसे अंधश्रद्धा के बिना एक कदम भी नहीं उठाया जाता, वे दूसरों की अंधश्रद्धा की किस तरह निंदा कर सकते हैं?

[५] अभिप्राय

अभिप्रायों के आधार पर दृष्टि निर्मित होती है और वैसा ही फिर दिखता रहता है। कोई व्यक्ति खटकता रहे, उसमें वैसी दृष्टि का दोष नहीं है। उस दृष्टि को बनानेवाले अभिप्राय के कारण यह भूल होती रहती है।

'प्रिज्युडीसवाली' (पूर्वाग्रहवाली) दृष्टि संसार का सर्जन करती है। चोरी होते हुए नज़रों के सामने देखते हुए भी चोर के प्रति जिसे किंचित् मात्र दृष्टि प्रिज्युडिस नहीं होती, वे ज्ञानी! कल जो चोर है, वह साहूकार नहीं बनेगा, उसका क्या भरोसा?

स्वादिष्ट आम को इन्द्रिय स्वीकार करे उसमें हर्ज नहीं है, परन्तु वह फिर याद आए उसका जोखिम है, क्योंकि उसके पीछे 'यह आम अच्छा है', वैसा अभिप्राय पड़ा हुआ था, जो राग-द्वेष में परिणमित होता है।

एक वस्तु पर केन्द्रित हो चुका ज़बरदस्त अभिप्राय *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) में परिणमित होता है, जिसका प्रभाव बिखरे हुए अनेकों अभिप्रायों से भी अधिक भयंकर प्रकार से प्रवर्तित होता है।

'विषय राग-द्वेषवाले नहीं हैं, अभिप्राय की मान्यता ही राग-द्वेष है।' - दादाश्री।

'ज्ञानी' का यह कथन विषयों को नष्ट करने के लिए होनेवाले अथक परिश्रम को गजस्नानवत् कहकर हटा देता है और उसके 'रूटकॉज़' के समान, विषयों में सुख के अभिप्राय की गलत मान्यताओं को नष्ट करने की दिशा में जागृत करनेवाला है।

जब से नक्की किया कि अभिप्राय तोड़ने हैं, तब से वे टूटने लगते हैं! अवगाढ़ अभिप्राय को हररोज़ दो-दो घंटे खोदते रहें, प्रतिक्रमण द्वारा, तो वे खत्म होंगे! जिसे आत्मा प्राप्त हुआ है, जो 'पुरुष' हो गया है, वह चाहे किसी भी प्रकार के पुरुषार्थ और पराक्रम तक पहुँच सकता है!

जैसा अभिप्राय वैसा पुद्गल परिणमित होकर मिलनेवाला है।

अभिप्राय का भी अभिप्राय सूक्ष्मता से रह गया हो, उसे उखाड़ना ज़रूरी है।

अभिप्राय कौन करवाता है? लोकसंज्ञा ही, क्योंकि लोकसंज्ञा से खुद मान्यता बनाता है, बुद्धि उसके अनुसार निश्चित करके व्यवहार करवाती है। ज्ञानी की संज्ञा से चलें, वहाँ लोकसंज्ञा का लोप होता है!

सामनेवाले के लिए होनेवाला सहज भी उल्टा विचार सामनेवाले को स्पर्श करके, फिर उग निकलें, वहाँ पर शूट ऑन साइट प्रतिक्रमण, स्पंदनों को सामनेवाले तक पहुँचने से रोकता है। या फिर पहुँचे हुए स्पंदनों को मिटा देता है। और अभिप्राय मिटते ही उस व्यक्ति के साथ के वाणी-वर्तन में साहजिकता आ जाती है, जो सामनेवाले को स्पर्श किए बिना नहीं रहती। इससे विरुद्ध, दोषवाले अभिप्राय सहित की दृष्टि सामनेवाले के मन पर छाया डालती है। जिससे उसकी हाज़िरी में भी नापसंदगी बरतती है।

अभिप्राय बदलने के लिए प्रतिस्पर्धी अभिप्राय रखें। चोर है उस अभिप्राय को छेदने के लिए चोर को साहूकार है, साहूकार है, कहना पड़ता है और अंत में, वास्तव में तो वह शुद्धात्मा है, ऐसी दृष्टि रखनी पड़ेगी!

अभिप्राय *तंतीली* (विवादवाली, तीखी, चुभनेवाली) वाणी का कारण है, जब कि अभिप्राय का कारण शंका है।

'अभिप्राय बुद्धि के आशय के अधीन है।' - दादाश्री।

बुद्धि ने जिसमें सुख माना उस आधार पर अभिप्राय पड़ता है। फ्रेंचकट में सुख माना, वहाँ फ्रेंचकट का अभिप्राय पड़ जाता है।

'स्वरूपज्ञान' के बाद में अनंत समाधि को कौन रोकता है? अभिप्राय! दो-पाँच बड़े-बड़े अभिप्राय खत्म हुए कि मुक्तदशा का अनुभव मिलता है!!

क्रिया से बीज नहीं डलता पर वह डलता है हेतु से, अभिप्राय से! स्वागत योग्य कोई अभिप्राय हो तो एक ब्रह्मचर्य का और दूसरा, यह देह दग़ा है, उसका! अभिप्राय अहंकार के परमाणुओं का बना हुआ है। अभिप्राय, व्यक्तित्व दिखाता है, दृष्टि ही बदलवा देता है। मृत अभिप्राय का हर्ज नहीं है, आग्रहवाले अभिप्राय ज्ञान को आवृत करते हैं।

अचेतन के अभिप्राय छोड़ने में, बस हम छोड़े उतनी ही देर। जब कि मिश्रचेतन के साथ बाँधे हुए अभिप्राय हमारे छोड़ देने के बाद भी हमें नहीं छोड़ते! जिनके मुँह बिचकते हैं, वैसे मिश्रचेतनवाले के बारे में अभिप्राय बाँधकर बाद में कितना रोना पड़ता है!

अभिप्राय से अंतराय को आमंत्रण दिया जाता है। अभिप्रायों के अंतरायों का जोखिम भारी है, जहाँ से छूटना है, वहीं पर अधिक बाँधता है!

प्रतिष्ठित आत्मा का अभिप्राय उत्पन्न हुआ और तब उसके अनुसार यह पुतला चलेगा, उसमें 'शुद्धात्मा' मात्र 'उदासीन भाव' से उपस्थित रहता है!

[६] कुशलता का अंधापन

संसार का कुछ भी नहीं आता हो, वे 'ज्ञानी'। अन्य को प्रबुद्ध लगनेवाले 'ज्ञानी' वास्तव में तो अबुध ही होते हैं। ज्ञानी कहते हैं, हमें तो इस सत्तर वर्ष की उम्र में दाढ़ी भी बनानी नहीं आती। खुद किसी भी चीज़ में एक्सपर्ट हैं, ऐसा माननेवाले खुद अपने आप को और सभी को

धोखा देते हैं। एक्सपर्ट कोई हो ही नहीं सकता, वह तो कुदरती देन है। ज्ञानी तो आत्मविज्ञान के एक्सपर्ट होते हैं।

मन की ज़रूरतें, चित्त की ज़रूरतें, बुद्धि की, अहंकार की, खुद सभी ज़रूरतें लेकर ही आया हुआ होने के कारण कुदरत उसे सभी कुछ सप्लाइ करती है। उसमें खुद का क्या पुरुषार्थ? कुदरत जब पूर्ति करती ही है, तब खुद को चित्त सहज रखना चाहिए, वहाँ उपयोग नहीं बिगाड़ना चाहिए। जीवन का यह सार तो निकालना ही पड़ेगा न!!

[७] अंतराय

'मैं चंदूभाई हूँ' कहा कि पड़ गया अंतराय! खुद परमात्मा ही है, उसे चंदूभाई मान लिया?! खुद ब्रह्मांड का स्वामी, अनंत शक्ति का धनी, चाहे जो प्राप्त कर सके, वैसा होने के बावजूद क्यों चीज़ें नहीं मिलती! अंतराय डाले हैं इसलिए। अंतराय से शक्ति आवृत हो जाती है!

इच्छा अंतरायों को आमंत्रित करती है। हवा की इच्छा नहीं होती तो उसका अंतराय पड़ता है? ज्ञानी को निर्-इच्छक पद, निर्-अंतराय पद होता है। किसी चीज़ की उन्हें भीख नहीं होती।

अंतराय किस तरह पड़ते हैं? कोई दे रहा हो और खुद उसमें दख़ल करे, रुकावट डाले, उससे।

अज्ञानदशा में उल्टे विचारों का रक्षण किया जाता है, जब कि ज्ञानदशा में उसका तुरन्त ही प्रतिक्रमण होता है। शुभ कार्य में अनुमोदना स्व-पर लाभकारी होती है। अन्य का अनुमोदन किया तो हमें वैसे ही अनुमोदन करनेवाले मिल जाएँगे! सामनेवाले को बिना अक्कल का कहा, उससे खुद की अक्कल पर अंतराय डाला!

मोक्षमार्ग में आनेवाले अंतरायों के सामने खुद का दृढ़ निश्चय रहे, वहाँ खुद की शक्तियाँ विकसित होती जाती हैं। अनिश्चय से ही अंतराय पड़ते हैं। निश्चय अंतरायों को तोड़ता है। आत्मा का निश्चय होते ही तमाम अंतरायों का अंत आ जाता है।

सांसारिक बुद्धि के अंतराय गाँठ के समान और धार्मिक बुद्धि के अंतराय पक्की गाँठ के समान होते हैं, अनंत जन्मों तक भटकाते हैं। 'मैं कुछ जानता हूँ', वह भाव अध्यात्म में सबसे बड़ा अंतराय डालता है। आर्तध्यान-रौद्रध्यान होता है, वहाँ कुछ भी जाना नहीं है, ऐसा फलित होता है।

सबसे बड़ा अंतराय ज्ञानांतराय है। 'अध्यात्म में अन्य कोई कुछ भी नहीं समझता है, खुद ही समझता है।' उससे अथवा कोई 'स्वरूपज्ञान' प्राप्त करने जाए वहाँ रुकावट डालते हैं, सच्चे 'ज्ञानी' मिलें, फिर भी मन में होता है कि ऐसे तो बहुत 'ज्ञानी' देखे हैं - ये सभी ज्ञानांतराय डालते हैं। वहाँ मन में भाव हो कि, 'ज्ञानी' आए हैं, पर मुझसे जाया नहीं जा सकता, तो वह अंतराय को तोड़ता है।

[८] तिरस्कार-तरछोड़

'मुझे नहीं आता है।' ऐसा हुआ कि कार्यकुशलता पर अंतराय पड़ता है। और 'मुझे क्यों नहीं आएगा?' ऐसा दृढ़ता से हो, वहाँ पर अंतराय टूटते हैं।

'घंटेभर में तो मोक्ष होता होगा?' वैसा भाव होते ही मोक्ष का अंतराय पड़ा! बुद्धि से नापा जा सके, वैसा यह विश्व नहीं है।

ज्ञानी पुरुष ज्ञानांतराय-दर्शनांतराय तोड़ देते हैं, परन्तु जहाँ पर विनयधर्म खंडित होता हो वहाँ 'ज्ञानी' भी असमर्थ होते हैं। 'ज्ञानी' के लिए तो एक भी उल्टा विचार नहीं आना चाहिए। ज्ञानी के पास जाने में आनेवाले अंतरायों के लिए 'ज्ञानी' की प्रार्थना-विधि में उन अंतरायों को तोड़ देने की प्रार्थना होने से, वे अंतराय टूटते हैं! अंतराय तो भाव से टूटते हैं! अंतराय तो भाव से टूटते हैं और भाव समय आने पर होते हैं।

आत्मज्ञानी के लिए अंतराय संयोग स्वरूपी होते हैं, जो वियोगी स्वभाव के हैं, और खुद 'शुद्धात्मा' तो असंयोगी-अवियोगी है।

जिसका तिरस्कार - उससे भय। तिरस्कार में से भय जन्म लेता है। कोर्ट और पुलिस के प्रति तिरस्कार, उनके प्रति भय को जन्म देता है।

तिरस्कार माइल्ड (हल्का) फल देता है, जब कि *तरछोड़* भयंकर अंतराय डाल देता है। किसीको *तरछोड़* नहीं लगे वैसी जागृति चाहिए। जिसे हमसे *तरछोड़* लगे, वह हमारे लिए हमेशा के लिए किवाड़ बंद कर देता है। वाणी से लगे हुए *तरछोड़* गहरे, भरे नहीं जा सकें ऐसे घाव डाल देते हैं! एक भी जीव को *तरछोड़* लगी, तो मोक्ष रुक गया समझो। वैसा जोखिम *तरछोड़* में समाया हुआ है!

[९] व्यक्तित्व सौरभ

'ज्ञानी पुरुष' का व्यक्तित्व निराला होता है, जिन्हें आत्मा के सिवाय किसीमें प्रीति नहीं है। मन-वचन-काया से बिल्कुल अलग रूप से आत्मा में ही बरतते हैं। व्यवसाय करने के बावजूद वीतरागता से बरते, वैसे अक्रमज्ञानी की सिद्धियाँ तो देखो! जहाँ व्रत नहीं हुआ, नियम नहीं हुआ, सिर्फ *चोविहार* (सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना), उबले हुए पानी और 'श्रीमद् राजचंद्र के वचनामृतों' का, वैसे ही सर्वधर्म के शास्त्रों का पठन-मनन था। बाक़ी कुदरती रूप से ही यह गज़ब का अक्रम विज्ञान प्रकट हुआ! १९५८ की शाम को सूरत स्टेशन की बेंच पर ज्ञान प्रकट होने से पहले, भयंकर भीड़ में भी अंतर में नीरव शांति हो गई, परन्तु वह भी अहंकार मिश्रित ही न! और जहाँ परम ज्योति स्वरूप प्रकाश प्रकट हुआ, पूरे ब्रह्मांड को ज्ञान में देखा, देह से, मन से, वाणी से खुद बिल्कुल अलग हो गए थे - वैसा अनुभव हुआ, ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में पनपते ही इस अवनी के इतिहास का भव्यातिभव्य दिन उगा! अहंकार खत्म हो गया! ममता खत्म हो गई!! उनके श्रीमुख से प्रवाहित होनी शुरू हुई वीतराग वाणी ही उनकी आध्यात्मिक पूर्णता का प्रमाण था और इस कलिकाल का ग्यारहवाँ आश्चर्य, अक्रमविज्ञान-असंयति पूजा जगत् से छुपा नहीं रह सका। एक के बाद एक, ऐसे करते-करते बीस वर्षों में बीस हज़ार पुण्यात्माओं ने उसे, अक्रममार्ग से आत्म विज्ञान को प्राप्त किया और वही सबसे बड़ा आश्चर्य है!

'ज्ञानी' का नित्यक्रम क्या? 'ज्ञानी' निरंतर आत्मचर्या में ही होते हैं। मोक्ष में ही होते हैं। खुद की ही वाणी को 'टेपरिकॉर्ड' कहकर मालिकीभाव

के तमाम करार फाड़ देते हैं! ऐसे समर्थ निमित्त हों, वे तो उपादान की कमी भी चला लेते हैं!

प्रेम के बिना भक्ति पैदा नहीं होती। पूरा दिन भगवान भुलाए ही नहीं जाएँ, वह प्रेमलक्षणा भक्ति है।

ज्ञानी ने स्वयं निर्दोष होकर, निर्दोष दृष्टि करके, पूरे जगत् को निर्दोष देखा। शुद्धात्मा दोष करता हो, तो वह दोषित माना जाए। वह तो संपूर्ण अकर्त्ता है, फिर दोष देखने का रहा ही कहाँ? 'डिस्चार्ज' में किसीका दोष कहाँ से होगा? एक भी व्यक्ति यदि दोषित दिखे, वहाँ शुद्धि नहीं है, वहाँ इन्द्रिय ज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं है! विचारों से मारनेवाला कुदरत का गुनहगार और वास्तव में मारनेवाला जगत् का गुनहगार ठहरता है। दोनों को न्याय मिलता ही है। विचारों में मारनेवाला अगले जन्म का गुनहगार बनता है, जब कि वास्तव में मारनेवाले को इस जन्म में ही दंड मिलने से *निकाल* हो जाता है!

'मैंने खाया' बोलने में हर्ज नहीं है, परन्तु भीतर जानना चाहिए कि 'कौन खा रहा है?'

'मिला वह आत्मज्ञान नहीं है, भीतर प्रकट हुआ वह आत्मज्ञान है।' - ऐसा दादाश्री कहते हैं। ज्ञानी की आज्ञा का पालन किया जाए, वही ज्ञानी की कृपा को खींच लाती है।

जहाँ शब्द सीमित हो जाते हैं, समझ कम पड़ती है, जहाँ कोई उपमा नहीं, जो स्वयं उपेय हैं, ऐसे ज्ञानी का क्या वर्णन हो? जो निरंतर आत्मा में रहते हैं, मन में नहीं, वाणी में नहीं, देह में नहीं, जहाँ किंचित् मात्र अहंकार को स्थान नहीं है, जहाँ क्रोध-मान-माया-लोभ का निर्वाण हो गया है, नम्रता तो उन ज्ञानी का सामान्य गुण है। ज्ञानी तो निर्अहंकारी होते हैं। गाली देनेवाले को भी आशीर्वाद देते हैं! ज्ञानी निःस्पृह नहीं होते, वैसे ही सस्पृह भी नहीं होते, वे तो सस्पृह-निस्पृह होते हैं। सामनेवाले के भौतिक सुखों के लिए निःस्पृह और आत्मा के लिए सस्पृह!

'ज्ञानी' की वाणी वीतरागता सहित, राग-द्वेष रहित होती है, जिस

वाणी को सुने बिना किसीको मोक्षप्राप्ति होना असंभव है! 'ज्ञानी' की वाणी में न तो कोई खंडन है न ही निज मत का मंडन है! न तो किसीका विरोध है, न ही किसीको 'गलत है' ऐसा कहने को रहता है। वह वाणी स्यादवाद है, कि जहाँ न तो वाद, न ही विवाद और न ही संवाद है। निमित्ताधीन सहजभाव से प्रवाहित, वह है कारुण्य निथरता, अस्खलित पाताली झरने का प्रवाह!!!

[१०] अक्रम मार्ग

जहाँ चौदह लोक के नाथ प्रकट हुए हैं, वैसे 'ज्ञानी पुरुष' अर्थात् देहधारी स्वयं परमात्मा की कृपा प्राप्त हो जाए, वहाँ कुछ भी कर्त्तापन रहता नहीं है, मात्र उनकी आज्ञा में रहकर, उनके पीछे-पीछे चले जाना है। वैसे 'ज्ञानी पुरुष' इस काल में प्रकट हुए हैं, जिनकी कृपाप्रसादी प्राप्त करके 'अक्रमविज्ञान' द्वारा, 'अक्रममार्ग' से अर्थात् लिफ्ट में बैठकर आत्मज्ञान के उच्चतम शिखर घंटेभर में ही पार हो जाते हैं!!! इस अपवाद मार्ग की सिद्धि अति-अति अद्‌भुत है!!!

ऐसे कलिकाल में अक्रम मार्ग का भव्य उदय आया है! यह अध्यात्म विज्ञान की अपूर्व भूमिका है! अविरोधाभास अखंड रूप से समस्त वाणी में विद्यमान है। अनंत जन्मों के पापों को घंटेभर में भस्मीभूत करके, आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति करवाते हैं, जहाँ उपादान की जागृति या अजागृति नहीं देखी जाती, अक्रम विज्ञानी के ज़बरदस्त पावरफुल निमित्त के सुयोग से जागृति शिखर पर बिराजे, वैसी दशा साधकों को प्राप्त हो जाती है, जहाँ कषाय संपूर्णरूप से खत्म हो जाते हैं, अहंकार-ममता विलय हो जाते हैं, जहाँ कुछ भी 'कर्त्तापन' नहीं रहता, केवल आत्मसुख के वेदन का संवेदन करना है, वैसी दशा की प्राप्ति करवानेवाले उन 'ज्ञानी' नहीं, 'विज्ञानी' की अक्रम की अथाह सिद्धि तो देखो!!!

[११] आत्मा और अहंकार

'मैं चंदूलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इस लड़के का बाप हूँ, मैं बिज़नेसमेन हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं गोरा हूँ।' ऐसी अनेक रोंग बिलीफ़ों के चादरें

ओढ़े हुए हैं। खुद की 'राइट बिलीफ़' पर, शुद्ध दर्शन और ज्ञान पर! 'ज्ञानी पुरुष' उस 'रोंग बिलीफ़' को 'फ्रेक्चर' करके तमाम प्रकार के आवरण हटा देते हैं और सम्यक् दर्शन का भव्य द्वार खुल जाता है!

जहाँ 'खुद' नहीं करता, फिर भी अज्ञानतावश आरोप करता है कि, 'मैंने किया', वह अहंकार है। और अहंकार से कर्म बंधते हैं, शरीर बनता है, मन बनता है, वाणी बनती है, पुद्‌गल मात्र का सर्जन उससे ही होता है।

आत्मा परमात्मा की भेद स्वरूप से आराधना करना वह लौकिक धर्म है और आत्मा परमात्मा की अभेद स्वरूप से आराधना करना वह अलौकिक धर्म है और अलौकिक धर्म से मोक्ष है! अलौकिक धर्म में न तो पुण्य है, न ही पाप है, वहाँ तो किसी चीज़ का कर्त्तापन ही नहीं है!

संसार के सुख भी जिसके लिए दुःखों के भार समान बन जाएँ, वह मुक्ति का अधिकारी! उसे 'ज्ञानी पुरुष' मुक्ति दे देते हैं। क्योंकि ज्ञानी तो तरण-तारणहार होते हैं।

[१२] व्यवस्था 'व्यवस्थित' की

विश्व का नियंत्रण स्वभाव से ही सहज रूप से होता रहता है। उसे 'अक्रमज्ञानी' 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं। विश्व के छह सनातन तत्वों पर इस 'व्यवस्थित' शक्ति का कोई क़ाबू नहीं है, सभी तत्व स्वतंत्र हैं, कोई किसीको कुछ मानता नहीं है, कोई किसीकी सुनता नहीं है, उसमें एक चेतन तत्व, खुद परमात्मा है, फिर भी!!!

सेवा के साथ समर्पणता जुड़ जाए तो सोने में सुहागा! परन्तु सेवा का फल पुण्य मिलता है, मोक्ष नहीं। हाँ, उसमें स्वरूपज्ञान हो, कर्त्तापन नहीं हो, तो फिर वहाँ कर्म बंधन नहीं रहता है।

जगत् में चलनेवाला खूनखराबा, मारामारी, काटपीट, विश्वयुद्धों के बुरे परिणामों को 'ज्ञानी पुरुष' 'व्यवस्थित' ही देखते हैं! समुद्र में बड़ी

मछली और छोटी मछली के बीच चलनेवाले विनाशों को किसने नोट किया है? क्या वह 'व्यवस्थित' नहीं है?

[१३] व्यवहार धर्म - स्वाभाविक धर्म

व्यवहारिक धर्म यानी सुख देकर सुख की प्राप्ति करनी। दुःख दें तो दुःख मिलता है। ट्राफिक के धर्म का पालन करके क्या सब जान को सहीसलामत नहीं रखते? वहाँ अधर्म का आचरण करे तो टकराकर मर जाए, एक्सिडेन्ट करके रख दे! वैसे ही सुख की सलामती रखने के लिए सुख को बाँटना, वह रिलेटिव धर्म का रहस्य है! और 'रियल' धर्म में तो 'वस्तु-स्वभाव' को प्राप्त करना है। 'आत्मधर्म' को प्राप्त करना है!

सर्व संयोगों में समाधान रहे वह 'रियल' धर्म। समाधान-असामाधान रहे वह 'रिलेटिव' धर्म।

सनातन सुख को ढूंढनेवाले जीवों को जब वह नहीं मिलता है, तब वह कल्पित सुखों में कूद पड़ता है, जो परिणाम स्वरूप दुःखदायी ही सिद्ध होने के कारण जीव तरह-तरह की कल्पनाओं में खोकर सुख के लिए भटकता रहता है, फिर और भी अधिक उलझता जाता है! सनातन सुख तो खुद के भीतर ही है, आत्मा में है! सच्चा सुख पाने के लिए सच्चा बनना पड़ेगा और संसारी सुख प्राप्त करने के लिए संसारी!

समसरण मार्ग में प्रवेश प्राप्त करता है, तब से ही अंतरदाह की डोरी अविरत रूप से जलती ही रहती है, जिसका अंतरदाह मिट गया, उसका संसार अस्त हो गया!

अंतरसुख और बाह्यसुख का संतुलन है तब तक व्यवहार में शांति रहती है। बाह्यसुख, अंतरसुख की क़ीमत पर भोगा जाता है, उससे मानसिक स्थिरता खो जाती है। इसलिए ही तो नींद की गोलियाँ खाई जाती हैं।

जहाँ ज़रा सा भी दुःख नहीं, वहाँ आत्मा है।

विपरीत दर्शन से दुःख और सम्यक् दर्शन से सुख, सुख और सुख है।

मोक्ष के लिए ज्ञानी की शरण और संसार में सुख के लिए माँ-बाप और गुरु की सेवा, इतने साधन करने चाहिए।

लोगों के माने हुए सुख को सुख माने, वह लोकसंज्ञा और आत्मा में सुख है ऐसा मानना, वह ज्ञानी की संज्ञा।

संत दुःख-भोगी होते हैं, ज्ञानी आत्मभोगी होते हैं। संत दुःख को सुख मानकर चलते हैं।

पुद्‌गल सुख का आनंद उठाना, वह उधारी व्यवहार है, रीपे (वापिस चुकता) करना ही पड़ेगा। बेटा 'पापाजी-पापाजी' करके गोदी में कूदता हो तब उधार का सुख लिया जाता है, पर वही बेटा बड़ा होकर 'आपमें अक्कल नहीं है' कहे कि तब उधारी सुख को रीपे करना पड़ा! इसलिए पहले से ही क्यों न सचेत हो जाएँ? पुद्‌गल स्वयं वीतराग है, उसे जब से 'खुद' ग्रहण करता है, तब से उधारी व्यवहार शुरू होता है!

[१४] सच्ची समझ, धर्म की

लौकिक धर्म संसारी सुख देता है, अलौकिक धर्म सनातन सुख देता है। मिथ्यात्व सहित की तमाम क्रियाओं से संसार फलित होता है। अलौकिक धर्म न तो त्याग में है, न ही भोग में। 'त्यागे सो आगे।' सिर पर जितने बोझ का वहन हो सके, उतना ही संग्रह करना चाहिए। सच्चा त्याग तो आर्तध्यान-रौद्रध्यान का त्याग करवाए, वह!

धर्म तो वह कहलाता है कि मुसीबत में रक्षण करे! आर्तध्यान, रौद्रध्यान होते समय धर्म हाज़िर होकर हमारा रक्षण करे! अनंत जन्मों से धर्म किए हैं, परन्तु समय आने पर यदि हमारी रक्षा नहीं हो तो इसे धर्म किया कहलाएगा ही कैसे? चिंता हो, वहाँ पर धर्म समझ में ही नहीं आया, ऐसा कहा जाएगा!

धर्म बनकर परिणमित हो, वह धर्म है। कोई गाली दे, तब धर्म मदद के लिए आता है। परिणमित हो-वह धर्म, और नहीं हो-वह अधर्म। जिसे *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दुःख) में समता रहे, उसके ऊपर मानो

मोक्ष की मुहर लग गई।

धर्म का पालन नहीं करना है, धर्म के प्रति सिन्सियर रहना है। भगवान के दर्शन करते समय साथ-साथ चप्पलों के और दुकान के भी दर्शन करे, वह धर्म के प्रति सिन्सियर है, ऐसा कैसे कह सकते हैं? तमाम प्रकार के दु:खों से मुक्ति दिलवाए, वह सच्चा धर्म।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, बस यही एक मोक्ष का मार्ग है और कोई नहीं।

मूर्त के दर्शन, अनंत जन्मों से किए। भीतर बिराजे हुए अमूर्त के एकबार ही दर्शन हो जाएँ तो अनंत जन्मों का बदला चुक जाए!

यह सब नुकसान कब पूरा होगा? और वह भी इस दिवालियावाले कलिकाल में? अब तो ज्ञानी की शरण स्वीकार करके मुक्ति ही माँग लेनी है, तभी जल्दी से हल आएगा!

[१५] आचरण में धर्म

भगवान आचरण को महत्व नहीं देते, हेतु को महत्व देते हैं। आचरण, वह 'डिस्चार्ज' है, जब कि चार्ज तो हेतु के अनुसार होता है।

'मानवजन्म बेकार नहीं जाए' का निरंतर चिंतन किसी दिन फलेगा।

क्लेश रहित होना, वही महान धर्म है। क्लेश है वहाँ धर्म नहीं है और धर्म है वहाँ क्लेश नहीं है।

दया रखनी, शांति, समता रखनी, वे धर्मसूत्र इस काल में बेकार हो जाते हैं। जो कोटि उपायों से भी नहीं रखा जा सकता, वहाँ पर क्या हो? इसलिए 'ज्ञानी पुरुष' नई ही राह, नये ही रूप में सामान्यजन से भी साधा जा सके, वैसा मार्ग बताते हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ हो उसमें हर्ज नहीं है, पर फिर उनका प्रतिक्रमण करे। चोरी करे तो भी हर्ज नहीं है, पर फिर उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए, ज्ञानी की इतनी ही आज्ञा पाले, उसे तमाम धर्मों का सार

मिल जाए। ज्ञानी को राज़ी रखें, उसके जैसा उत्तम कोई धर्म नहीं। ज्ञानी की आज्ञा पाली जाए, वहाँ ज्ञानी राज़ी रहते हैं। अन्य किसी चीज़ से नहीं। ज्ञानी की एक ही आज्ञा ठेठ मोक्ष तक ले जानेवाली है!

ज्ञान तो खुद ही क्रिया को लानेवाला है। 'चोरी करने में मज़ा है' का ज्ञान फिट होते ही चोरी होने लगती है। ज्ञान बदले कि फिर क्रिया बदलती ही है! ज्ञान बदले बिना क्रिया लाख जन्म में भी नहीं बदलती!

अज्ञान का ज्ञान जानने में पौद्‌गलिक शक्तियाँ आसानी से मिल जाती है। चोरी, हिंसा, अब्रह्मचर्य में शक्तियाँ सहज रूप से खर्च हो जाती हैं। जब कि ज्ञान जानने में प्रार्थना और पुरुषार्थ चाहिए! प्रार्थना अर्थात् विशेष अर्थ की याचना। वह खुद के शुद्धात्मा के पास से या फिर ज्ञानी के पास से माँगनी चाहिए। अज्ञान दशा में गुरु, मूर्ति या इष्टदेवी की प्रार्थना होती है। हृदयशुद्धिवाले की सच्ची प्रार्थना अवश्य फलती है।

[१६] रिलेटिव धर्म : धर्म विज्ञान

निष्पक्षता है, वहाँ वीतराग धर्म है। वीतराग धर्म, वह सैद्धांतिक धर्म है। इन्द्रियजन्य जो-जो है वह 'रिलेटिव' में आता है और 'रियल' है, उससे ही 'रिलेटिव' खड़ा हुआ है! 'रिलेटिव' अवस्था स्वरूप है। 'रियल' तत्व स्वरूप है।

धर्माधर्म आत्मा - मूढ़ात्मा - रिलेटिविटी
ज्ञानघन आत्मा - अंतरात्मा - रियालिटी
विज्ञानघन आत्मा - परमात्मा - एब्सोल्यूट।

आर्तध्यान-रौद्रध्यान जाएँ, वह धर्मसार है। जब कि मर्म का सार यानी मुक्ति! जगत् का सार विषयसुख और धर्म का सार आर्तध्यान-रौद्रध्यान से विमुक्ति! और समयसार अर्थात् स्वाभाविक परिणति, स्व-परिणति उत्पन्न हुई।

धर्म 'रिलेटिव' होता है और विज्ञान 'रियल' होता है। 'विज्ञान' अविरोधाभासवाला, सैद्धांतिक और स्वयं क्रियाकारी होता है!

[१७] भगवान का स्वरूप, ज्ञानदृष्टि से

हम ईश्वर के अंश नहीं हैं, ईश्वर के टुकड़े नहीं हैं। हम सर्वांश हैं। आवरण दूर हो जाएँ और प्रकट हों, उतनी ही देर!

भगवान कण-कण में हों, तो उन्हें ढूंढे कहाँ? संडास कहाँ जाएँ? फिर तो जड़-चेतन का भेद ही नहीं रहा न? जीव-मात्र में भीतर भगवान बिराजमान हैं।

जिस वस्तु में मालिकीभाव का आरोपण हो चुका है, उसे उससे दूर करते ही मालिक को दु:ख होता है, उसे संकल्पी चेतन कहा है। वास्तव में तो जहाँ ज्ञान-दर्शन है, वहाँ चेतन है।

[१८] ज्ञातापद की पहचान !

तीन वस्तुओं की मोक्षमार्ग में ज़रूरत है : (१) आत्मा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा। (२) 'ज्ञानी पुरुष' प्राप्त करने की तीव्र इच्छा। (३) 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलें, तो 'ज्ञानी पुरुष' प्राप्त हो, ऐसी भावना करना।

– दादा भगवान।

इस ब्रह्मांड के तमाम जीवों का भगवत् स्वरूप से दर्शन करता हूँ बोलें, तब वहाँ तमाम 'रिलेटिव' धर्म समा जाते हैं। स्व को जानने के बाद स्व का स्वाध्याय होता है। 'स्व' को जाने बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह पराध्याय है!

अनादिकाल से जिसे 'ज्ञाता' माना हुआ है, वही 'ज्ञेय' हो जाता है तब निजस्वरूप का भान हो गया कहलाता है!

अज्ञान से निवृत्ति का नाम ही मोक्षधर्म। अज्ञान से निवृत्ति होने के बाद विज्ञान उत्पन्न होता है, उसका नाम मोक्ष!

[१९] यथार्थ भक्तिमार्ग!

जब तक भीतर बिराजमान भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते तब

तक मूर्ति के सम्मुख परोक्ष प्रार्थना भी प्रत्यक्ष की ओर जाती है। उसके लिए इस प्रकार से सब जगह दर्शन करना।

"हे वीतराग भगवान! आप मेरे भीतर ही बैठे हैं, पर मुझे उसकी पहचान नहीं है इसलिए आपके दर्शन कर रहा हूँ। मुझे यह 'ज्ञानी पुरुष' ने सिखलाया है, इसलिए उस अनुसार आपके दर्शन कर रहा हूँ। तो आप मुझे मेरे 'खुद' की पहचान हो वैसी कृपा कीजिए।" – दादा भगवान।

पाँच इन्द्रियों से ईश्वरप्राप्ति के लिए जो कुछ भी होता है वह भक्ति है। प्रत्यक्ष भक्ति से भगवान मिलते हैं। परोक्ष भक्ति से धीरे-धीरे उर्ध्वीकरण होता रहता है। प्रत्यक्ष भक्ति अर्थात् कि जहाँ भगवान प्रकट हो गए हैं, उनकी भक्ति। उससे मोक्ष मिलता है।

भक्ति की सूक्ष्मता के भेद हैं। नामजाप से स्थूल भक्ति, स्थापना से सूक्ष्म, द्रव्य से सूक्ष्मतर और भाव से सूक्ष्मतम भक्ति है।

भक्तिमार्ग से मोक्ष है या ज्ञानमार्ग से? ज्ञानमार्ग की एक पटरी डाली जाए उसके समानांतर भक्तिमार्ग की दूसरी पटरी डाली जाए, तब ही यह गाड़ी मोक्ष के स्टेशन तक पहुँचेगी। जितना ज्ञान मिले, उतनी भक्ति स्वयं प्रकट होती है। बिना स्वरूपज्ञान की भक्ति से संसार फल मिलता है, और दोनों साथ में हों, तब मोक्ष आ मिलता है! बुद्धि का प्रवेश है वहाँ अपराभक्ति है और मात्र ज्ञान के साथ भक्ति – वह पराभक्ति, जो मोक्ष में फलित होती है। पराभक्ति का आविर्भाव, वह इस अक्रम मार्ग की अनमोल देन है!

[२०] गुरु और 'ज्ञानी'

एकबार गुरु का मंडन करने के बाद चाहे जैसे, सन्निपात के संयोग दिखें तो भी गुरु का खंडन नहीं करते। निंदा तो क्या, उल्टा विचार तक भी गुरु के लिए नहीं करते। भयंकर विराधना कहलाती है। वह ठेठ नर्क में भी ले जा सकती है!

संसार में शुभ-अशुभ सिखलाएँ, वे गुरु और शुभाशुभ छुड़वाकर

शुद्ध में बैठा दें, वे ज्ञानी।

गुरु की ज़रूरत कितनी? गुरु के बिना तो बारहखड़ी भी नहीं पढ़ी जा सकती, तो गुरु के बिना भगवान की आराधना कैसे हो? स्टेशन जाने के लिए भी गुरु की ज़रूरत है। पग-पग पर गुरु की ज़रूरत है। और मोक्ष के लिए तो एक मात्र 'ज्ञानी' की ज़रूरत पड़ेगी।

जहाँ कुछ भी 'कर्त्तापन' नहीं रहता, वह 'ज्ञानी' की कृपा। मुक्ति दिलवाएँ, वे 'ज्ञानी'!

'रेल्वे के पोइन्टमेन' की तरह सही पटरी पर चढ़ाएँ, वे सच्चे लौकिक गुरु, और पोइन्ट बदल दें, वे आज के लौकिक गुरु! गुरु अर्थात् भारी। खुद डूबें और बैठनेवालों को भी डुबो दें। गुरुकिल्ली सहित गुरु हों तो वे डूबने नहीं देते। 'पूरे जगत् का मैं शिष्य हूँ' - वह गुरुकिल्ली! 'यह मेरा शिष्य है' ऐसा एक क्षण भी जिसे भान नहीं बरते, उसे शिष्य बनाने का अधिकार है।

एकबार हृदय में गुरुपद पर स्थापित करने के बाद गुरु का चाहे कैसा भी विपरीत वर्तन, वाणी या सन्निपात के, पागलपन के उदयों में भी खंडन नहीं करे, वह सच्चा शिष्य। गुरु के प्रति अटूट सिन्सियारिटी ही मोक्ष में ले जाती है! मंडन करने के बाद खंडन करना भयंकर जोखिम है। गुरु, वह पाँचवी घात है। उल्टा नहीं देखते। नहीं तो गुरु बनाना ही नहीं, आराधना नहीं हो उसका हर्ज नहीं है, पर विराधना तो नहीं ही होनी चाहिए। इस काल के जीव पूर्वविराधक हैं। गुरु की कमियाँ, निंदा किए बिना सीधे नहीं बैठे रहते!

गुरु बनाते नहीं, गुरु बन जाते हैं। जिन पर नज़र पड़ते ही दिल को ठंडक हो जाए, वे हृदय में गुरुपद पर स्थापित होते हैं। बाक़ी, गुरु की परीक्षा करने के बाद स्थापन करने का जौहरीपन किसने खुद में विकसित किया है?

संसार में शुभमार्ग पर ले जाएँ, वे गुरु और रोकड़ मोक्ष की परख करवा दें, वे 'ज्ञानी'!

[२१] तपश्चर्या का हेतु

जप, तप, व्रत की ज़रूरत कितनी? ड्रगिस्ट (दवाईवाला) के वहाँ की सारी ही दवाईयाँ अपने काम आती हैं? जिसे जो माफिक आती है वही ली जाती है। हमें माफिक आए वह दवा सच्ची, परन्तु उसके कारण दूसरी दवाईयों को गलत नहीं कह सकते। उनके लिए दूसरे मरीज़ होते हैं। जप-तप आदि शुभकर्म बाँधते हैं।

खींचतान करके, जान-बूझकर तप करने का यह काल नहीं है। इस काल में तो अपने आप ही आए हुए तप समतापूर्वक करने हैं। राशन, केरोसीन, चीनी, दूध की कमी में हाय-हाय करते हुए, रात-दिन तपते हुए इन हत् पुण्यशालियों को भला दूसरे और अधिक तपों में किसलिए तपना है?!

'ज्ञानी' को त्यागात्याग नहीं होते हैं। वे तो जो आए उसका निकाल कर देते हैं! भगवान ने वस्तु के त्याग को त्याग नहीं कहा है, वस्तु की मूर्छा के त्याग को त्याग कहा है! भगवान तो मूल को ही देखते हैं न!!!

पूज्य दादाश्री की आज्ञानुसार एक ग्यारस जीवन में हो जाए उसका कल्याण निश्चित है। पाँच इन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन, निराहारी रखे वह सच्ची ग्यारस। उपवास से तन की, मन की और वाणी की शुद्धि होती है, यदि उपयोगपूर्वक हुआ हो तो! आयंबिल - एक ही धान का आहार। मात्र उसकी लिमिट का पद्धतिपूर्वक पालन किया जा सके, ऐसा विवेक होना चाहिए। अजीर्ण के मरीज को अजीर्ण मिटे तब तक उपवास करना हितकारी है। बाक़ी जप-तप और उपवास के साधनों द्वारा आत्मा मिले ऐसा नहीं है।

उणोदरी के समान दूसरा कोई तप नहीं। पूज्य दादाश्री ने जीवन में सेम्पल जितना भी उपवास नहीं किया। हाँ, पूरी ज़िन्दगी उणोदरी तप किया था।

लाख उपवास करने से भी कषाय नहीं गए तो वैसे उपवास का

क्या फल? उपवास और कषाय साथ में रहें, वह भयंकर नुकसान करवाता है। दो बजे तक भोजन नहीं मिले तब मन से कह देना कि आज उपवास है और वहाँ समता में रहे उसके जैसा एक भी उपवास नहीं है!

[२२] लौकिक धर्म

धर्म में सूक्ष्म इच्छाओं का भी वास रहा हो वह धर्म, धर्म नहीं है, व्यापार है!!!

'रिलेटिव' में कमाए, वह 'रियल' में लुट जाता है। धर्म में लूटबाज़ी नहीं चलती। उसके जोखिम तो कल्पना से बाहर है।

साधना के सिद्धांत समझे बिना तो साधक क्या साधना करे? मोक्ष और पक्ष दोनों विरोधाभासी हैं। वीतराग वाणी के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। प्रत्यक्ष ज्ञानी के बिना मोक्ष संभव नहीं है।

[२३] मोक्ष प्राप्त करना, ध्येय

सिद्ध दशा अर्थात् परमात्मस्वरूप की स्थिति। वहाँ करने को कुछ भी नहीं है। ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद, वह उनकी स्वाभाविक दशा! वहाँ सिद्धगति के अनंत सुख का निरंतर वेदन करना होता है।

मोक्ष अर्थात् मुक्त भाव। पहले संसारी दुःखों से मुक्ति फिर सर्व कर्मों से मुक्ति। जो मुक्तपुरुष हों, उनके पास से मुक्ति मिलती है।

जहाँ किसी भी प्रकार की भीख नहीं, लक्ष्मी, कीर्ति, विषय, शिष्य, मंदिर, मान की, वहाँ जगत् की तमाम सत्ता झुकती हैं!

समझ बिना भूल की हो जाए तब मोक्ष होता है। देह में आत्मबुद्धि, वह संसार और आत्मा में आत्मबुद्धि वह मोक्ष।

मोक्ष, वह जाने की, प्राप्त करने की, या कोई स्थिति नहीं है। वह तो खुद का स्वभाव ही है। खुद मोक्ष स्वरूप ही है, मात्र उसका भान भूला हुआ है। 'ज्ञानी पुरुष' खुद के स्वरूप का स्वभाव का भान करवाते हैं। वहाँ से मोक्ष का अनुभव शुरू होता है!

सबसे सरल कोई चीज़ हो तो मोक्षमार्ग! बैल खेत में से घर सरलता से जाता है और खेत में खींचकर ज़बरदस्ती ले जाना पड़ता है। मोक्ष तो खुद का ही घर है। संसार जुताई किया जानेवाला खेत है। वहाँ पर ही भयंकर कष्ट, विघ्न और विकल्प हैं। खुद के घर में निर्विकल्प दशा है, परमानंद है, अक्रियता है!

'आत्मा' निरंतर मुक्त ही है, कभी भी बंधा ही नहीं। भ्रांति से बंधन भासित होता है। 'ज्ञानी' कृपा से भ्रांति खत्म होते ही मुक्तता का भान होता है!

[२४] मोक्षमार्ग की प्रतीति!

मोक्ष प्राप्त करने का :

धर्म कौन-सा?	: आत्मधर्म!
वेश कौन-सा?	: चाहे जो!
कौन-से स्थानक में?	: वीतराग स्थानक में!
कौन-सी दशा में?	: वीतराग दशा में!
कौन-से संप्रदाय में?	: निष्पक्ष है, वहाँ!
सद्गुरु की पहचान क्या?	: निशदिन आत्मा का उपयोग, अपूर्व, बेजोड़ फिर भी अनुभवगम्य वाणी!
प्रतीति क्या?	: वहाँ आत्मा स्थिर हो।
लक्षण क्या?	: कषाय रहित परिणाम।
इस काल में अस्ति कहाँ?	: संपूज्य श्री दादाश्री!
प्राप्ति किस तरह?	: परम विनय से।
सम्यकत्व की प्राप्ति कहाँ से?	: कषाय रहित सद्गुरु से।
धर्म किस तरह होता है?	: कषाय रहित सद्गुरु से।
धर्म का साधन क्या?	: उपादान की जागृति।
धर्म किसे कहें?	: कषायों का कम होना, वह।
मोक्ष का सरल उपाय?	: कषाय रहित 'ज्ञानी' की सेवा।

कौन-से साधन से मोक्ष?	: आत्मज्ञान से।
मोक्षमार्ग में व्यवहार बाधकरूप है?	: नहीं, बाधा है अज्ञान की।
मोक्ष मार्ग में शासन देव-देवीयों की आराधना की ज़रूरत है?	: हाँ, मार्ग में कोई अड़चन नहीं आए उसके लिए।
जैनों की चौथ सच्ची या पाँचम?	: जो अनुकूल आए वह सच्ची। जिससे धर्म हो वह सच्ची, और अधर्म हो वह खोटी।
जैन किसे कहा जाता है?	: जिसने 'जिन' की या जिनेश्वर की वाणी सुनी हो, वह। सुनकर, श्रद्धा रखकर उसका संपूर्ण पालन करे, वह साधु और अंशत: पालन करे, वह श्रावक!

[२५] आइ एन्ड माइ

सेपरेट आइ (मैं) एन्ड माइ (मेरा) विथ ज्ञानीस् सेपरेटर। आइ इज़ इम्मोर्टल। माइ इज़ मोर्टल। (आइ और माइ को ज्ञानी के उपकरण से अलग करें। आइ शाश्वत है और माइ नाशवंत है।) - दादा भगवान

जहाँ-जहाँ 'माइ' की जकड़न है उसे एक तरफ हटाया जाए तो अंत में एब्सोल्यूट 'आइ' मिलता है।

'आइ', वह भगवान और 'माइ', वह माया। - दादा भगवान।

ज्ञानी 'आई' एन्ड 'माइ' के बीच में भेदरेखा डाल देते हैं।

[२६] स्मृति -राग-द्वेषाधीन

स्मृति राग-द्वेष के अधीन है। जिस-जिस में राग या फिर द्वेष है, उसकी याद सताती है।

जिन्हें आत्मा के सिवाय कुछ भी याद नहीं आए, वे वीतराग। निरंतर

आत्मस्थ होने के कारण 'ज्ञानी' को जगत् विस्मृत रहता है, पर दर्शन में उन्हें सबकुछ ही दिखता है। स्मृति, वह पौद्गलिक शक्ति है। दर्शन, वह आत्मा की शक्ति है।

याद आए, वह परिग्रह। फिर भी ज्ञानी याद आएँ, उस राग को प्रशस्त राग कहा है। जो राग संसार की ममता उड़ाकर ज्ञानी में रख दे, तो वह राग ही मोक्ष का कारण है।

फूल चढ़ाए उस पर राग नहीं और गालियाँ दे उस पर द्वेष नहीं वह समता है। समताभाव भुलावे में डाल सकता है, जब कि ज्ञाता-दृष्टाभाव में जागृति सतत रहती है।

संसार में संतोष होता है, पर तृप्ति नहीं होती। संतोष से तो नये बीज डलते हैं!

[२७] निखालिस

आत्मज्ञान वहाँ खरी निखालिसता है। शास्त्र पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। निखालिस होना है। निखालिस अर्थात् प्योर!

असामान्य मनुष्य यानी जो जीव-मात्र के लिए सहायक बन जाए! खुद प्रकृति से पर बनें, सच्ची आज़ादी प्राप्त करें, वह!

[२८] मुक्त हास्य

मुक्त हास्य संपूर्ण मुक्त पुरुष के मुखारविंद की निरंतर शोभा है! भीतर के तरह-तरह के आग्रह, दोष, एटिकेट (शिष्टाचार) के भूत हास्य को तनाववाला रखते हैं। सरलता, निर्दोषता, उतना ही हास्य मुक्त! वीतरागता वहाँ संपूर्ण मुक्त हास्य!

[२९] चिंता : समता

चिंता तो चार पैरों की गति का चित्रण करती है!

खुदा को छूकर बैठे हुए 'ज्ञानी' और उन 'ज्ञानी' के नज़दीक बैठे, वह

खुदा के कितने नज़दीक गया!!! वहाँ नीरव शांति की अनुभूति के सिवाय अन्य क्या हो सकता है?

[३०] संयम परिणाम

बाह्य संयम को भगवान ने संयम नहीं कहा है, परन्तु पर-परिणति उत्पन्न नहीं हो वह संपूर्ण संयम कहलाता है। क्रोध-मान-माया-लोभ के संयम को संयम परिणाम कहा जाता है। संयम से ही आत्मशक्ति प्रकट होती है।

[३१] इच्छा पूर्ति का नियम

मन का स्वभाव नित नया-नया ढूंढने का है। भीतर तरह-तरह की इच्छाएँ होती रहती हैं। वहाँ कुदरत उसे कहती है कि तेरी सभी अर्ज़ियाँ स्वीकार होंगी, पर हमारी सुविधा अनुसार! इच्छा हो और वस्तु मिले, वह अधोगति में ले जाता है और इच्छा हो, फिर भी वस्तु का ठिकाना नहीं पड़े, वह ऊर्ध्वगति में ले जाता है।

[३२] टी.वी की आदतें

मनुष्य देह बहुत मुश्किल से मिली है। परन्तु जिसकी जैसी समझ हो, वैसा उसका उपयोग करता है। कृष्ण भगवान गीता में यही कह गए हैं कि मनुष्य अनर्थ टाइम बिगाड़ रहे हैं। समझ के अभाव के कारण मनुष्यत्व छिन जाता है और सारा टाइम व्यर्थ चला जाता है।

[३३] लोभ की अटकण

खुद के पास सबकुछ ही है, फिर भी ढूंढे, वह लोभी। 'व्यवस्थित में जो हो वह भले हो।' कहने से लोभ की गाँठ टूटने लगती है।

[३४] लगाम छोड़ दो

एक क्षण भी पाँच इन्द्रियरूपी घोड़ों की लगाम छूटती नहीं है, और ढलान आए वहाँ खींचने के बदले ढीली रखता है और चढ़ाई पर ढीली रखनी

है वहाँ खींचता है। इसलिए 'ज्ञानी पुरुष' लगाम 'व्यवस्थित' को सौंपकर 'देखते' रहने का प्रयोग करना सिखाते हैं। सप्ताह में रविवार को यह प्रयोग करने से 'व्यवस्थित' यथार्थ रूप से समझ में आने लगता है, आचरण क्या हो रहा है, वाणी से रिकॉर्ड कैसी बज रही है, उसे और मन को 'खुद' देखते रहना है। जितने अंश से मन, वाणी और काया को जुदा देखा, उतने अंश तक केवलज्ञान उपजता है। मन-वचन-काया की क्रिया को हटानी या बदलनी नहीं है, उसे मात्र देखना ही है! डिस्चार्ज को किस प्रकार बदला जा सकता है? जब खुद अपने ही पुद्‌गल परिणामों को देखता रहे, तब केवलज्ञान सत्ता में होता है! 'क्या होता है, उसे देखते रहना।' वह ज्ञानियों की अंतिम दशा का संयम है!

[३५] कर्म की थियरी

समाधान वहाँ धर्म, असमाधान वहाँ अधर्म।

कर्म क्या है? आप ज्ञानी हैं, तो कर्म आपके नहीं हैं, अज्ञानी हैं, तो कर्म आपके हैं, कर्त्ताभाव से कर्म बंधते हैं। 'मैंने किया' उस आरोपित भाव से कर्म बंधते हैं। 'मैं चंदूलाल हूँ' वही कर्म है। आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है। भ्रांति से वैसा भासित होता है, भ्रांति हटी की कर्म का कर्त्ता नहीं और कर्म भी नहीं। कर्म कौन करता है? पुद्‌गल या आत्मा? दोनों में से कोई भी नहीं, अहंकार ही कर्म करता है। आत्मा व्यवहार से कर्त्ता है और निश्चय से अकर्त्ता है। आत्मा स्वभावकर्म का कर्त्ता है। पर रोंग बिलीफ़ से 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा मानता है और कर्म बंधते हैं। आत्मा की हाज़िरी से अहंकार खड़ा होता है और उसमें कर्त्ताभाव खड़ा होता है और उस भाव के अनुसार पुद्‌गल सक्रिय बन जाता है! अहंकार गया कि सबकुछ हो गया खत्म!!! 'ज्ञानी पुरुष' खुद के स्वरूप का भान करवा दें, उसके बाद कर्म बंधते ही नहीं।

अनंत जन्मों के कर्म अर्थात् सभी जन्मों के कर्मों का जोड़ नहीं, परन्तु सार रूप के कर्म हैं! शुभ कर्म भोगते समय मिठास आती है और अशुभ भोगते हुए कड़वाहट!

स्थूल कर्म, यानी कि पाँच इन्द्रियों से अनुभव में आनेवाले कर्मों के

फल यहीं के यहीं भोग लिए जाते हैं और सूक्ष्मकर्म जो दिखते नहीं, मालिक को भी पता नहीं चलता, उन कर्मों का फल अगले जन्म में भोगा जाता है। दान देते हैं, वह स्थूल कर्म। उसका फल नाम, कीर्ति, वाह-वाह के रूप में लोग तुरन्त देंगे ही, परन्तु दान देते समय भीतर जो रहता है भाव, जैसे कि, इस मेयर के दबाव के कारण देना पड़ा, नहीं तो नहीं देता, या फिर मेरे पास अधिक होता तो अधिक देता, ऐसे भाव की वर्तना ही अगले भव में फलित होती है। स्थूल क्रिया के पीछे रहा अभिप्राय ही सूक्ष्मकर्म 'चार्ज' करता है। स्थूल कर्म डिस्चार्ज स्वरूप में है, इसलिए उसकी स्वाभाविक क्रिया होती है, कोई कर्त्ता नहीं और सूक्ष्म कर्म का कर्त्ता अहंकार है। 'मैंने किया' वह भाव ही कर्म बाँधता है, अक्रमविज्ञान कहता है। 'कर्म' से नहीं किन्तु 'व्यवस्थित' शक्ति से आपका चलता है। कर्म तो भीतर पड़ा हुआ ही है, परन्तु उसे रूपक में लानेवाला 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है, कर्म तो 'व्यवस्थित' का एक अंश है!

आत्मा की चैतन्य शक्ति ऐसी है कि रोंग बिलीफ़ से विकल्प होता है कि यह मैं हूँ, तुरन्त सक्रिय स्वभाव से परमाणु वहाँ पर ही 'चार्ज' होकर आत्मा से लिपट जाते हैं, जिन्हें कर्म कहते हैं।

पीछे हटे बिना मन-वचन-काया की पूरी एकता से जो किया जाता है, उससे भयंकर गाढ़ कर्म बंधते हैं, जिनसे छूटना बहुत मुश्किल होता है, असंख्य बार हो चुकी आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान से ही छूटा जा सकता है।

'मैं चंदूलाल हूँ' मानकर जो-जो किया जाता है, फिर निष्काम करने जाए तो भी कर्म, शुभकर्म तो बंधते ही हैं। निष्काम कर्म में खुद अकर्त्ता नहीं बनता, जब तक 'खुद कौन है' वह नक्की नहीं हो, तब तक किस प्रकार से हो सकता है? क्रोध-मान-माया-लोभ की उपस्थिति और निष्काम कर्म दोनों एक साथ किस प्रकार हो सकते हैं? 'मैं निष्काम कर्म करता हूँ' वह मान्यता जाए किस तरह? निष्काम अर्थात् परिणाम की धारणा के बिना करते जाना वह, इतना कौन कर सकता है?

अनुमोदना दो प्रकार की हैं - एक में अनुमोदना के आधार पर ही

क्रिया होती है-वह अधिक जिम्मेदार है, जब कि दूसरे में सिर्फ हाँ जी, हाँ जी होता है। वह नहीं हो तो भी होनेवाली क्रिया में कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी जिम्मेदारी इतनी नहीं होती। धर्म में उल्टी अनुमोदना भयंकर दोष बाँध देती है!

[३६] भाव, भाव्य और भावक

भीतर भावक हैं वे भाव करवाते हैं, आत्मा नहीं। अंदर भावक-क्रोधक-लोभक-निंदक और चेतक भी हैं। भावक भाव करवाएँ तब आत्मा भाव्य हो जाता है, निज स्वरूप का भान भूला है इसलिए ही तो न! भाव्य भावक के साथ एक हो जाए, वहाँ योनि में बीज पड़ता है। भाव्य भावक में एकाकार हुए बिना जुदा रहकर 'देखता' रहे तो बंधन नहीं है। इतना ही आत्मविज्ञान समझने की ज़रूरत है।

भावक-वे न तो वेदनीय हैं, न ही विकल्प, न ही वह अंतःकरण का कोई भाग है। अंतःकरण भी भावकों के बताए अनुसार चलता है। भावक भाव करवाएँ, तब आत्मा मूर्छित हो जाता है। प्रत्येक क्षण पलटे वह आत्मा हो ही नहीं सकता, वे भावक हैं।

प्रमेय के अनुसार प्रमाता होता है। समृद्धि और संसारभाव बढ़े, वैसे उसका प्रमेय बढ़ता है। वैसे ही प्रमाता भी बढ़ता है। वास्तव में प्रमाता वह कहलाता है कि आत्मा पूरे ब्रह्मांड में प्रकाशमान हो जाए। प्रमेय पूरा ब्रह्मांड है, जहाँ लोक है वहाँ पर।

[३७] क्रियाशक्ति : भावशक्ति

भावशक्ति ही खुद के हाथ में है, क्रियाशक्ति नहीं। उसमें भी मोक्ष में जाने के भाव के अलावा अन्य कोई भाव करने जैसे नहीं हैं। जो भाव होते हैं वे नेचर में जमा हो जाते हैं। नेचर फिर उन्हें दूसरे सभी संयोग मिलवाकर कार्य को रूपक में लाने में सहायता करता है।

भाव ऐसी सूक्ष्म वस्तु है कि जिसे कोई देख ही नहीं सकता, ज्ञानी के अलावा! भाव से योजना गढ़ी जाती है और दूसरे जन्म में फलित होती है।

इच्छा, वह परिणाम है। भाव, वह कारण है। 'इस जगत् की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे खपती नहीं', ऐसा निश्चय होने से भावों को 'सील' (पक्का बंद करना) लग जाती है। स्वरूपज्ञान होने के बाद इच्छाएँ इफेक्ट के रूप में ही होती हैं।

विचार और भाव में बहुत अंतर है। सिर्फ भाव ही, ज्ञान के बिना पकड़ा ही नहीं जा सकता। विचार इफेक्ट हैं, भाव कॉज़ है। भाव को द्रव्य में परिणमित होने में बहुत-बहुत समय चला जाता है। भाव कम्प्यूटर में जाता है, उसे परिपक्व होने के लिए दूसरे सारे संयोग मिलने चाहिए।

जगत् को प्रतिपक्षी भाव हुए बिना रहते ही नहीं, 'इसने मुझे ऐसा क्यों कहा?' वैसा प्रतिपक्षी भाव, पराक्रम भाव में आए हुए को तो ऐसा दिखता है कि यह मेरे ही कर्म का उदय है!

सिर्फ मन ही नहीं, परन्तु पूरा अंतःकरण बिगड़े तब प्रतिपक्षी भाव होता है। मन बिगड़े वहाँ पर प्रतिक्रमण करे, तब वह सुधर जाता है।

ज्ञानी की आँखों में किसी भी प्रकार का भाव नहीं दिखता। प्रतिपक्षी भाव ही क्या, पर किसी भी प्रकार का भाव जहाँ नहीं है, उनके दर्शन करने से ही समाधि हो जाती है!

भाव का फोर्म भरा हुआ हो तभी वहाँ दूसरे सारे एविडेन्सिस इकट्ठे होते हैं और फल आता है। जिसे विवाह नहीं करना हो, वह विवाह नहीं करने के भाव में दृढ़ रहे तो उसे वैसे एविडेन्स मिल आते हैं। परन्तु बीज नहीं डाला हो, वहाँ चाहे जितनी बरसात पड़े तो भी वह किस प्रकार उगे? सड़ा हुआ बीज नहीं उगता, वैसे ही डगमगाता हुआ भाव रूपक में आए बिना नष्ट हो जाता है।

स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के बाद भावकर्म ही उड़ जाता है। फिर भूतभाव रहते हैं। भावि भाव होने बंद हो जाते हैं और वर्तमान में तो स्वभावभाव में ही होता है!

अज्ञानदशा में भावात्मा है और ज्ञानदशा में ज्ञानात्मा। भावात्मा के पास

केवल भावसत्ता ही होने के कारण उससे होनेवाले भाव नेचर में जाते हैं, जिसे कुदरत पुद्गल मिश्रित बनाकर रूपक में लाती है। इसमें आत्मा की कोई सक्रियता नहीं है। 'व्यवस्थित' ही सबकुछ 'एडजस्ट' कर देता है।

ब्रह्मचर्य के भाव होते-होते भावस्वरूप हो जाए तो आनेवाले भव में सुंदर ब्रह्मचर्य उदय में आता है! 'जगत् का कल्याण किस तरह से हो' ऐसे भाव होते-होते भावस्वरूप में वैसा भावात्मा हो जाता है। पहले भावात्मा तीर्थंकर होता है। फिर द्रव्यात्मा तीर्थंकर होता है। विकल्प भाव को जन्म देता है! भीतर परमाणुओं की जो डिमान्ड होती है, उस अनुसार 'व्यवस्थित' सब इकट्ठा करके डिमान्ड पूरी करता है। लट्टू में डोरी लपेटते हैं-वे भाव हैं और खुलती जाती है-वह द्रव्य है।

शुद्धात्मा को भाव ही नहीं होता, पर प्रतिष्ठित आत्मा भाव करता है। भाव दृढ़ हो, वह रूपक में आता है।

क्रमिक में द्रव्य को तोड़ते रहना है। अक्रम में द्रव्य, भाव दोनों को एक तरफ रख दिया जाता है, फिर वहाँ केवल शुद्धात्मा पद की स्थिति रहती है।

भावमन भ्रांति से उत्पन्न होता है और द्रव्यमन फिज़िकल (स्थूल) है।

पिछले जन्म का भावकर्म इस जन्म में द्रव्यकर्म है कि जो आवरण स्वरूप होता है, वह आठ कर्म के चक्षु लाता है और उनके माध्यम से देखने से वैसे ही नये भाव उत्पन्न होते हैं। जिन्हें पुद्गल परमाणु पकड़ लेते हैं, फिर वैसा द्रव्य परिणाम में आता है। परमाणु पकड़े जाते हैं, वहाँ प्रयोगशा होते हैं। जो फिर मिश्रसा के रूप में भीतर पड़े रहते हैं, वे कड़वे-मीठे फल देकर वापिस चले जाते हैं, वापिस ठेठ मूल शुद्ध विश्रसा अवस्था में! परन्तु उस फल के समय वापिस खुद तन्मयाकार हो जाए तो नये प्रयोगशा होकर वह साइकिल (चक्र) चलती ही रहती है। आत्मभाव में आ जाए, फिर तन्मयाकार होने का नहीं रहने से 'चार्ज' होने का प्रयोग रुक जाता है।

खुद से गलत हो जाए और मन में रहा करे कि यह गलत हुआ, गलत हुआ वह प्रतिभाव। ज्ञानी को प्रतिभाव नहीं होते।

[३८] 'स्व' में ही स्वस्थता

अवस्था में एकाकार हुआ कि हो गया अस्वस्थ। 'स्व' में मुकाम वहाँ स्वस्थ।

[३९] ज्ञान का स्वरूप : काल का स्वरूप

प्रारब्ध से हर एक व्यक्ति बंधा हुआ तो होता ही है। इसलिए ही तो जन्म होता है। ज्ञान के बाद नये अगले जन्म का प्रारब्ध नहीं बंधता, वैसा अक्रमविज्ञान है।

ज्ञानी पुरुष निरंतर वर्तमान में ही रहते हैं! इसलिए 'काल को वश किया' कहा जाता है!

[४०] वाणी का स्वरूप

जो बोलता है वह टेपरिकॉर्डर बोलता है, खुद नहीं बोलता और अहंकार करता है कि मैं बोला! आत्मा में बोलने का गुण ही नहीं है। वैसे ही पुद्‌गल का भी गुण नहीं है। शब्द तो पुद्‌गल पर्याय है। परमाणु रगड़ खाकर बाजे में से निकलें तब आवाज़ होती है, उसके जैसा है यह!

ज्ञानी की वाणी भी टेपरिकॉर्ड है, चेतन नहीं है। परन्तु चेतन को स्पर्श करके निकलती है! ज्ञानी की वाणी स्याद्वाद अर्थात् किसीका किंचित् मात्र प्रमाण नहीं *दुभे* (आहत हो) वैसी होती है। वह वाणी संपूर्ण जागृतिपूर्वक निकलती है और वह सामनेवाले के हित के लिए ही होती है। संसारभाव वहाँ होता ही नहीं।

ज्ञानी की वाणी उल्लासपूर्वक सुनता रहे तो खुद की वैसी ही वाणी हो जाती है।

सर्व कर्मों का क्षय हो, कषाय निर्मूल हो जाएँ, पूरा वीतराग विज्ञान हाज़िर हो जाए, आत्मा का स्पष्ट अनुभव हो जाए, अहंकार की भूमिका का अंत आए, जगत् पूरा निर्दोष दिखे, तब स्याद्वाद वाणी का भव्य उदय होता है! तब तक उसे बुद्धि की, व्यवहार की बात मानी जाती है। तब तक मोक्षमार्ग

में उपदेश देना भयंकर जोखिम माना जाता है। जहाँ वाद नहीं, विवाद नहीं, संवाद नहीं, जहाँ मात्र स्याद्वाद है, उनके द्वारा ही उपदेश दिया जा सकता है। सत् को समझने में संवाद-विवाद नहीं होते।

खुद का सत्य है इसलिए सामनेवाले को मानना चाहिए, वह भाव भी भयंकर रोग है! सच्ची बात सामनेवाला कबूल करता ही है और नहीं करे तो हमें छोड़ देना चाहिए।

भूल रहित वाणी तो तभी निकलती है कि जब वाणी के ऊपर का मालिकीभाव शून्यता को प्राप्त करे! 'मैं कितना अच्छा बोला' वह भाव आया, वहाँ वाणी का मालिकीभाव रहा हुआ होता ही है।

वाणी से स्व-बचाव करना - वह धर्मचर्चा का एक तरीका है, कषाय रहित भूमिका में रहकर सामनेवाले को कन्विन्स करे, उसे बदले - वह दूसरा तरीका है, और सामनेवाले को बदलते-बदलते खुद ही उससे मुड़ जाए - वह तीसरा तरीका!

जहाँ वीतराग चारित्र की वर्तना (आचरण) है, वैसे ज्ञानी की मीठी, मधुर, स्याद्वाद वाणी किसीको आघात-प्रत्याघात नहीं करती। संपूर्ण आग्रह रहित वाणी ही सामनेवाले के हृदय को स्पर्श करती है और तब लोगों का कल्याण होता है! ऐसी वाणी बेजोड़ होती है। ज्ञानी की गज़ब की सिद्धि होती है। हम भी उस भाव से 'ऐसी वाणी हो' की प्रार्थना करें तो वह प्राप्त होती है।

वचनबल तो उसे कहा जाता है कि जिस वचन के अनुसार ही सभी उल्लासपूर्वक आचरण करें! वाणी का दुरुपयोग, झूठ, सामनेवाले को डराया, झूठ के सहारे स्व-बचाव, दुराग्रह किए हों, उससे वचनबल टूट जाता है। सामनेवाले के हृदय को घाव लगानेवाली वाणी अगले जन्म में उसके फल स्वरूप बंद हो जाती है। 'किसीको ज़रा भी दुःख नहीं देना है और वचनबल प्राप्त हो' ज्ञानी से ऐसी माँग करते रहने से वह मिलता है। बोलने की जगह हो, वहाँ पर मौन रहे वह मौन तपोबल। मौन का महत्व नहीं है, मौन के साथ तपोबल चाहिए। ज्ञानियों के मौन तपोबल होते हैं, जो पूरे जगत् का कल्याण करनेवाले होते हैं। मुख पर भावाभाव की रेखा नहीं दिखे तब समझना कि

वाणी का मालिकीपन गया, वहाँ संपूर्ण मुक्तदशा, होती है।

अहंकार के बिना वाणी निकलती ही नहीं, वाणी खुला अहंकार है। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' की स्यादवाद वाणी के समय ही अहंकार नहीं होता, उसके सिवाय और कुछ भी बोलें, तो वह उनका अहंकार ही है, पर उसे 'डिस्चार्ज' अहंकार कहा जाता है।

वाणी का परिग्रह 'मैं कैसा बोला' वह और 'मैं बोल रहा हूँ', तब फिर कर्मबीज पड़ा। इस तरह संसार में वाणी भटकाती भी है और वीतराग वाणी संसारसागर पार भी करवाती है!

यह टेपरिकॉर्ड किस तरह 'टेप' होता है? अहंकार की प्रेरणा से पहले भीतर वाणी का कोडवर्ड होता है। कोर्डवर्ड में से शोर्टहेन्ड होता है, उसके बाद जब बजता है तब यह सुनाई देता है, वह 'फुल डिटेल' में निकलती है इसलिए।

मुख पर से भावाभाव की रेखा नहीं दिखे तब समझना कि वाणी का अपने भाव के अनुसार 'टेप' होता है। भाव में तो सिर्फ इसका अपमान करना है, इतना ही होता है, फिर संयोग हों, तब घंटों तक गालियाँ देती हुई वाणी अपने आप ही निकलती है। भाव होता है, उस समय ही 'कोडवर्ड' में छप जाता है और फिर 'शोर्टहेन्ड' में होकर बाहर निकलता है, तब 'फुल फोर्म' में निकलता है! आत्मा और परमाणु मिलते हैं, वहाँ-वहाँ आत्मा की उपस्थिति में भावाभाव के स्पंदन जगते हैं और उसमें अहंकार मिल जाए कि वे स्पंदन टाइप हो जाते हैं। जब गत भाव उदय में आएँ और उनके अनुसार ही तुरन्त ही टेप हो चुकी वाणी निकलती है। जो वाणी निकलती है, वह प्योर गत भावों का 'डिस्चार्ज' ही है।

किसीका किंचित् मात्र भी उल्टा-सीधा बोला गया तो वह टेप हो ही जाता है, परन्तु यह मनुष्य का मन, देह भी ऐसा है कि जिसमें टेप हो जाता है। सोते हुए व्यक्ति के पास उल्टा बोलें, तो भी वह ग्रहण कर लिया जाता है। यहाँ पर यह कुदरत की मशीनरी है! अँधेरे में या अकेले में ऐसा बोला गया तो वैसा ही ज़हर जैसा सुनने को मिलेगा। अपनी तरफ से थोड़े भी उल्टे स्पंदन खड़े

होते ही प्रतिक्रमण करके उन्हें मिटा देना।

हम बोले वह भी रिकॉर्ड है पर सामनेवाला बोला वह भी रिकॉर्ड ही है। इतना ही समझ लें तब फिर कभी भी किसीके बोल से चोट नहीं लगेगी।

'स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं।' - दादा भगवान।

वाणी की मर्यादा कितनी? समझ केवलदर्शन की होने के बावजूद वाणी 'एट ए टाइम' (एक समय में) एक से अधिक 'व्यू पोइन्ट' क्लियर नहीं कर सकती। जब कि दर्शन 'एट ए टाइम' समग्र डिग्री पर घूम सकता है।

विश्व के तमाम रहस्यज्ञान, गूढ़ ज्ञान को जानने के लिए 'आत्मज्ञानी पुरुष' के पास जाने के अलावा और कोई उपाय ही नहीं। इसलिए तो शास्त्रकारों ने 'ज्ञानी पुरुष' को स्वयं देहधारी परमात्मा ही कहा है। वहाँ जाए तो खुद का आत्मा जानने को मिले!

- डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुक्रमणिका

[१] जागृति

जागृति हो, अचल स्वभाव की १
भावनिद्रा में से जागो १
पौद्गलिक जागृति : स्वरूप जागृति २
केवलज्ञान अर्थात्... २
संसार जागृति - दुःख का उपार्जन २
खिलौनों की रमणता ३
जागृति ही परिणमित मोक्ष में ४
इन्द्रियज्ञान : जागृति ५
निजदोष दर्शन ७
'टॉपमोस्ट' जागृति ७
भाव जागृति-स्वभाव जागृति ८
जागृति की शुरूआत... ९
'योग-क्रियाकांड' जागृति नहीं देते १०
जागृति, जागृत की आराधना से ही १२
भावनिद्रा टालो १३
सच्ची समाधि, जागृति सहित 'मैं' कौन? जानने से, १३
जागृति खुलती है १४
अकर्त्तापद, वहाँ संपूर्ण जागृति १५
उपयोग क्या? जागृति क्या? १६
अक्रमविज्ञान के कारण जागृति १६
आग्रह मात्र भावनिद्रा ही! १७
हिताहित का विवेक, वह भी जागृति १७
ज्ञानी जागृत वहाँ जगत्... १८
चंचलता ही दुःख का कारण १९

[२] ध्यान

ध्यान का स्वरूप २२
ध्यान : ध्येय, ध्याता का संधान २३
अहंकार-ध्यान में नहीं, पर क्रिया में २५
ध्यान के परिणाम २८
आत्मध्यान से ही समाधि २९

[३] प्रारब्ध-पुरुषार्थ

पुरुषार्थ किसे कहते हैं? ३०
पाचन में पुरुषार्थ कितना? ३१
जीवों का ऊर्ध्वगमन किस तरह? ३३
तो सच्चा पुरुषार्थ कौन-सा? ३५
प्रारब्ध कर्म क्या? संचित कर्म क्या? ३६
भ्रांत पुरुषार्थ और प्रारब्ध कर्म ३७
पुरुषार्थ कौन-सा करें? ३८
पुरुषार्थ यानी उपयोगमय जीवन ४३
'व्यवस्थित' की यथार्थ समझ ४४
भाग्य बड़ा या पुरुषार्थ? ४८
क्रमिक मार्ग, भ्रांत पुरुषार्थाधीन ५०
प्रारब्ध, किस तरह उदय में आता है? ५२
सफल हो वह पुरुषार्थ ५३

[४] श्रद्धा

अंधश्रद्धा-अज्ञश्रद्धा ५५
आत्मश्रद्धा-प्रभुश्रद्धा ५६
श्रद्धा-ज्ञान ५६

[५] अभिप्राय

अभिप्रायों का अँधापन ५७
अभिप्राय और इन्द्रियाँ ५८
अभिप्राय में से अटकण ५८
अभिप्राय किस तरह छूटें? ५८
स्वागत योग्य अभिप्राय ६२
अभिप्राय का स्वरूप ६२
मिश्रचेतन के प्रति अभिप्राय ६३

[६] कुशलता का अँधापन

कुशलता, एक्सपर्ट होने से रोके ६४
सार (बेलेन्स) का खाता ६६

[७] अंतराय

अंतराय किस तरह पड़ते हैं? ६८
मोक्षमार्ग में अंतराय ७१
ज्ञानांतराय-दर्शनांतराय किससे? ७१

[८] तिरस्कार-तरछोड़

जिसका तिरस्कार, उससे ही भय ७४
तरछोड़, कितना जोखिमवाला? ७५
तरछोड़ का उपाय क्या? ७६

[९] व्यक्तित्व सौरभ

वीतरागता से बरतते हैं 'ये' 'ज्ञानी' ७८
१९५८ का वह अद्‌भुत दर्शन ७९
ज्ञान का तरीका नहीं होता ८०
'ज्ञानी', मोक्ष का प्रमाण देते हैं ८१
निमित्त की महत्ता ८४
पुण्य का संबंध कब तक? ८५
धर्मध्यान ८६
शुक्लध्यान ८६
मन और आत्मा ८६
प्रेम और भक्ति ८६
निर्दोष दृष्टि, वहाँ जग निर्दोष ८७
कर्त्ता हुआ तो बीज पड़ेंगे ८८
आत्मज्ञान मिला या प्रकट हुआ? ८८
...तब वाणी विज्ञान कह जाती है ८९
...वह कैसा अद्‌भुत सुख ९०
'ज्ञानी' विकसित करें स्व-शक्ति ९०
'ज्ञानी' की उपमा? ९०
'ज्ञानी' की परख ९१
आप्तवाणी-कैसी क्रियाकारी ९२

[१०] अक्रम मार्ग

'ज्ञानी' कृपा से ही 'प्राप्ति' ९४
...अपूर्व और अविरोधाभास ९५
अक्रम में पात्रता ९६
अहो! ऐसा ग़ज़ब का ज्ञान! ९७

[११] आत्मा और अहंकार

सनातन चेतन ९९
कुदरत अर्थात्... ९९
किसका किस पर क़ाबू? ९९
अहंकार का स्वरूप १०१
धर्म : भेद स्वरूप से - अभेद स्वरूप से १०२
तरणतारण ही तारें १०३

[१२] व्यवस्था 'व्यवस्थित' की

'व्यवस्थित शक्ति' १०४
कालचक्र के अनुसार... १०४
सेवा में समर्पणता १०५
क्या नई ही समाज-रचना? १०६

[१३] व्यवहारधर्म : स्वाभाविकधर्म

सुख प्राप्त करने के लिए धर्म कौन-सा? १०८
सर्व समाधान से, सुख ही १०८
भगवत् उपाय ही, सुख का कारण १०९
काल का तो क्या दोष? १११
अंतरसुख - बाह्यसुख १११
अहंकार विलय होने से सनातन सुख ११३
मिथ्या दर्शन से ही दुःख ११३
दुःख उपकारी बनते हैं ११४
पुद्गल सुख : उधार का व्यवहार ११४

[१४] सच्ची समझ, धर्म की

धर्म का स्थान ११६
धर्म : त्याग में या भोग में ११६
...तब धर्म ने रक्षण किया? ११७
जन्म से पहले और मरने के बाद...१२०
सच्चे धर्म की समझ १२१
मोक्ष का मार्ग तो... १२२
स्वभावभाव, वह स्वधर्म १२४

[१५] आचरण में धर्म

धर्म और आचरण १२५
मनुष्यत्व की सार्थकता १२५
क्लेश, वहाँ धर्म नहीं १२५
अक्रम विज्ञान : नया ही अभिगम १२६
आज्ञा ही धर्म १२७
ज्ञान के अनुसार प्रवर्तन १२७
सीधे के लिए शक्ति माँगनी पड़ती हैं १२९
प्रार्थना से शक्तियाँ प्राप्त १२९
प्रार्थना : सत्य का आग्रह १३०

[१६] 'रिलेटिव' धर्म : विज्ञान

'रिलेटिव' धर्म, डेवलप होने के लिए १३२
वीतराग धर्म ही मोक्षार्थ १३३
'रिलेटिव' धर्म की मर्यादा १३३
पारिणामिक धर्म का थर्मामीटर १३४
मुख्य भावना, मोक्षमार्ग में १३५
धर्माधर्म आत्मा १३५
ज्ञानघन आत्मा १३६
विज्ञानघन आत्मा १३७
गच्छ-मत, वहाँ 'रिलेटिव' धर्म १३७
धर्मसार अर्थात्..... १३८
धर्म क्या? विज्ञान क्या? १३९

[१७] भगवान का स्वरूप, ज्ञान दृष्टि से

ईश्वर का अंश या सर्वांश? १४०
भगवान की सर्वव्यापकता १४१
संकल्पी चेतन १४१

[१८] ज्ञातापद की पहचान

आप आत्मा? पहचाने बिना? १४३
आत्मा की भूल? १४३
स्वाध्याय या पराध्याय? १४४
अंत में तो अहंकार विलय करना है १४५
'ज्ञाता' को ही 'ज्ञेय' बनाया! १४५
अज्ञान निवृत्ति विज्ञान से १४६

[१९] यथार्थ भक्तिमार्ग

श्रद्धा ही फल देती है १४८
भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति १४९
भक्ति : परोक्ष और प्रत्यक्ष १५०
भक्ति : स्थूल से सूक्ष्मतम १५२
मोक्ष : ज्ञान से या भक्ति से? १५३
पराभक्ति : अपराभक्ति १५३

[२०] गुरु और ज्ञानी

यथार्थ गुरु १५५
लौकिक गुरु १५६
'रिलेटिव' धर्म, तो सफर के साथी जैसे १५७
व्यापार, धर्म में तो शोभा नहीं ही देता १५८
'ज्ञानी पुरुष' का सिद्धांत कैसा! १६१
धर्म का मर्म १६२
...वैसा भान, वह भी बड़ी जागृति १६२
गुरु को पहचानना.... १६२

[२१] तपश्चर्या का हेतु

तप, त्याग और उपवास १६४
प्राप्त तप १६५
'ज्ञानी' को त्यागात्याग? १६६
शुद्धात्मा का लक्ष्य १६७
'दादाई' ग्यारस १६७
आयंबिल: एक साइन्टिफिक प्रयोग १६९
उपवास में उपयोग १७०
...एक भी उपवास नहीं हुआ १७३
उणोदरी-जागृति का हेतु १७३
'उपवास', फिर भी कषाय १७४
उपवास से मुक्ति? १७७
'करो' पर फल 'श्रद्धा' से ही १७८

[२२] लौकिक धर्म

मोक्ष के लिए कौन-सा धर्म? १७९
धर्म, पक्ष में या निष्पक्षता में? १८०
धर्म में भी व्यापारी वृत्ति... १८१
...तो रिर्टन टिकिट तिर्यंच की! १८१
'आत्मा' की पहचान 'ज्ञानी' ही करवाएँ १८२
लौकिक धर्म, द्वंद्व में ही रखें १८३
तुरन्त ही फल दे वह धर्म १८४

[२३] मोक्ष प्राप्ति, ध्येय

मोक्ष, वह क्या है? १८५
मोक्षप्राप्ति का मार्ग १८६
मोक्ष अर्थात् सनातन सुख... १८७
सिद्धगति, स्थिति कैसी? १८८
मोक्ष का स्वरूप १८८
स्वर्ग, फिर भी बंधन १८९
विनाशी चीज़ नहीं चाहिए १९०
जगत् की सत्ता कहाँ पर झुके? १९१
भूल रहित बन १९२
मात्र मोक्ष का ही नियाणां १९३
मोक्ष, स्थान या स्थिति? १९३
कठिन, मोक्षमार्ग या संसारमार्ग? १९४
सच्चा मुमुक्षु कैसा होता है? १९४
आत्मा अबंध, किस अपेक्षा से? १९५
मोक्ष किसका? १९५

[२४] मोक्षमार्ग की प्रतीति

मोक्षप्राप्ति-मार्गदर्शन १९६
मोक्ष - खुद अपना भान होने से १९८

[२५] I & My

'मैं' किस तरह अलग हो? २०१
'ज्ञानी' ही मौलिक स्पष्टीकरण दें २०३

[२६] स्मृति - राग-द्वेषाधीन

तीव्र स्मृति, वहाँ तीव्र राग-द्वेष २०५
स्मृति-विस्मृति, करना मुश्किल २०६
ज्ञानी की स्मृति २०७
प्रशस्त राग, मोक्ष का कारण २०८
याद? कितना बड़ा परिग्रह! २०९

[२७] निखालिस

निखालिसता निर्भय बनाए २७०

[२८] मुक्त हास्य

जितनी सरलता उतना मुक्त हास्य २१३
मुक्त हास्य, मुक्त पुरुष का २१४

[२९] चिंता : समता

भूतकाल, अभी कौन याद करता है? २१६
परसत्ता अधिकार, चिंता को जन्म दे २१७
चिंता, सफलता का अवरोधक २१८
भ्रांति में शांति रहती है? २१९
'ज्ञानी' के सांनिध्य में कैसी निराकुलता! २२०
समता, वहाँ राग-द्वेष नहीं २२०
समभाव-समता, फर्क क्या? २२१
'समभाव से निकाल' नक्की होने पर हल २२१
समताभाव : ज्ञाता-दृष्टाभाव २२२
तृष्णा, तृप्ति और संतोष २२२

[३०] संयम परिणाम

यथार्थ संयम किसे कहते हैं? २२४
संयम से ही आत्मशक्ति प्रकट २२५
संयम के स्कोप का लाभ उठाओ! २२५
संयम ही पुरुषार्थ २२६
लोभ के सामने संयम, किस तरह? २२७

[३१] इच्छापूर्ति का नियम

कुदरत, कितनी नियमबद्ध २२८
इच्छा, वहाँ अंतराय २२९
इच्छा, उसके प्रत्याख्यान २३१

[३२] टी.वी. की आदतें

...फिर महत्व किसका? २३२
टाइम पास या जीवन व्यर्थ गँवाया? २३३

[३३] लोभ की अटकण

परसत्ता, वहाँ लोभ क्या? २३४
लोभ से प्राप्ति या नुकसान? २३४
तृप्ति, आत्मज्ञान के बिना नहीं है २३४
लोभी - हरएक बात का लोभ २३५

[३४] लगाम छोड़ दो

तो कर्त्तापद का अध्यास छूटे २३६
'ज्ञानी' का कैसा प्रयोग! २३७
'चार्ज-डिस्चार्ज' का साइन्स २३८
डिस्चार्ज स्वरूपों को, निर्दोष देखें २३९
ड्रामेटिक में कर्त्तापद नहीं २४०
संयम, चरम दशा का २४१

[३५] कर्म की थियरी

व्यवहार में, कर्म क्या? धर्म क्या? २४२
जगत् ने कर्त्ता थियरी ही जानी २४२
कर्म का कर्त्ता कौन? २४३
वह अहंकार कौन निकाले? २४५
अज्ञान, वहाँ अविरत कर्मबंधन। २४५
ज्ञान, वहाँ कर्मबंधन ही नहीं २४६
प्रायश्चित से हल्के कर्म बंधते हैं २४६
कर्म छेदन की सत्ता २६१
प्रभुस्मरण से हेल्प २६१
भगवान को भी कर्मबंधन २६१
'ज्ञानी पुरुष' के दिव्य कर्म २६२
कर्म का स्वरूप २६५
कर्म और 'व्यवस्थित' २६५
भावबीज के सामने सावधान २६३

कर्मबंधन, मनुष्यगति में ही २४७
कर्म, कितने ही जन्मों की सिलक २४८
हिसाब, किस तरह चुकाया जाए? २४९
आश्रव, निर्जरा : संवर, बंध २५०
शुभाशुभ का थर्मामीटर २५२
स्थूल कर्म - सूक्ष्म कर्म २५३
बुरे कर्मों से छुटकारा २५९
कर्म, पाप-पुण्य के २५९
निंदा का कर्मबंधन २६०
कर्म लय की प्रतीति २६४
पुद्‌गल के कर्मबंधन किस तरह? २६४
गाढ़ कर्मों से हल २६५
गाढ़ कर्म अर्थात् क्या? २६६
'निष्काम कर्म' किस तरह किए जाते हैं? २६७
आत्मा, अनादि से शुद्ध ही! २६८
करना, करवाना और अनुमोदन करना २६८

[३६] भाव, भाव्य और भावक

भावक ही भाव का कर्त्ता २७१
भाव में एकाकार हो, तो भाव्य २७१
भावक का स्वरूप २७२
भावक का आधार, संसारीज्ञान २७२
भावक, समसरण के अनुसार बदलते रहते हैं २७४
भावों में एकाकार नहीं हों तो मुक्ति २७६
व्यापक-व्याप्य २७७
प्रमेय-प्रमाता २७८

[३७] क्रियाशक्ति : भावशक्ति

क्रियाशक्ति, परसत्ता अधीन २७९
भाव के अनुसार फल आता है। २८०
भाव-इच्छा, फर्क क्या? २८०
संयोगों का मूल, भाव २८१
भाव अलग - विचार अलग २८१
क़ीमत, भाव की ही २८२
प्रतिपक्षी भाव २८४
भाव का फॉर्म २८५
भाव ही मुख्य एविडेन्स २८६
द्रव्य-भाव २८९
भावमन : प्रतिष्ठित आत्मा २९१
प्रतिभाव २९३
स्वभाव-स्वक्षेत्र : परभाव-परक्षेत्र २९४

[३८] 'स्व' में ही स्वस्थता

अवस्था में अस्वस्थ २९५
अवस्था : पर्याय २९७

[३९] ज्ञान का स्वरूप : काल का स्वरूप

स्वरूपज्ञान का अधिकारी २९९
वर्तमान में बरतें, ज्ञानी ३००
कालद्रव्य ३०२

[४०] वाणी का स्वरूप

वाणी आत्मा का गुण नहीं है ३०३
स्याद्वाद वाणी ३०४
उपदेश का अधिकारी ३०५
हृदयस्पर्शी सरस्वती ३०७
वचनबल, ज्ञानी के ३०८
मौन तपोबल ३०९
जीवंत टेपरिकॉर्ड, कैसी जिम्मेदारी! ३११
वाणी, वह अहंकार का स्वरूप ३१७
वीतराग वाणी के बिना, नहीं कोई उपाय ३१८
वाणी का रिकॉर्डिंग ३१९
वाणी का 'चार्ज पोइन्ट' ३२०
जहाँ प्रकट दीपक, वहीं काम होता है ३२१

आप्तवाणी

श्रेणी - ४

(१)

जागृति

जागृति हो, अचल स्वभाव की

जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ 'मैं हूँ' ऐसी प्रतिष्ठा की, इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा हुआ। उसमें चेतन है ही नहीं। वह 'मिकेनिकल' चेतन है। वह दरअसल आत्मा नहीं है, सिर्फ 'मशीनरी' ही है। यदि कभी उसमें पेट्रोल वगैरह नहीं डालें न, तो वह खत्म हो जाए। अरे, यहाँ से हवा ही नहीं जाने दे तो वह पूरी मशीनरी बंद हो जाए। 'मिकेनिकल चेतन' चंचल स्वभाव का है और अंदर जो दरअसल आत्मा है, वह अचल स्वभाव का है। कभी भी चंचल हुआ नहीं। ऐसा वह अचल आत्मा है और वही भगवान है, तीन लोकों का नाथ है परन्तु भान हो जाए तब!!! खुद को खुद का भान हो जाए तो तीन लोकों के नाथ जैसा सुख बरते। यह तो अभानता में है। यह सब अजागृत दशा में है।

भावनिद्रा में से जागो

पूरा जगत् भावनिद्रा में है। भावनिद्रा मतलब स्वभाव में सो गया, वह और फिर देहनिद्रा में तो स्वभाव में सोता है और परभाव में भी सोता है वह। देहनिद्रा में देह का भी भान नहीं रहता। देहनिद्रा में से देह का भान आए, तब दूसरी ओर भावनिद्रा रहती है। अभानता से खुद, खुद का

अहित ही करता रहता है। क्रोध-मान-माया-लोभ, वे भावनिद्रा के कारण होते हैं। किसीको किंचित् मात्र दुःख होता है, वह भी भावनिद्रा के कारण होता है। पूरा जगत् भावनिद्रा में है, उसमें से जागो। मैं तो आपको सिर्फ यही कहने आया हूँ कि जागो।

तुझे जागना है या सोना है? ऐसे कब तक सोता रहेगा?

प्रश्नकर्ता : मैं तो जाग ही रहा हूँ न?

दादाश्री : 'कौन कहता है कि तू जाग रहा है?' जग रहा हो तो किसीके साथ क्लेश नहीं हो, झगड़ा नहीं हो, किसीके साथ मतभेद नहीं पड़े, चिंता नहीं हो।

पौद्गलिक जागृति : स्वरूप जागृति

दो प्रकार की जागृति : एक पौद्गलिक जागृति और दूसरी आत्मिक जागृति। पौद्गलिक जागृतिवाला *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) में ही रमणता करता है और आत्मिक जागृतिवाला केवल आत्मा में ही रमणता करता है। पौद्गलिक जागृति बढ़ती ही जाती है और *पुद्गल* में रमणता करते-करते थक जाता है, ऊब जाता है और फिर खुद के सच्चे सुख की इच्छा करे, तब स्वरूप जागृति के संयोग सारे मिल जाते हैं और उन संयोगों के मिलने के बाद आगे स्वरूप जागृति में आता है। स्वरूप जागृति में थोड़ी आँखें खुलीं, तब फिर धीरे-धीरे पूरी आँखें खुलेंगी।

केवलज्ञान अर्थात्...

संपूर्ण जागृति को ही केवलज्ञान कहा है। दूसरा कुछ है ही नहीं। केवलज्ञान कोई नई वस्तु नहीं है। किसी भी जगह पर गफलत नहीं हो, थोड़ा भी झोंका नहीं आए, उसका नाम संपूर्ण जागृति। इस संसार की जागृति तो बहुत लोगों को होती ही है, परन्तु वह सर्वांशतः नहीं होती।

संसार जागृति - दुःख का उपार्जन

संसार की जागृति जैसे-जैसे सर्वांशतः होती जाए वैसे-वैसे संसार

अच्छा ही नहीं लगता उसे, उसे संसार दुःखदायी लगता है। उसके बाद वापिस खुद की जागृति करने का प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे इस संसार की जागृति बढ़े, वैसे-वैसे भौतिक सुख, दुःख जैसे लगते हैं, भौतिक सुख-राजसुख जंजाल जैसे लगते हैं। चक्रवर्ती राजाओं की खुद की तेरह सौ रानियाँ थीं। चक्रवर्ती का राज्य था, वह भी उन्हें निरंतर दुःखदायी लगता रहता था। क्योंकि सुख की चोटी पर बैठा हुआ व्यक्ति, जिसे संसार की जागृति अत्यधिक बढ़ चुकी हो, तब उसे संसार की जागृति ही दुःखरूप लगती है। इसलिए वह समझता है कि मुझे नया जानना बाक़ी रह गया है कि जिसमें से मुझे परमानेन्ट सुख मिले। हर एक जीव सुख को ढूंढता है। जब तक सच्चा सुख नहीं मिलता, तब तक भौतिक सुखों में जितनी जागृति हो उस अनुसार उसे सुख मिलते रहते हैं। पर यह भौतिक सुख सारा द्वंद्ववाला सुख है, इसलिए सुख के बाद दुःख आए बगैर रहता ही नहीं और आत्मिक सुख द्वंद्वातीत सुख है। जो सुख आने के बाद फिर कभी भी जाए नहीं, वह द्वंद्वातीत सुख, सच्चा सुख है। जैसे-जैसे स्वरूप की जागृति बढ़े, वैसे-वैसे सच्चा सुख प्रकट होता जाता है। यह स्वरूपज्ञान देने से आपको जागृति उत्पन्न होती है, फिर उसके बाद संसार की जागृति तो बढ़ती रहती है, पर स्वरूप जागृति ही मुख्य वस्तु है। ये फ़ॉरेन के साइन्टिस्ट 'जागृति, जागृति' बोलते हैं, पर वह जागृति *पुद्गल* में है, अध्यात्म में तो कुछ भान ही नहीं। 'इसमें' तो सोते हैं सभी, पूरा जगत् सो रहा है।

खिलौनों की रमणता

पुद्गल की जागृति अर्थात् विनाशी चीज़ों में ही रमणता। यानी खिलौनों से ही खेलते हैं सभी, पूरा जगत् खिलौनों से ही खेल रहा है।

खुली आँखों से निद्रा जैसा खेल है। जागृत हो जाए तब खिलौनों से नहीं खेलते। और अविनाशी, सनातन चीज़ से खेले, वह जागृत। बाक़ी, ये खिलौने तो टूटते रहेंगे और रोते रहना है, टूटते रहेंगे और फिर रोना है, टूटते रहेंगे और फिर रोना है.... विनाशी चीज़ों में। खिलौनों से कब तक खेलना है? छोटा बच्चा हो उसे खिलौने दें और टूट जाएँ, तब वह

क्या करता है? रोता है न? वैसे ही ये लोग भी खिलौने से खेलते हैं और खिलौना टूट जाए तो रोते हैं फिर। 'मेरा बेटा मर गया!' अरे, यह तो खिलौना टूट गया! छोटे बच्चे को तो मालूम नहीं कि यह खिलौना टूट गया और दूसरा लाया जा सकता है!! संसार दुःखदायी नहीं है, लेकिन अजागृति दुःखदायी है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष भी खिलौना है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, नहीं, खिलौना नहीं है! खिलौना किसे कहा जाता है? जो विनाशी हो उसे। यह मोक्ष तो जाता ही नहीं। जीव-मात्र को सुख चाहिए ही और वह भी सनातन सुख चाहिए। और वह सुख जाता ही नहीं! कोई कान काट ले, जेब काट ले, चाहे जो करे, तो भी वह सुख जाता ही नहीं। क्योंकि खिलौनों में उसे प्रियता नहीं है, निस्बत नहीं है।

जागृति ही परिणमित मोक्ष में

प्रश्नकर्ता : मोक्ष और जागृति एक ही है?

दादाश्री : जागृति से ही मोक्ष है। अजागृति मतलब क्या? आपका किसीके साथ मतभेद हो जाए, वह आपकी अजागृति है। जिसे हिताहित का भान है वह जागृत और जिसे हिताहित का भान नहीं है वह अजागृत, उसे ही भावनिद्रा कहा है। खुली आँखों से सोए वह भावनिद्रा और बंद आँखों से सोए वह द्रव्यनिद्रा। किसी व्यक्ति से मतभेद हुआ तो उसका कारण क्या है? तो कहें, भावनिद्रा।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब जागृति और मोक्ष एक ही है?

दादाश्री : जागृति, वो ही केवलज्ञान है, वो ही मुक्ति है। दूसरा इसमें कोई फर्क नहीं है। मगर मोक्ष का परिणाम जागृति नहीं है, जागृति का परिणाम मोक्ष है। 'जागृति इज़ द मदर ऑफ मोक्ष!'

कुछ लोग मुझे कहते हैं कि, 'दादा मुझे मोक्ष नहीं चाहिए।' ऐसा टेढ़ा बोले तब उसे हम कहें कि, 'मोक्ष नहीं चाहिए, पर जागृति चाहिए

न?' तब वह कहे कि, 'हाँ। जागृति तो चाहिए ही, दादा!' उसे पूछें कि, 'जागृति तुझे पूरी करनी है न?' तब कहे, 'हाँ, पूरी करनी ही है।' इस तरह सीधी टिकिट देते हैं, मुफ्त देते हैं तो नहीं लेते और वो पैसे खर्च करके लेते हैं! अपने लोग ऐसे हैं, हिताहित का भान ही नहीं।

संपूर्ण जागृति ही मोक्ष है। संपूर्ण जागृति ही केवलज्ञान है। निन्यानवे प्रतिशत जागृति हो जाए और एक प्रतिशत जोड़ दें तब सौ प्रतिशत पर केवलज्ञान होता है।

आत्मानुभाव अर्थात् क्या, कि ज्ञान मिलने से पहले जो अनुभव होते थे, उसके बदले ज्ञान मिलने के बाद नये प्रकार के अनुभव होते हैं और वे अनुभव धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं और जागृति बढ़ती है। संपूर्ण जागृति, वह संपूर्ण अनुभव है।

इन्द्रियज्ञान : जागृति

दो प्रकार के ज्ञान हैं। एक इन्द्रियज्ञान, दूसरा अतिन्द्रियज्ञान। इन्द्रियज्ञान सीमित है, अतीन्द्रियज्ञान असीमित है। लोगों को इन्द्रियज्ञान में भी, संसार में पूर्ण जागृति नहीं है। इन्द्रियज्ञान में यदि संपूर्ण जागृत हो चुका हो तो वह ज़बरदस्त संतपुरुष कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : इन्द्रियज्ञान में संपूर्ण जागृति मतलब क्या?

दादाश्री : पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार वह सब इन्द्रियज्ञान में आता है। इन्द्रियज्ञान की संपूर्ण जागृति में आए तब उसका अहंकार कैसा होता है कि किसीके साथ उसका मतभेद नहीं पड़ता, हम मतभेद डालें तो भी वह मतभेद नहीं डालता, उस तरह से हट जाता है। कहीं पर झगड़ा होने की जगह हो तो वहाँ वह मतभेद का निवारण कर देता है। इन्द्रियज्ञान की जागृति से किसीके साथ किंचित् मात्र टकराव नहीं होता, एवरीव्हेर एडजेस्टेबल हो जाता है, सांसारिक दख़ल नहीं होती।

इन्द्रियज्ञान में भी दो प्रकार की जागृति है। एक बाह्य और दूसरी आंतरिक। भले अतिन्द्रियज्ञान नहीं मिलता, पर इन्द्रियज्ञान थोड़े ही चला

गया है? उसके स्टुडेन्ट भी हिन्दुस्तान में बहुत मिलते हैं, परन्तु उसके अध्यापक नहीं हैं, कॉलेज नहीं हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ का कारण क्या है?

किसी व्यक्ति को मतभेद हुआ तो उसका कारण क्या है? तो कहें, भावनिद्रा। किसी व्यक्ति को क्रोध हुआ तो उसका कारण क्या है? तो कहे, भावनिद्रा। किसी व्यक्ति को लोभ होता हो तो उसका कारण क्या है? तो कहे, भावनिद्रा। भावनिद्रा से उपदेश ग्रहण नहीं होता। हमें एकबार क्रोध हुआ तो उसमें से हमें एकबार उपदेश मिलता है न कि फिर क्रोध नहीं करो? इसके बावजूद फिर क्रोध करता है, वह भावनिद्रा।

क्रोध आना, लोभ होना, वह अजागृति है। जितनी-जितनी अजागृति कम हुई, जागृत हो, वैसे-वैसे क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते जाते हैं। अजागृत अर्थात् क्रोध करने के बाद भी नहीं पछताता। क्रोध करके जो पछताता है, उसे थोड़ी जागृति है, पर वह अजागृत अधिक है। क्रोध करने के बाद पता चल जाए और फिर उसे शुद्ध कर डाले वह कुछ जागृति कहलाती है। पर क्रोध करने के बाद पता ही नहीं चलता, वह अजागृत दशा! जो जागृति, क्रोध नाम की कमज़ोरी उत्पन्न करे उसे जागृति कहेंगे ही कैसे? कहीं भी क्रोध नहीं हो, वैसा होना चाहिए। जो जागृति क्रोध का शमन करे, वह जागृति अच्छी। सच्ची जागृति तो, क्रोध होनेवाला हो, उसे मोड़ ले, वह। लोगों को जागृति होती ही नहीं।

अभी मनुष्यों में जो एक प्रतिशत भी जागृति रही है, वह इस नाभि जितनी ही है। दूसरी सब जगह अजागृत दशा है, इस नाभिप्रदेश में जो रूचक प्रदेश खुले हुए हैं न, उतनी जागृति है। बाक़ी जागृति ही नहीं रही, जागृति ही खत्म हो गई है। जागृति बढ़ती-बढ़ती ३६० डिग्री की जागृति हो जाए, वह केवलज्ञान है। जागृति ३५९ डिग्री हो तब तक जागृति ही कहलाती है।

क्रोध-मान-माया-लोभ सभी अजागृति है। कोई मुझे पूछे कि 'वह अजागृति किस प्रकार से? वह समझाइए।' तब हम उसे कहें कि, 'आपको

क्रोध-मान-माया-लोभ निकालने हैं या नहीं?' तब वह कहता है कि, 'हाँ, निकालने हैं।' 'निकालने हैं' कहे तब तक वह जागृत है। परन्तु क्रोध-मान-माया-लोभ को खुराक दे देता है, वह अजागृति है। जिन्हें निकालने हैं उन्हें खुराक देते हैं, इसलिए वे टिकते हैं। यदि तीन वर्ष तक उन्हें खुराक नहीं दें तो वे खड़े ही नहीं रहें। मनुष्य अजागृत हैं, ये जानवर भी अजागृत हैं, तो दोनों एक जैसे ही कहलाएँगे न? मनुष्यगति का लाभ नहीं मिला उसे!

निजदोष दर्शन

खुद का दोष दिखे तब समझना कि जागृत हुआ है, नहीं तो नींद में ही चलते हैं सभी। दोष खत्म हुए या नहीं हुए, उसकी बहुत चिंता करने जैसी नहीं है, पर जागृति की मुख्य ज़रूरत है। जागृति होने के बाद नये दोष खड़े नहीं होते और पुराने दोष हों तो वे निकलते रहते हैं। आप उन दोषों को देखो कि किस-किस तरह के दोष होते हैं।

खुद के दोष दिखें, तब समझना कि मोक्ष में जाने की तैयारी हुई। जागृति के बिना किसीको खुद के दोष नहीं दिखते। सामनेवाले के दोष निकालने हों तो दो सौ-पाँच सौ निकाल देता है! यदि हमारे दोष किसीको नुकसान कर रहे हों तो 'हमें' 'चंदूभाई' से कहना चाहिए कि, 'प्रतिक्रमण करो।' किसीको किंचित् मात्र दुःख देकर कोई मोक्ष में नहीं गया है। रोज़ आम का रस और पूरियाँ खाता होगा तो उसमें हर्ज नहीं, पर यह दुःख देकर मोक्ष में जाए, वह होता नहीं। यहाँ पर 'क्या खाते हैं, क्या पीते हैं', उसकी वहाँ क़ीमत नहीं है। पर वहाँ तो कषायों का ही हर्ज है और अजागृति नहीं रहनी चाहिए। जगत् को सोता हुआ क्यों कहा जाता है? क्योंकि 'स्व-पर' का भान नहीं है, खुद का, स्व का और पर का, हिताहित का भान नहीं रहा। मोक्ष के लिए कषायों का हर्ज है।

'टॉपमोस्ट' जागृति

हमारी जागृति 'टॉप' पर की होती है, आपको पता भी नहीं चलता। पर आपके साथ बोलते हुए जहाँ हमारी भूल होती है, वहाँ हमें तुरन्त मालूम

पड़ जाता है और तुरन्त उसे धो डालते हैं। उसके लिए यंत्र रखा हुआ होता है, जिससे तुरन्त ही धुल जाता है। हमारे सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष बचे हैं, जो जगत् के किसी भी जीव को थोड़े-से भी नुकसानदेह नहीं होते। हमें पूरा जगत् निर्दोष दिखता है। हम खुद निर्दोष हुए हैं और पूरे जगत् को निर्दोष ही देखते हैं। अंतिम प्रकार की जागृति कौन-सी कि जगत् में कोई दोषित ही नहीं दिखे, वह।

ज्ञाता-ज्ञेय के रूप में जगत् में संपूर्ण ज्ञान हाज़िर रहे, वह संपूर्ण जागृति, वह हमें रहती है। और जिसे हमारा ज्ञान मिला हो, उन्हें कितनी जागृति होनी चाहिए कि कोई भी घटना हो, तब हमारे 'पाँच वाक्य' 'एट ए टाइम' हाज़िर रहें और भीतर पेट का पानी ज़रा भी नहीं हिले। कोई भी देहधारी हो, फिर पेड़ हो, पक्षी हो, उनमें शुद्धात्मा देखते-देखते जाएँ। ऐसी जागृति रहे, उसे 'टॉप'वाली जागृति कहा है। उससे ऊपर की 'टॉपमोस्ट' जागृति कौन-सी? कि मैं इस 'चंदूभाई' के साथ बातें करूँ, तब निश्चय से ये 'चंदूभाई कौन हैं', वह लक्ष्य में रखकर बात होती है, 'वह शुद्धात्मा है' वह लक्ष्य में रखकर बात होती है। जागृति तो बहुत 'टॉप' बात है।

भाव जागृति - स्वभाव जागृति

प्रश्नकर्ता : भावजागृति क्या है?

दादाश्री : भावजागृति क्रमिक मार्ग में होती है। अक्रम मार्ग में स्वभाव-जागृति होती है। भावजागृति प्रकृति को गढ़ती है और स्वभाव-जागृति प्रकृति से निर्लेप रखती है। मेरे पाँच वाक्य आपको स्वभाव जागृति में रखते हैं। मैंने आपकी भावजागृति खत्म कर दी है। पूरा जगत् भावनिद्रा में फँसा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भावजागृति से बीज पड़ते हैं?

दादाश्री : हाँ। 'मैं चंदूलाल हूँ' करके दान देने का भाव करे तो बीज पड़े। स्वभाव जागृति में आने के बाद आप बोलते ज़रूर हो कि, 'मुझे

दान देना है।' लेकिन उसका बीज नहीं पड़ता। क्योंकि निर्‌अहंकारी हैं, इसलिए।

खुद का स्वभाव क्या है, उसे नहीं जानता है इसलिए भावनिद्रा कहा है। खुद के स्वभाव को जानना वह निरालंब दर्शन है, निरालंब ज्ञान है।

जागृति की शुरूआत...

पहले *पुद्‌गल* में जागृति आनी चाहिए। आत्मभान होने के बाद *पुद्‌गल* में सोए, फिर आत्मजागृति उत्पन्न होती है। दूध ढुल जाए तो ये छोटे बच्चे कच-कच करते हैं? नहीं। किसलिए? तो कहे, 'अज्ञान के कारण ही न।' फिर जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वैसे-वैसे *पुद्‌गल* की जागृति आती है, तब कच-कच करनी शुरू करते हैं। उसके बाद आत्मजागृति की बात आती है। इन बालकों को व्यवहार जागृति नहीं है। किसीको व्यवहार जागृति नहीं है। व्यवहार जागृति हो तो घर में या बाहर मतभेद नहीं पड़े। किसीके साथ भी टकराव में नहीं आए। संसार में जागृति किसे कही जाती है कि खुद के घर में क्लेश होने की नौबत नहीं आने दे। व्यवहार की जागृति में लोभ-कपट-मोह ज़बरदस्त होते हैं और निश्चय की जागृति में तो क्रोध-मान-माया-लोभ खत्म हो गए होते हैं। 'नींद क्या है? और जगना क्या है?' वह तो समझना पड़ेगा न? लोग तो ऐसा ही समझते हैं कि ये पी.एच.डी. हो गए हैं। जागृत मनुष्य तो ग़ज़ब का होता है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार अंत:करण के इन चारों ही भागों के हर एक कार्य के समय हाज़िर रहे, उसे जागृति कहते है!

जागृति किसे कहा जाता है? खुद, स्वयं से कभी भी किसी भी संयोग में क्लेशित नहीं हो, वहाँ से जागृति की शुरूआत होती है। फिर दूसरे 'स्टेपिंग' में दूसरे से भी खुद क्लेशित नहीं होता, तब से ठेठ सहज समाधि तक की जागृति होती है। यदि जाग गए तो जागने का फल होना चाहिए। क्लेश हो तो जाग गए किस तरह कहा जाएगा? किसीको थोड़ा-सा भी दु:ख दे तो वह जागृत किस तरह कहा जाएगा? क्लेश रहित भूमिका करनी, उसे बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया कहा जाता है।

'योग-क्रियाकांड' जागृति नहीं देते

प्रश्नकर्ता : ये पूजा, जप, तप, करते हैं, वह खुद की जागृति के लिए कुछ हेल्प करते हैं क्या?

दादाश्री : वह तो जिस हेतु के लिए करें, उस हेतु के लिए फल मिलता है। किसी आदमी को 'शादी' करनी हो और पत्नी नहीं मिल रही हो, तो पूजा, तप करें तो उसे वह मिल जाती है। जिस हेतु के लिए करें वह मिलता है।

प्रश्नकर्ता : उससे अध्यात्म में प्रगति नहीं मिलेगी?

दादाश्री : अध्यात्म के हेतु के लिए करे तो आध्यात्मिक फल मिलेगा। बाक़ी, आध्यात्मिक हेतु के लिए कोई करे, वैसा है ही नहीं। सभी को जलन हो रही है, उस जलन की ही दवाई चाहिए। इस संसार के दु:खों की जलन लगी है लोगों को। वह जागृति के लिए कुछ करता ही नहीं। कोई मान का भूखा, कोई कीर्ति का भूखा, कोई शिष्यों का भूखा, इन सभी भीखों के भूखे हैं। अध्यात्म में मान नहीं, कीर्ति नहीं, किसी चीज़ की वहाँ अपेक्षा नहीं है। और ये अशुभ में ही पड़े हैं, कोई मान में, कोई कीर्ति में, संसारिक चीज़ों में, भोगविलास में, कितने लोग ऐसे अध्यात्म मार्ग में होंगे? कोई ही व्यक्ति होगा। अधिकतर तो मान के भूखे हैं सभी।

एक ही क्षण यदि नींद बंद हो जाए तो सब तरफ प्रकाश ही हो जाए। रोज़ के क्रम में रहता हो और उसमें ही तन्मयाकार रहता हो, उसे नींद में कहा जाता है। चरम ज्ञान की तुलना में यह बात कर रहा हूँ कि ये जप-तप करते हैं, वे उसमें ही तन्मयाकार रहते हैं, उसमें से एक मिनिट भी जागृत हो जाए तो बहुत हो गया। खुद के दोष दिखें और निष्पक्षपाती जजमेन्ट दे सके, वह जागृत कहलाता है। जागृत हो उसके हाथ में सत्ता आती है। संपूर्ण जागृत व्यक्ति ही हमें जागृत कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : कुंडलिनी जागृत करते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : वह मिकेनिकल जागृति है, उसका और दरअसल जागृति

का कुछ लेना-देना नहीं है, कुंडलिनी जागृत हुई यानी आत्मा थोड़े ही जागृत हुआ कहा जाएगा? वह मादकता है एक प्रकार की। उससे एकाग्रता रहती है और ठंडक लगती है। दरअसल ज्ञानजागृति की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रश्नकर्ता : ये जो 'मेडिटेशन' करते हैं, वे सभी कहते हैं न कि मेडिटेशन बहुत उपयोगी है, तो वह क्या है?

दादाश्री : मेडिटेशन मात्र मादकता है, उससे ठंडक रहती है। जिसे जलन होती हो उसे मेडिटेशन करने से शांति लगती है। आपने ज्ञान लिया तब से आपको शुद्धात्मा का लक्ष्य रहता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दादा, वह तो निरंतर रहता है।

दादाश्री : वही ध्यान है। दूसरे और भला कौन-से ध्यान करने हैं? यह नाक दबाकर करते हैं, वह ध्यान नहीं कहलाता।

प्रश्नकर्ता : हम घर पर आपका निदिध्यासन करते हैं, वह प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

दादाश्री : वह प्रत्यक्ष है। जब तक हम हाज़िर हैं तब तक यह हमारा फोटो भी प्रत्यक्ष है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का ध्यान शायद किसीको नहीं रहता हो, पर 'दादा' ही ध्यान में रहते हों तो वे दोनों एक ही है। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष', वे ही आपका आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : मेडिटेशन शून्यता में ले जाता है?

दादाश्री : नहीं। वह स्पंदन बढ़ाता है। इगोइज़म बढ़ाता है।

प्रश्नकर्ता : ये जो चक्र हैं, उन चक्रों जैसा कुछ नहीं है?

दादाश्री : है। वे सारे चक्र इलेक्ट्रिकल इन्स्टॉलेशन हैं। और वहाँ पर चक्र पर ध्यान करने से एकाग्रता होती है, मन अच्छा होता है, स्थिरता आती है, पर अहंकार बढ़ जाता है। सिर्फ सच्चा ज्ञान ही ऐसा है कि जो काउन्टर वेट नहीं माँगता है। बाक़ी ये दूसरे सभी काउन्टर वेट माँगें वैसी वस्तुएँ हैं। जो वस्तु लो उसके सामने बदले में दूसरी वस्तु देनी पड़ती है।

इसलिए एकाग्रता वगैरह करो तो अहंकार बढ़ जाता है और ऐसे नुकसान उठाता है! सिर्फ एक यथार्थ ज्ञान का रास्ता ही सेफसाइडवाला है कि जिससे दूसरा कुछ खड़ा नहीं होता।

इस मेडिटेशन से खुद को क्या फायदा हुआ, वह हमें सोचना चाहिए। अपना क्लेश कम हुआ? यदि अपना क्लेश कम हुआ हो तो 'रिलेटिव' धर्म प्राप्त हुआ कहलाएगा और क्लेश का नाश हुआ तो 'रियल' धर्म प्राप्त हुआ कहलाएगा। क्लेश करवानेवाला कौन है? अज्ञान। जितने 'रिलेटिव' धर्म हैं, वे अज्ञान में रखनेवाले हैं।

दो प्रकार के ध्यान अपने आप ही होते हैं, आर्तध्यान और रौद्रध्यान। जब कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान, उन्हें पुरुषार्थ कहा जाता है। आत्मध्यान का मतलब ही शुक्लध्यान। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वैसा ध्यान रहा, वही शुक्लध्यान।

जागृति, जागृत की आराधना से ही

प्रश्नकर्ता : आप बुलवाते हैं वे मंत्र, आरती वे सब क्या है? उन सबकी क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : ऐसा है, कि यह जो बुलवाता हूँ न, वह पूर्ण जागृत लोगों के नाम लेकर बुलवाता हूँ। जो जागृत हैं, उनकी भजना सिखाते हैं। जो जागृत हैं उन्हें याद करो तो आपकी जागृति बढ़ती है। उनमें जितने जागृत हो चुके हैं और जितने जागृत हैं, अभी उन्हें नमस्कार बुलवाया है और उनमें भी अभी जो जागृत हैं, उनकी बात अधिक है और जो हो चुके हैं उनकी साधारण बात है। ये नमस्कार तो सभी जागृतों को प्रसन्न करते हैं, विनय करते हैं, प्रेमभाव करते हैं। यह तो साइन्टिफिक है। वह जैसा यहाँ सब करते हैं, वैसा हम भी करें तो हम पर 'ज्ञानी पुरुष' प्रसन्न होते हैं। खुद की ज़रूरत से ज़्यादा अक्कल डालें कि फिर बिगड़ा। हम लोगों की दुनिया तो एक है, पर वैसी दूसरी दुनिया के साथ 'ज्ञानी पुरुष' के तार जोइन्ट हैं। अभी जो संपूर्ण जागृत हैं, उनके साथ हम तार जोड़ देते हैं, जिनमें हमसे थोड़े ही अंश विशेष जागृति है, उनके साथ आपका तार जोड़ देते हैं। वह तार जोड़ने से उनके साथ पहचान हो जाती है।

भावनिद्रा टालो

इसलिए 'ज्ञानी पुरुष' पूरे जगत् को, भावनिद्रा में है, ऐसा कहते हैं। यह काम-रोज़गार करते हैं, उसमें पैसे कमाने में पड़ गए, वह एक तरफ की निद्रा उड़ी और दूसरी सब ओर भावनिद्रा! इसलिए धर्म की एक बूँद भी प्राप्त नहीं की। धर्म तो, रात को एक क्षण भी भावनिद्रा नहीं होने देता। सर्व प्रकार के भाव उत्पन्न हों, वैसा यह लोक है, उसमें भावनिद्रा नहीं आनी चाहिए। देहनिद्रा आएगी तो चलेगा।

प्रश्नकर्ता : भावनिद्रा ही आती है, दादा!

दादाश्री : ऐसा कैसे चलेगा? यह ट्रेन आए तब कुछ भावनिद्रा नहीं आती। यह ट्रेन तो एक जन्म का मरण लाती है, लेकिन भावनिद्रा तो अनंत जन्मों का मरण लाएगी। चित्र-विचित्र भाव उत्पन्न हों, वैसा यह जगत् है। उसमें तुझे तेरा समझ लेना है। यदि तुझे भावनिद्रा होगी तो जगत् तुझे चिपटेगा। जहाँ भावनिद्रा आए, वहाँ पर ही प्रतिक्रमण करना है।

सच्ची समाधि, जागृति सहित

इस धर्म में बड़े-बड़े वाक्य लिखें, वह भी भावनिद्रा। किसीको देह की समाधि बरतती है, वे तो मन की परतों में पड़े रहते हैं। वर्ना समाधि तो वह है कि हर एक प्रकार की जागृति रहे, मन-वचन-काया से एक-एक बाल की जागृति रहे।

प्रश्नकर्ता : मन की समाधि में आनंद कहाँ से आया?

दादाश्री : वह तो मानसिक समाधि है, वर्ना सच्ची समाधि तो संपूर्ण जागृति सहित होती है। संपूर्ण जागृत का आचार वर्ल्ड में उच्चतम होता है। जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जाए वैसे-वैसे जगत् विस्मृत रहता है, उसके बावजूद भी वह जगत् में अच्छे से अच्छा काम कर बताता है, जितनी जागृति उतना आपको सुख बरतेगा। जितनी जागृति उतनी आपको मुक्ति बरतेगी। जितनी जागृति उतना आपको मोक्ष बरतेगा। जागृति, वही मोक्ष है। यह स्थल जागृत होने के लिए ही है। यहाँ हम जगाते ही हैं। जैसे प्रेमभग्न मनुष्य मन के किसी

कोने में उतर जाए वैसे ही ये समाधिवाले मन के किसी कोने में गहरे उतर जाते हैं और उसीमें आनंद उठाते हैं। सच्ची समाधि किसे कहा जाता है? कि बाहर संपूर्ण जागृत और अंदर भी संपूर्ण जागृत हो। एवरीव्हेर जागृत हो। उसे उठते, बैठते, खाते, पीते, हुए भी सच्ची समाधि नहीं जाती। आधि-व्याधि-*उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) में भी निरंतर रहे वह सच्ची समाधि है। उसे सहज समाधि कहा जाता है, निर्विकल्प समाधि कहा जाता है।

'मैं' कौन? जानने से, जागृति खुलती है

प्रश्नकर्ता : सामान्य रूप से जागृति किसे कहा जाता है?

दादाश्री : दिन तो पूरा निकल जाता है। उसमें खाना, पीना, चाय-पानी वगैरह का हिसाब मिल आता है। पूरा दिन, जागृति नहीं होने से वह किसी न किसीमें, किसी भी विषय में उलझा हुआ रहता है। आप जिसे जागृति समझते हो, वह जगत् संबंधी किसी एक विषय में पड़ा हो, उसे कहते हो। वह तो 'सब्जेक्ट' जागृति कहलाती है। जगत् के लोगों को तो विषय और लक्ष्मी में ही जागृति होती है। जब कि यथार्थ जागृति तो हर एक जगह पर होती है, सर्वग्राही होती है।

पूरे जगत् की तमाम प्रकार की क्रियाएँ एकाग्रता करने के लिए हैं और जो क्रिया से व्यग्रता हो तो उसे हमने उल्टा उपचार किया कहलाएगा। जप-तप वगैरह एकाग्रता के लिए हैं। जिसे एकाग्रता नहीं रहती हो, उसे जपयोग करना चाहिए, दूसरा करना चाहिए, तीसरा करना चाहिए। जैसे-जैसे एकाग्रता बढ़ती जाए, वैसे-वैसे भावनिद्रा हल्की होती जाती है। किसीको भावनिद्रा हल्की होती है, किसीको गाढ़ होती है। पानी डालें, ऐसे हिलाएँ तो भी नहीं जगे, वैसी गाढ़ भावनिद्रा में लोग पड़े हैं। हम जब स्वरूप का ज्ञान देते हैं, तब ज़रा आँख खुलती है। तब उसे दिखता है कि मैं तो इन सबसे जुदा हूँ। फिर जैसे-जैसे हमारे साथ बैठता है, वैसे-वैसे आँख खुलती जाती है। फिर संपूर्ण जागृति हो जाती है। इसलिए आत्मा को जानना पड़ेगा। आत्मा जाने बिना तो वहाँ पर कोई जाने ही नहीं दे।

अकर्त्तापद, वहाँ संपूर्ण जागृति

प्रश्नकर्ता : आत्मा को जान लिया, ऐसा कब कहलाएगा? कर्त्तापन छूट जाए तब?

दादाश्री : 'मैं यह कर रहा हूँ' वह भान टूट जाए तब आत्मा जान लिया कहलाएगा। पूरा दिन भूलें दिखाता रहे, वह आत्मानुभव। 'मैं यह संसार चलाता हूँ।' वह भान नहीं है आपको?

प्रश्नकर्ता : वह तो अपने आप चलता है!

दादाश्री : वह तो जब अच्छा होता है, कोई तारीफ करे कि 'अरे, इन्होंने यह कितना अच्छा किया।' तब कहता है, 'मैंने किया था।' और गलत हो जाए तब कहेगा, 'यह मेरे कर्मों के उदय ने घेर लिया है।' पूरा जगत् ऐसे बोलता है। कर्त्तापद किसी काल में छूटता नहीं। सब छूटता है पर कर्त्तापद नहीं छूटता। कर्त्तापद का भान नहीं टूटे, तब तक अहंकारी कहलाता है और अहंकार अर्थात् भ्रांति। संपूर्ण भ्रांतिवाले को 'वहाँ' प्रवेश नहीं करने देते। कर्त्तापद का भान टूट जाना चाहिए या नहीं टूट जाना चाहिए? शुद्धात्मा बोलते ज़रूर हैं, पर उससे कुछ होता नहीं है। वह तो कर्त्तापद का भान टूटे और कर्त्ता कौन है, वह समझ में आए फिर काम आगे चलेगा। नहीं तो कैसे चलेगा? जब तक कर्त्तापद है, तब तक अध्यात्म की जागृति ही नहीं मानी जाती। कर्त्तापद छूटे बिना कोई बाप भी मोक्ष के दरवाज़े में पैठने दे, ऐसा नहीं है।

'मैं चंदूलाल हूँ' वह भ्रांति टूट जानी चाहिए और कर्त्तापद छूट जाना चाहिए। फिर नाटकीय कर्त्तापद रहता है। ड्रामेटिक कर्त्तापद यानी क्या? 'मैंने किया', ऐसे कहता है। जैसे भर्तृहरि राजा नाटक में बोलता है कि 'मैं राजा हूँ।' पर साथ ही 'मैं लक्ष्मीचंद हूँ और घर जाकर खिचड़ी खानी है' वह भूल नहीं जाता। उसी तरह आप 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भूल नहीं जाते। और 'यह मैंने किया' ऐसा बोलते हों, वह 'ड्रामेटिक' कहलाता है। कर्त्तापद का भान टूट जाना चाहिए। नहीं तो लोग शुद्धात्मा तो गाते ही रहते हैं न? शास्त्रों में तो स्पष्ट लिखा ही है, उस तरह से

वह शास्त्र गाता रहता है, पर उससे उसके दिन बदलें ऐसा नहीं है। वैसा तो अनंत जन्मों से गाया है।

उपयोग क्या? जागृति क्या?

प्रश्नकर्ता : उपयोग और जागृति, वे दोनों समझाइए।

दादाश्री : जागृति को किसी खास जगह पर केन्द्रित करना, वह उपयोग कहलाता है। जागृति किसी और में न चली जाए, जैसे कि संसार के फायदे-नुकसान में। एक ही जगह पर जागृति को केन्द्रित रखें, वह उपयोग! जहाँ जागृति बरते वह उपयोग, पर वह उपयोग शुभाशुभ का उपयोग कहलाता है। और शुद्ध उपयोग किसे कहा जाता है? कि जो उपयोग शुद्धात्मा के लिए ही सेट किया हो। 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा में उपयोग रहा, 'रियल'-'रिलेटिव' देखते-देखते चले तो समझना कि अंतिम दशा आ गई। यह तो रास्ते में बगलें झाँकता है कि 'स्टील ट्रेडिंग कंपनी, फलानी कंपनी, देखो यह कैसा है!' इस तरह से दूसरे उपयोग में रहे, वह अशुभ उपयोग कहलाता है और उपयोग धर्म के लिए हो तो अच्छा। और शुद्ध उपयोग की तो बात ही अलग है न!

अक्रमविज्ञान के कारण जागृति

इस जगत् की जागृति, वह पौद्‌गलिक जागृति कहलाती है। इस संसार की जागृति जिसे हो, वह बहुत होशियार मनुष्य होता है। पूरा दिन जागृत और जागृत। उस जागृति में थोड़ा भी प्रमाद नहीं हो, फिर भी वह पौद्‌गलिक जागृति कहलाती है, उसका फल संसार आएगा। और अपनी 'यह' जागृति है उसका फल केवलज्ञान है। यहाँ की क्रियाओं को देखकर ललचाना नहीं। यहाँ की क्रियाएँ सभी यहीं की यहीं खर्च हो जानेवाली है। यहाँ की क्रियाएँ 'केश' फलवाली हैं। इसलिए हमने किसीसे त्याग नहीं करवाया न! और 'इस' विज्ञान ने खोज की है कि जगत् क्या है और क्या नहीं? किसके आधार पर यह सब चलता है?' अनंत जन्मों की हमारी वह खोज हम अनावृत कर रहे हैं। नहीं तो भला घंटेभर में मोक्ष होते हुए सुना है किसीका भी? करोड़ों जन्मों में जिसका ठिकाना नहीं पड़े, हम घंटेभर में ही आपको उस स्वरूप का भान

करवा देते हैं। पूरे वर्ल्ड को कबूल करना पड़े, वैसा यह विज्ञान है। 'जगत् क्या है? क्या नहीं? यहाँ फल देनेवाला क्या है? और वहाँ फल देनेवाला क्या है? कितने भाग में चेतन है और कितने भाग में निश्चेतन है? जगत् कौन चलाता है?' वह सारी हमारी खोज है।

आग्रह मात्र भावनिद्रा ही!

जब तक मनुष्य को किसी भी प्रकार का आग्रह है, तब तक मनुष्य भावनिद्रा में ही है। आग्रह, मोक्ष में जाते हुए वह गलत चीज़ है। ऐसा जब से जाने, तब से जागृति शुरू होती है। अभी तो आग्रह ही नहीं, परन्तु मताग्रही, दुराग्रही हो गए हैं। जाति का आग्रह हो, उसे कदाग्रही कहा है। वह बहुत जोखिमवाला नहीं है। लेकिन मत का आग्रह मतलब मताग्रह, यानी कि 'मैं जैन, मैं वैष्णव, मैं स्थानकवासी, मैं देरावासी, मैं दिगंबर' वह बहुत ही जोखिमवाला है।

हिताहित का विवेक, वह भी जागृति

वीतरागों का मार्ग क्या कहता है कि किसीको आप 'वह गलत है' ऐसा कहोगे तो आप ही गलत हो। उसे दृष्टिफेर है, इसलिए उसे वैसा दिखता है। उसमें उसका क्या दोष? कोई अँधा दीवार से टकराए, फिर अँधे को उलाहना दिया जाता होगा कि दिखता क्यों नहीं? अरे, दिखता नहीं था इसलिए ही तो वह टकरा गया। वैसे ही यह पूरी दुनिया खुली आँखों से सो रही है। ये सभी क्रियाएँ हो रही हैं, वे सभी नींद में ही हो रही हैं। स्वप्न में यह सब हो रहा है। और मन में जाने क्या ही मान बैठा है कि हम तो कितनी सारी क्रियाएँ कर रहे हैं। पर ये स्वप्न की क्रियाएँ काम नहीं आएँगी। जागृत की क्रियाओं की ज़रूरत पड़ेगी। ये तो खुली आँखों से सो रहे हैं।

जागृत तो कौन होता है? खुद के हिताहित का भान हो वह। पूरा जगत् मान बैठा है कि 'हिताहित का मुझे भान है।' पर वह हिताहित का भान नहीं कहलाता। खुद का ही अहित कर रहा है, जिस लक्ष्मी को इकट्ठी करने के लिए रात-दिन हिताहित ढूंढता है, वह लोकसंज्ञा है।

उसके कारण रात-दिन खा-पीकर पैसों के पीछे ही पड़े रहते हैं। वह देखो न, *'ऑन' का व्यापार* (मूल क़ीमत से ज़्यादा में बेचना) किया है! इस हिन्दुस्तान में तो भला ऑन के व्यापार होते होंगे? छुपकर जो-जो कार्य करते हैं, वह अधोगति है। हिन्दुस्तान में पैदा हुआ तो जन्म से ही सांसारिक जागृति कुछ अंशों तक लेकर आया होता है। एक तो सांसारिक जागृति और फिर कलियुग, तो सूझ नहीं पड़ती है। सत्युग हो तब तो सूझ पड़ती है। इन छोटे बच्चों को उनके खिलौनों संबंधित ही जागृति होती है, वैसे ही इन लोगों को तो 'इन्कम टैक्स' और 'सेल टैक्स' संबंधी ही, पैसे संबंधी ही जागृति पूरे दिन रहा करती है। हिन्दुस्तान के लोगों को तो ऐसा होता होगा? हिन्दुस्तान का मनुष्य यदि पूरा जागृत हो जाए तो पूरे वर्ल्ड को उँगली पर नचाए। ये तो *अणहक्क* (बिना हक़ का) की लक्ष्मी और *अणहक्क* के विषय के पीछे ही पड़े हैं। परन्तु उसे मालूम नहीं कि जाते समय अर्थी निकालते हैं और नामवाला बैंक बेलेन्स सारा कुदरत की जब्ती में चला जाता है। कुदरत की जब्ती मतलब रिफंड भी नहीं मिलता। सरकार ने ले लिया हो तो रिफंड भी मिलता है, पर यह तो कुदरत की जब्ती! इसलिए हमें क्या कर लेना चाहिए? आत्मा का। आत्मा के बारे में भले न समझो पर परलोक का तो करो! परलोक का नहीं बिगड़े, वैसा तो रखो! यह लोक तो बिगड़ा हुआ ही है, उसमें कुछ बरकत है नहीं। हिताहित का भान हो कि मुझे साथ में क्या ले जाना है, इतना ही यदि वह सोचता हो न तो भी काफी है।

ज्ञानी जागृत वहाँ जगत्...

प्रश्नकर्ता : कृष्ण भगवान ने कहा है, 'जहाँ जगत् जागता है वहाँ हम सोते हैं और जहाँ जगत सोता है, वहाँ हम जागते हैं।' वह समझ में नहीं आया। वह समझाइए।

दादाश्री : जगत् भौतिक में जागता है, वहाँ श्री कृष्ण सोते हैं और जगत् सोता है, वहाँ श्री कृष्ण भगवान जागते हैं। अंत में अध्यात्म की जागृति में आना पड़ेगा। संसारी जागृति वह अहंकारी जागृति है और निर्अहंकारी जागृति से मोक्ष है।

चंचलता ही दुःख का कारण

मनुष्य की दो प्रकार की जागृति है, एक स्थिरता की जागृति और एक चंचलता की जागृति। मनुष्य चंचलता की जागृति में आगे बढ़ गया है, स्थिरता की जागृति में एक प्रतिशत भी जागृत नहीं हुआ। और चंचलता की जागृति में कोई १० प्रतिशत, कोई १५ प्रतिशत, कोई २० प्रतिशत, कोई ३० प्रतिशत जागृत हुआ होता है। चंचलता की जागृति जानवर बनाती है और स्थिरता की जागृति मोक्ष में ले जाती है। जिस जागृति से स्थिरता बढ़ती है, वह जागृति सच्ची। ये अमरीकन बेहद चंचल हो गए हैं, वे महान दुःख में फँस गए हैं। उनके दुःख तो रोने से भी नहीं जाएँगे। आत्महत्या करोगे तो भी नहीं जाएँगे, वैसे दुःख खड़े हो रहे हैं। खुद, अपने ही जाल में फँस गए हैं। थोड़े समय बाद वहाँ पर चीख-पुकार मच जाएगी। अभी तो इगोइज़म कर रहे हैं। चंचलता बढ़ी यानी फँसते हैं। चंचलता बढ़े तब क्या करते हैं? हाई-वे पर ६७ वें मील पर, दूसरे फर्लांग पर वहाँ से फोन करने का कोई साधन नहीं हो तो वहीं से फोन करने का साधन रखो ऐसा कहते हैं, 'अरे, क्यों दूसरे फर्लांग पर ही लगाना है?' तब कहते हैं कि, 'पहले फर्लांग पर है, तीसरे फर्लांग पर है, पर दूसरे फर्लांग पर फोन करने का साधन नहीं है!' देखो तो सही, कितनी अधिक चंचलता हो गई है! यह मेडनेस है! इतना सारा खाने-पीने का है, फिर भी पूरा वर्ल्ड मेडनेस में पड़ा है। लोग दुःखी, दुःखी और दुःखी! परमानेन्ट दुःखी!! एक क्षण के लिए भी सुखी नहीं!! जब तक स्थिरता की शक्ति उत्पन्न नहीं होती, तब तक सुखी किस तरह से हो सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : दो विचारों के बीच में स्थिरता होती है क्या?

दादाश्री : ऐसा है न, वह स्थिरता सब बेकार है। वह 'पेकिंग' की स्थिरता, किसी काम की नहीं है। वह स्थिरता तो, स्थिरता नहीं कहलाती न? स्थिरता तो अडिग होनी चाहिए। ऊपर से एटमबोम्ब गिरनेवाला हो, तब भी स्थिरता नहीं टूटे, वह स्थिरता कहलाती है, जगत् का मन चंचल है। हमारा मन स्थिर गति से घूमता रहता है, यानी कि जैसे यहाँ पर दो हज़ार लोग हों और हमें उनसे शेकहेन्ड करना हो तो वे शेकहेन्ड करते

जाएँगे और आगे बढ़ते जाएँगे। उसी तरह हमारे मन के विचार शेकहेन्ड करते-करते जाते हैं। कोई विचार खड़ा नहीं रहता। एक सेकन्ड के लिए भी खड़ा नहीं रहता! और आपका एक विचार पंद्रह मिनिट तक खड़ा रहता है, आधे घंटे तक खड़ा रहता है। खड़ा रहता है या नहीं रहता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, खड़ा रहता है।

दादाश्री : हमारा भी मन तो है। मन नहीं हो तब तो 'एबसन्ट माइन्डेड' कहलाएँगे। हमारा मन बहुत प्रखर है। ऊपर एटमबोम्ब पड़े वैसा लग रहा हो, तो भी वह हिलता-करता नहीं है, चंचलता नाम मात्र को भी नहीं होती। मन स्थिर वेग से घूमता रहता है। और आपका तो जैसे यह गुड़ का टुकड़ा पड़ा हो न और मक्खियाँ उसके आसपास चक्कर लगाती ही रहती हैं, वैसे ही आपका मन किसी चीज़ को देखे तो फिरता ही रहता है उसके पीछे।

प्रश्नकर्ता : वह चंचलता निकालें किस तरह से?

दादाश्री : अब ज्ञान के बाद आपको चंचलता निकालने की ज़रूरत ही नहीं है न? आपको तो देखते रहना है। मैंने तो आपको ज्ञान दिया है। अब वह चंचलता क्या करती है, 'आपको' वह 'देखते' ही रहना है। बाक़ी जगत् के लोग तो, मन के साथ खुद भी खेलने लगते हैं। मन नाचे तब वे भी नाचते हैं। अरे, मन नाच रहा है। 'तू' उसके नाच देखता रह न! यह तो 'आप' भी उसके साथ नाचते हो। मनचाहा विचार आए तब 'आप' नाचने लग जाते हो और नापसंद आए तो उसके साथ झगड़ते हो कि 'तू कहाँ आया? तू कहाँ आया?' नापसंद विचार आएँ तब तो पता चल जाता है न कि मन खराब है, वह खराब विचार कर रहा है। खराब विचार आए उस घड़ी 'डिप्रेशन' आ जाता है और अच्छे विचार आएँ तब 'एलिवेट' (उत्साहित) हो जाता है । मैं तो आपको ऐसा तैयार करना चाहता हूँ कि वर्ल्ड में कोई मनुष्य आपको डिप्रेस कर ही नहीं सके। आपको डिप्रेस करने आया हो, वह खुद ही डिप्रेस होकर चला जाए!

प्रश्नकर्ता : सुषुप्ति में स्थिरता जैसी स्थिति होती है?

दादाश्री : स्थिरता जैसा कुछ भी नहीं होता! यह 'मशीन' बहुत गरम हो जाए, तब उसे बंद करके ठंडा कर देते हैं न? वैसे ही यह सुषुप्ति में बंद रहता है, मन पूरे दिन का गरम हो गया हो, वह बंद हो जाता है। नींद सारी मशीनरी को ठंडा कर देती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने की इच्छा हुई, वह स्वरूप जागृति कहलाती है?

दादाश्री : उसे स्वरूप जागृति के संयोग मिलने शुरू हुए, ऐसा कहा जाएगा। पहले स्वरूपज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होनी, वह एक संयोग मिला, फिर 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं। स्वरूपज्ञान प्राप्त करने का संयोग मिले तभी काम हो सके वैसा है, पर वह सब 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है।

❖❖❖❖❖

(२)
ध्यान

ध्यान का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : जैन धर्म में ध्यान क्यों नहीं है?

दादाश्री : जैन धर्म में चारों ध्यान हैं। वे अपने आप ही होते हैं। ध्यान करना नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : ध्यान किसे कहते हैं?

दादाश्री : सांसारिक क्रियाएँ करते हुए ही ध्यान होता है। और आपको तो एक जगह पर बैठकर ध्यान करना पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वह तो एकाग्रता कहलाती है। ध्यान तो हरएक को होता ही रहता है। ध्यान किसे कहते हैं? अभी कोई आपको गाली दे कि 'आपमें अक्कल नहीं है।' इतना ही बोले तो आपको रौद्रध्यान हो जाएगा। वह अपने आप ही हो जाता है, कोई उकसाए तो ध्यान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह ध्यान किस तरह होता है? उसकी 'स्टेज' कैसी है?

दादाश्री : किसीने कहा कि, 'आपने यह सब उल्टा कर दिया।' उस समय जो आपको अंदर असर हो जाता है, गुस्सा आता है, वह रौद्रध्यान है। कभी मन में ऐसा हो कि, 'अब मेरा क्या होगा?' वह आर्तध्यान। 'चीनी पर कंट्रोल आ गया, चीनी नहीं लाए हैं, अब क्या होगा?' वह सब आर्तध्यान। आर्तध्यान और रौद्रध्यान रोज़ होते ही रहते हैं। और

धर्मध्यान तो समझा ही नहीं। और चौथा शुक्लध्यान, वह तो प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है।

प्रश्नकर्ता : मन की शांति के लिए ध्यान करते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : कौन-से ध्यान करते हैं?

प्रश्नकर्ता : मेडिटेशन करते हैं न!

दादाश्री : वह तो सब मादकता है, उसमें बहुत फायदा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फायदा किसमें है?

दादाश्री : फायदा तो, खुद का स्वरूप जानें कि, 'मैं कौन हूँ?', ताकि फिर निरंतर शांति, फिर जेब काट ले या चाहे जो हो फिर भी कुछ नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर स्थिर बैठे बिना ध्यान हो सकता है?

दादाश्री : ध्यान तो चलते-फिरते, सांसारिक क्रियाएँ करते हुए होता ही रहता है। लोग रात-दिन आर्तध्यान और रौद्रध्यान करते हैं। देवगति में जाने का ध्यान भी चलते-फिरते हो सकता है और मोक्षगति में जाने का ध्यान भी चलते-फिरते हो सकता है।

ध्यान : ध्येय, ध्याता का संधान

प्रश्नकर्ता : ध्यान का उद्‌भवस्थान क्या है?

दादाश्री : ध्यान का अर्थ क्या है कि कोई भी ध्येय नक्की करे और उसके साथ तार जोड़े, वह ध्यान, जितने समय तक तार जुड़ा रहे, उतने समय तक ध्यान रहता है। आपने मुंबई जाने का नक्की किया और मुंबई की टिकिट ली, तब गाड़ी में मुंबई का ध्यान आपको सहज रूप से रहता ही है।

ध्यान में ध्याता नक्की हो जाना चाहिए और ध्येय नक्की होना चाहिए। आप खुद ध्याता और नक्की किया हुआ ध्येय, इन दोनों का संधान

रहे, वह ध्यान कहलाता है। ध्येय और ध्याता तन्मयाकार हो जाएँ, उसे ध्यान कहते हैं। ध्याता तो आप हो ही, ध्येय की जगह पर आपने क्या रखा हुआ है?

प्रश्नकर्ता : कोन्सन्ट्रेशन करना है, उसे। 'स्व' पर ही करना है न?

दादाश्री : हाँ, 'स्व' पर ही करना है। परन्तु 'स्व' को समझे बिना किस तरह से होगा? 'स्व' क्या है, वह समझना पड़ेगा न? 'स्व' पुस्तक में नहीं है, किसी शास्त्र में लिखा हुआ नहीं है। शब्दरूप में लिखा हुआ होगा, परन्तु जो वास्तव में है वह तो शब्दरूप में नहीं है। इसलिए आप उसे किस तरह नक्की करोगे?

प्रश्नकर्ता : सपोज़ करके नक्की नहीं होगा?

दादाश्री : अहमदाबाद जाना है और सपोज़ करके उत्तर के बदले दक्षिण में चलें तो वह सपोज़ कैसे चलेगा? रेग्युलर स्टेज में सपोज़िशन होना चाहिए। सपोज़ उसकी बाउन्ड्री में होना चाहिए, आउट ऑफ बाउन्ड्री नहीं होना चाहिए।

ध्यान तो तब होगा कि ध्येय के स्वरूप में पहचानना चाहिए और खुद ध्याता स्वरूप हो जाना चाहिए। 'मैं चंदूलाल हूँ', उस प्रकार से आप ध्याता बन जाते हो न? चंदूलाल तो आपका नाम है। आप ध्याता किस प्रकार बनते हो?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उस प्रकार से।

दादाश्री : शुद्धात्मा कौन है लेकिन? उसका भान हो चुका है आपको?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं हुआ है।

दादाश्री : तो आत्मा का भान हुए बगैर कहो तो वह सारी गप्प कहलाती है। आत्मा का भान होना चाहिए। भान नहीं हुआ हो तो भी प्रतीति तो बैठनी ही चाहिए और वह प्रतीति भी टूटे नहीं वैसी होनी चाहिए। 'मैं

शुद्धात्मा हूँ' वह भान हो, तब से ही उसका ध्यान अपने आप रहा ही करता है, आपको करना नहीं पड़ता। जहाँ कुछ भी करने का है, वह तो संयोगों के अधीन है। संयोग हों तो होगा और नहीं हों तो नहीं होगा। और यह तो शुद्धात्मा का एक बार भान हुआ कि ध्यान अपने आप उत्पन्न होता ही है। एक हीरा किसी जगह पर रखा हो और सिर्फ आप अकेले ही जानते हों, तो वह आपके खयाल में होता है कि इस जगह पर रखा है तो आपका ध्यान वहाँ रहा ही करता है! ससुराल में बैठे हों, तब भी आपका ध्यान वहीं होता है। भूल जाएँ उस समय प्रतीति के रूप में होता है। नहीं तो खयाल के रूप में तो होता ही है। ध्यान का भाई ही खयाल है!

अहंकार-ध्यान में नहीं, पर क्रिया में

प्रश्नकर्ता : ध्यान मुझे किस तरह करना है? ठीक से होता नहीं। मुझे सीखना है।

दादाश्री : ध्यान आप करते हो या दूसरा कोई करता है?

प्रश्नकर्ता : मैं करता हूँ।

दादाश्री : किसी समय नहीं हो पाए, वैसा होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है।

दादाश्री : उसका कारण है। जब तक 'आप चंदूलाल हो', तब तक कोई काम 'करेक्ट' नहीं होता। 'आप चंदूलाल हो' वह बात कितने प्रतिशत सच होगी?

प्रश्नकर्ता : सौ प्रतिशत।

दादाश्री : जब तक यह 'रोंग बिलीफ़' है, तब तक 'मैंने इतना किया, ऐसे किया', वह इगोइज़म है। जहाँ-जहाँ करो, उसके कर्त्तापन का इगोइज़म होगा और कर्त्तापन का इगोइज़म बढ़ेगा, वैसे-वैसे भगवान दूर होते जाएँगे। यदि आपको परमात्मापद जानना हो तो इगोइज़म जाएगा तब काम होगा।

ध्यान यानी किसीको आए नहीं, वह ध्यान है। जो किया जाता है वह अहंकार से है। इसलिए वह ध्यान नहीं कहलाता, वह एकाग्रता कहलाती है। जहाँ अहंकार नहीं होता है, वहाँ ध्यान होता है। ध्यान अहंकार से नहीं हो सकता है। ध्यान तो समझने जैसी चीज़ है, करने की नहीं। ध्यान और एकाग्रता में बहुत फर्क है। एकाग्रता के लिए अहंकार की ज़रूरत है। ध्यान तो अहंकार से निर्लेप है। अहंकार घटे-बढ़े, वह आपके ध्यान में रहता है या नहीं रहता?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अहंकार बढ़ा या कम हुआ, वह ध्यान में रखे, उसे ध्यान कहते हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान में भी अहंकार काम में नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : धर्मध्यान में अहंकार है न?

दादाश्री : उसमें भी अहंकार नहीं है। ध्यान में अहंकार नहीं है, क्रिया में अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : रौद्रध्यान और आर्तध्यान में निमित्त तो अहंकार ही है न?

दादाश्री : सिर्फ निमित्त ही नहीं, परन्तु क्रिया भी अहंकार की है। क्रिया, वह ध्यान नहीं है। पर क्रिया में से उत्पन्न होनेवाला परिणाम, वह ध्यान है। और जो ध्यान उत्पन्न होता है, उसमें अहंकार नहीं है। आर्तध्यान हो जाता है, उसमें 'मैं आर्तध्यान कर रहा हूँ' ऐसा नहीं होता, इसलिए ध्यान में अहंकार नहीं होता। अहंकार 'किसी ओर जगह' पर काम में आए, तब ध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : ध्यान में अहंकार नहीं है, कर्त्ता नहीं है, तो किस तरह बंधता है?

दादाश्री : आर्तध्यान होने के बाद 'मैंने आर्तध्यान किया' ऐसा माने, वहाँ कर्त्ता बनता है और उसका बंधन है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि ध्येय नक्की हो जाए और खुद ध्याता

बन जाए तब ध्यान उत्पन्न होता है, उसमें अहंकार की ज़रूरत नहीं है न?

दादाश्री : उसमें अहंकार हो या नहीं हो। निर्‌अहंकारी ध्याता हो न तो शुक्लध्यान उत्पन्न होता है और नहीं तो धर्मध्यान होता है अथवा आर्त या रौद्रध्यान होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी ध्यातापद अहंकारी होता है या निर्‌अहंकारी होता है, पर उसके परिणाम स्वरूप जो ध्यान उत्पन्न होता है, उसमें अहंकार नहीं है!

दादाश्री : हाँ और शुक्लध्यान परिणाम आएगा तब मोक्ष होगा।

प्रश्नकर्ता : ध्येय नक्की होता है, उसमें अहंकार का भाग है क्या?

दादाश्री : ध्येय अहंकार ही नक्की करता है और मोक्ष का ध्येय और ध्याता निर्‌अहंकारी है, इसलिए शुक्लध्यान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : धर्मध्यान के ध्येय में अहंकार की सूक्ष्म हाज़िरी है?

दादाश्री : है। अहंकार की हाज़िरी के बिना धर्मध्यान होता नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : आर्त, रौद्र और धर्मध्यान, वह *पुद्‌गल* परिणति कहलाती है क्या?

दादाश्री : हाँ। वह *पुद्‌गल* परिणति कहलाती है और शुक्लध्यान वह स्वाभाविक परिणति है।

प्रश्नकर्ता : यानी शुक्लध्यान, वह आत्मा का परिणाम कहलाता है क्या?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : शुक्लध्यान हो तो उसमें से जो कर्म होंगे वे अच्छे होंगे और धर्मध्यान में हो तो उससे थोड़ी निचली कक्षा के होंगे, वह बात ठीक

है क्या?

दादाश्री : शुक्लध्यान हो न तो क्रमिक मार्ग में कर्म नहीं होते, यह तो अक्रम मार्ग है इसलिए होते हैं। वह भी उसे खुद को कर्त्तापन से नहीं होते, निकाली भाव से होते है। ये तो कर्म खपाए बिना 'ज्ञान' प्राप्त हुआ है न!

ध्यान के परिणाम

ध्यान का फल आता है। रौद्रध्यान का फल क्या है? तब कहे, भीतर राक्षसी वृत्तियाँ उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : वृत्ति के अनुसार कर्म होंगे न?

दादाश्री : वह ठीक है, परन्तु पहले वृत्तियाँ कहाँ से होती हैं? ध्यान में से। आर्तध्यान और रौद्रध्यान, वे सभी जानवर में या नर्कगति में जाएँ, वैसे ध्यान हैं। फिर वहाँ पर उसे वे कर्म भोगने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'शूट एट साइट' प्रतिक्रमण करते हैं, वह भी एक प्रकार का ध्यान का परिवर्तन ही है न?

दादाश्री : हाँ। वह ध्यान का ही परिवर्तन है।

प्रश्नकर्ता : 'शूट' किया यानी उसने *पुद्‌गल* को नष्ट किया। जो 'व्यवस्थित' में था उसमें दख़ल किया। तो दूसरा जन्म हो वह कैसा आएगा?

दादाश्री : वह भी, बिल्कुल उसके जैसा ही आता है। जो लिंक है, वह वैसी की वैसी ही आती है।

प्रश्नकर्ता : जो 'शूट' करके बदल डालता है, उसका इतना ही आयुष्य होता है या कम हो जाता है?

दादाश्री : वह आयुष्य उसका यहाँ पर टूट जानेवाला था, इसलिए उस घड़ी टूटने के सारे 'सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' मिल जाते हैं और आयुष्य पूरा हो जाता है, लट्टू झटपट घूम जाता है!

आत्मध्यान से ही समाधि

खुद के स्वरूप का ध्यान, उसे ध्यान कहते हैं। दूसरे ध्यान जो करने जाते हैं, वे तो कौन-से गाँव ले जाएँगे उसका ठिकाना नहीं। वह तो एकाग्रता है। भगवान ने क्या कहा है कि, 'खिचड़ी का ध्यान रखना, पति का ध्यान रखना, नहीं तो फिर स्वरूप का ध्यान रख।' उसके सिवाय दूसरे ध्यान का क्या करना है? इस समाधि के लिए दूसरे क्या ध्यान करने हैं? आत्मा में आए तो निरंतर समाधि रहे, वैसा है!

ये ध्यान करने का कहते हैं, बैठकर श्वास ऊँचा-नीचा निकले उस पर ध्यान रखने को कहते हैं। तो जब शरीर पर जलन हो तब किया जा सकता है वह ध्यान? नहीं, ध्यान दिखता नहीं है, शब्द या क्रियाएँ दिखती हैं।

राग-द्वेष कम करने के लिए ध्यान किया जाता होगा? राग-द्वेष कम करने के लिए वीतराग विज्ञान जानना है।

❖❖❖❖❖

(३)
प्रारब्ध-पुरुषार्थ

पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

दादाश्री : आप क्या पुरुषार्थ करते हो?

प्रश्नकर्ता : व्यवसाय का।

दादाश्री : वह तो पुरुषार्थ नहीं कहलाता। यदि खुद ही पुरुषार्थ करता हो तो फायदा ही लाए, पर यह तो नुकसान भी होता है न? वह पुरुषार्थ नहीं कहलाता। वह तो डोरी लपेटी हुई है वह खुल रही है, उसे पुरुषार्थ कैसे कहा जाए? आप पुरुषार्थ करते हो तब फिर नुकसान क्यों उठाते हो?

प्रश्नकर्ता : वह तो वैसा भी हो जाता है। कभी नुकसान भी होता है।

दादाश्री : नहीं। पुरुषार्थ करनेवाले को तो कभी भी नुकसान नहीं होता। यह पुरुषार्थ किया, ऐसा कौन बोलता है? पूरा 'वर्ल्ड' 'टॉप्स' (लट्टू) हैं। यह तो प्रकृति नचाती है वैसे नाचता है और कहता है 'मैं नाचा।' यह इतना-सा ही 'शॉक' (झटका) दें, तो हड्डी और सब बाहर निकल जाए। ये पुस्तकें पढ़ते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं, वह भी पुरुषार्थ नहीं है। वह सब नैमित्तिक पुरुषार्थ है। सच्चे पुरुषार्थ को कोई समझा ही नहीं। 'मैं हूँ, मैं हूँ' करते हैं। अरे, संडास जाने की सत्ता नहीं और तू है लट्टू! यह तो श्वास नाक से लिया जाता है। श्वास लेने की भी खुद की शक्ति नहीं है। और एक उच्छवास निकालने की भी इस लट्टू में शक्ति नहीं है। यह तो कहेगा कि, 'मैं श्वास लेता हूँ।' फिर रात को तू सो जाता है, तब श्वास कौन लेता है?

तुझे ज्ञान है न कि यह नाक बंद किया तो क्या होगा? यह मशीनरी इस तरह प्रबंधित है कि वह अंदर से श्वास लेती है और फिर वही मशीनरी श्वास फेंकती है। तब ये लोग कहते हैं कि, 'मैं लम्बा श्वास लेता हूँ और मैं छोटा श्वास लेता हूँ!' यह तो तुझे 'तू कौन है?' उसका ही भान नहीं है। यह तो डोरी लिपटती है और लट्टू घूमता है, उसमें 'मैं घूमा' कहेगा। वर्ल्ड में संडास जाने की सत्ता भी किसीको नहीं है, हमें भी नहीं है। यह 'पुरुषार्थ, पुरुषार्थ' करते हो, वह जीवंत का है या मरे हुए का? पुरुष हुए बिना पुरुषार्थ किस तरह से होगा? आप जिसे आत्मा मानते हो, वह तो निश्चेतन चेतन है। यह पुरुषार्थ कौन करता है?

प्रश्नकर्ता : वह तो मैं ही करता हूँ न!

दादाश्री : पर 'मैं कौन?' यह तो 'मैं', वही लट्टू है न! और लट्टू तो क्या पुरुषार्थ करनेवाला है? और यदि खुद पुरुषार्थ कर सकता हो तो कोई मरे ही नहीं, पर यह लट्टू तो कभी भी लुढ़क जाता है। यह लट्टू डॉक्टर से कहता है, 'साहब, मुझे बचाओ।' अरे, डॉक्टर का बाप मर गया, माँ मर गई, उन्हें वह नहीं बचा सका तो तुम्हें क्या बचानेवाला है वह? डॉक्टर के बाप को गले में कफ हो गया हो तो हम कहें कि, 'आप इतने-इतने ओपरेशन करके पेट में से गाँठे निकाल लेते हो, तो यह ज़रा कफ ही निकाल लो न!' तब वह कहेगा कि, 'नहीं, ऐसे करने से तो वे खत्म हो जाएँगे।' तब यह गैरजिम्मेदारी से कहता है कि, 'मैंने बचाया।' अरे, अर्थी नहीं निकलनेवाली हो तो ऐसे बोल। तू पहले तेरी अर्थी उठने से रोक! यह तो जाने कहाँ मर जाओगे! इसलिए बात को समझो।

पाचन में पुरुषार्थ कितना?

यह अभी नाश्ता यहाँ पर आया है, उसे खाने में क्या पुरुषार्थ करना पड़ता है? यदि इस खाने की क्रिया में पुरुषार्थ करना पड़ता हो तो वह और जगत् का पुरुषार्थ, दोनों समान ही हैं। खाने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : वैसा ही है। ये खाने के लिए नैमितिक पुरुषार्थ करना पड़ता है, हाथ, मुँह हिलाना पड़ता है। 'हम' दख़ल नहीं करें तो दाँत अच्छी तरह चबाएँगे, जीभ भी अच्छी तरह रहेगी। यह तो खुद सिर्फ दख़ल ही करता है कि, 'खाने का पुरुषार्थ मैं करता हूँ।' जीभ यदि खाने का पुरुषार्थ करने जाए न तो बत्तीस दाँतों के बीच कितनी बार चब जाए! परन्तु जीभ दख़ल नहीं करती और ऐसा नहीं कहती कै 'मैं पुरुषार्थ कर रही हूँ।' भोजन के समय यदि मिल में पुरुषार्थ (!) करने नहीं जाए, तो खाने की क्रिया बहुत अच्छी तरह स्वाभाविक हो ऐसा है। यह तो मात्र 'देखना' और 'जानना' है। सबकुछ स्वाभाविक प्रकार से चलता ही रहे ऐसा है! रात को आप हाँडवा (गुजराती व्यंजन) खाने के बाद फिर सो जाते हो! तो उसके बाद उसे पचाने के लिए क्या पुरुषार्थ करते हो?

प्रश्नकर्ता : खुराक के पाचन के लिए आगे-पीछे, घूमना-फिरना पड़ता है।

दादाश्री : वह क्रिया पाचन के लिए निमित्त है और सो जाओ तब श्वासोच्छ्वास अच्छे चलते हैं, इसलिए ही तो मनुष्य फ्रेश हो जाता है। आप नींद में हों, तो भी अंदर पाचन के लिए आवश्यक पाचकरस, बाइल, वगैरह मिलते ही रहते हैं। उसे चलाने के लिए कौन जाता है? जैसे अंदर का अपने आप चलता है, वैसे ही बाहर का भी सबकुछ अपने आप ही चलता है। मात्र नैमित्तिक क्रिया, प्रयत्न वगैरह करना पड़ता है। बाक़ी सबकुछ 'व्यवस्थित' प्रकार से ही प्रबंधित होता है। जन्म लिया तब से ही *भोगवटो* (सुख-दुःख का असर), मान-अपमान, यश-अपयश सब लेकर ही आया हुआ है, पर यह अहंकार बाधा डालता है। जो कुछ क्रिया होती है, उसमें खुद को कर्त्ता मानता है। इसमें करने जैसा क्या है? मात्र आत्मा जानना है। पेट में हाँडवा डालते हैं और अंदर कुदरती सब क्रियाएँ होती हैं। उसी प्रकार बाहर सब कुदरती प्रकार से चलता है। कितनी खुराक, कितने कदम, किस तरह चलना, कितना चलना, सब अपने आप ही होता रहता है। यह तो मात्र अहंकार करता है, अक्कलमंदी करता है और मानता है कि खुद पुरुषार्थ कर रहा है। पर पुरुष हुए बिना पुरुषार्थ नहीं होता। यह तो 'ज्ञानी

पुरुष' अलख का लक्ष्य बैठाए, पुरुष हो जाए, फिर पुरुषार्थ कर सकता है।

लोग कमर कसकर पुरुषार्थ करने जाते हैं कि मुंबई में ऐसे करना है और वैसे करना है! मुंबई तो वही की वही रही है, कितने ही सेठ यों ही मर गए! मुंबई की आबादी है, तब तक कोई कुछ करनेवाला नहीं है। क्योंकि आबादी को रोकने की सत्ता नहीं है और बरबादी को भी रोकने की सत्ता नहीं है! और उसमें लोग पुरुषार्थ करने निकले हैं। तू तो इन सब बर्तनों में सिर्फ एक चमचा है।

पुरुषार्थ, वह भ्रांत भाषा का शब्द है, यह सच्ची भाषा का शब्द नहीं है। जैसे कि आप कहते हो, 'मैं उनका समधी होता हूँ', वह सच्चा शब्द नहीं है। वैसे ही यह भाषा अलग है।

जीवों का ऊर्ध्वगमन किस तरह?

प्रश्नकर्ता : जीव कौन-से पुरुषार्थ से ऊपर आया है?

दादाश्री : वह आपको समझाऊँ। ये हमारे यहाँ नर्मदा नदी है, वह पत्थर की कगार में भी बहती है और मिट्टी की कगार में भी बहती है। जहाँ पत्थर की कगार हो वहाँ पानी बहुत ज़ोर से बहता है और पत्थरों की धार भी तोड़ देता है। फिर नदी में कोई इतना बड़ा पत्थर गिरता है, कोई इतना बड़ा पत्थर गिरता है। उस समय के पत्थरों का कोना यदि लगे न तो खून निकले वैसा होता है। क्योंकि ताज़ा टूटकर गिरे हुए पत्थर धारवाले होते हैं। इन जीवों का पुरुषार्थ क्या है, वह मैं आपको समझाऊँ। इस नदी का स्वभाव कैसा है कि वह पत्थरों को बहाव में ऐसे खींचकर-वैसे खींचकर ले जाती है। ऐसे चलता ही रहता है। वे पत्थर फिर अंदर ही अंदर टकराते रहते हैं, टकराते रहते हैं। इसलिए दस-पंद्रह मील जाएँ तब मुलायम लगते हैं, चिकने लगते हैं, घिसकर तैयार किए हों वैसे मार्बल जैसे लगते हैं। पर फिर भी वे टेढ़े-मेढ़े होते हैं। फिर यहाँ मुहाने तक आते-आते ऐसे गोल हो जाते हैं कि उन्हें वहाँ पर यात्रा में क्या कहते हैं? 'भाई, दर्शन करने के लिए घर पर शालिग्राम लेते आना।' वे गोल हो चुके पत्थर होते हैं, उनके लोग दर्शन करते हैं। उसी तरह से ये जीव-मात्र घिसते ही रहते

हैं। कुदरत घसीटती है और टकराता है, टकराते-टकराते गोल हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ भी नहीं करना है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं करना है। वह लट्टू क्या करता है फिर? संडास जाने की सत्ता नहीं, वहाँ वह क्या करे? जो पत्थर टकराते-टकराते गोल हो जाते हैं, तब लोग उसे शालिग्राम कहकर मंदिर में रखते हैं। जितने शालिग्राम हो चुके उतने पूजा में बैठे और दूसरे समुद्र में गए! तो वैसा यहाँ पर हिन्दुस्तान में जन्म लेने के बाद पत्थर गोल हो चुका होता है और यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए और समकित हो गया तो वे पूजे गए और बाकी सब गए समुद्र में! समकित हुए बिना कोई पुरुषार्थ नहीं है। समकित होने तक सारी ही *अकाम निर्जरा* (नए कर्म का बंधन होकर पुराने कर्म का अस्त होना) है। ये लोग मानते हैं, वह पुरुषार्थ तो भ्रांति का है। भ्रांति का पुरुषार्थ अर्थात् फिर से जन्म लेना पड़े, वैसा।

यह आपको जो मार्ग बताया कि कहाँ से पत्थर गिरते हैं, वह व्यवहार की आदि है। अव्यवहार की आदि ही नहीं, वह तो अनादि है। परन्तु व्यवहार की आदि यहाँ से होती है। पत्थर नदी में गिरे तब से। अव्यवहार राशि यानी जहाँ अभी तक जीव का नाम भी नहीं पड़ा है, वह। और जहाँ से नाम पड़ा कि यह गुलाब, यह मोगरा, ये चींटी, मकोड़े... वे सब जीव व्यवहार राशि में आए। कुदरती रूप से धक्के खा-खाकर आगे आते हैं। ठेठ अनाज की बाली आने तक कुदरती संचालन है।

प्रश्नकर्ता : उसका कोई कारण है क्या, कि कोई पत्थर दरिया में गिरा और कोई पत्थर शालिग्राम हुआ?

दादाश्री : कारण कुछ भी नहीं, जिसे जो संयोग मिले वे! यह 'दादा' का संयोग मिला तो देखो न, आप परमानंद में रहते हो न! यह संयोग मिला उतना ही। फिर आपको दूसरा कुछ करना पड़ा है? क्या चरखा चलाना पड़ा? नहीं तो इस व्यवहार का अंत कब आए?

ये पत्थर ऐसे नदी में जाएँ तब एक सरीखे होते हैं, वैसे छोटे-मोटे ज़रूर होते हैं, पर उन्हें अलग-अलग तरह से घिसता कौन है? तब कहें,

'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स'। आज पत्थर यहाँ आकर बैठे हों तो अगले साल तो उस तरफ होंगे। उन्हें तो चलना भी नहीं पड़ता न ही कुछ करना पड़ता है। और शालिग्राम बन जाता है। तो इन जीवों की पत्थर जैसी ही दशा है! और ये पत्थर ही हैं, इनमें से आत्मा निकाल दें तो पत्थर ही हैं!

प्रश्नकर्ता : संयोगों में पुरुषार्थ है क्या?

दादाश्री : जो पुरुष हुआ हो, वही पुरुषार्थ कर सकता है। कृष्ण भगवान ने कहा है कि, 'उद्धवजी, अबला तो क्या साधन करे?' जैनों के सबसे बड़े आचार्य आनंदघनजी महाराज क्या कहते हैं? वे कहते हैं, 'हे अजीतनाथ! आप पुरुष हुए हैं क्योंकि आपने क्रोध-मान-माया-लोभ को जीत लिया है इसलिए अजीत कहलाते हैं और मैं तो अबला हूँ क्योंकि क्रोध-मान-माया-लोभ ने मुझे जीत लिया है!' अब इतने बड़े आचार्य अपने आप को अबला कहते हैं, तो औरों को तो कुछ कहने को रहा ही नहीं न!

ये सारी ही क्रियाएँ मिकेनिकल चलती ही रहती हैं। वह तो गेहूँ पकते रहेंगे। गेहूँ बाज़ार में आएँगे, वे पीसे जाएँगे और गेहूँ की ब्रेड बनेगी। वह सब 'मिकेनिकल' होता रहेगा। मिकेनिकल एविडेन्स में तो यह सब *घटमाळ* (श्रृंखला या चक्र) हैं ही!

तो सच्चा पुरुषार्थ कौन-सा?

वास्तव में तो यथार्थ पुरुषार्थ चाहिए। प्रकृति का नहीं, पुरुष का पुरुषार्थ चाहिए। जगत् में प्रकृति का पुरुषार्थ चलता है। यह सामायिक किया, प्रतिक्रमण किया, ध्यान किया, कीर्तन किया, वह तो प्रकृति का पुरुषार्थ! जब कि यथार्थ पुरुषार्थ तो पुरुष होकर करे, तो ही यथार्थ को पहुँचता है।

ये 'दादा', इन्होंने 'ज्ञान' और 'अज्ञान' दोनों को पूर्णत: अलग देखा है, वैसा ही आपको दिखाते हैं, तब पुरुष, पुरुष धर्म में आ जाता है, फिर प्रज्ञा सचेत करती है। तब तक प्राकृत धर्म में ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : सच्चा भाव हो उसे पुरुषार्थ कहा जाता है?

दादाश्री : भावाभाव - वह कर्म है, स्वभावभाव - वह पुरुषार्थ है। स्वभावभाव अर्थात् किसी चीज़ का 'स्वयं' कर्त्ता नहीं है, स्वभावभाव! उसमें दूसरा कोई भाव नहीं है। उसमें तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद ही रहता है!

स्वरूपज्ञान के बाद सभी स्वभावभाव में आते हैं। स्वयं पुरुष होने के बाद चेतन पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। स्वाभाविक पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। और जब स्वयं परमात्म पुरुषार्थ में आता है, तब स्वयं ही परमात्म स्वरूप हो गया।

सभी संयोग इकट्ठे हों, तभी 'रिलेटिव' कार्य होता है। वह 'व्यवस्थित' है। ज्ञानी क्या कहते हैं कि इस भ्रांति के पुरुषार्थ में थे, अब स्वरूपज्ञान प्राप्ति के बाद 'रियल' पुरुषार्थ में लग जाओ कि जहाँ संयोगों की ज़रूरत नहीं है। 'रियल' पुरुषार्थ में तो किसी वस्तु की ज़रूरत नहीं रहती और 'रिलेटिव' पुरुषार्थ में मन-वचन-काया, सभी संयोगों की ज़रूरत पड़ेगी। स्व-पुरुषार्थ कौन-सा? *पुद्‌गल* परिणति में कहीं भी राग-द्वेष नहीं हो, वह। फिर मार डाले तो भी राग-द्वेष नहीं हो।

प्रारब्ध कर्म क्या? संचित कर्म क्या?

प्रश्नकर्ता : 'नसीब' और 'व्यवस्थित' में क्या फर्क है?

दादाश्री : 'नसीब, लक-अनलक, प्रारब्ध-पुरुषार्थ, तकदीर-तदबीर' वे भ्रांत भाषा की बातें हैं, बालभाषा के शब्द हैं। वह बालमंदिर की भाषा है, वह ज्ञानमंदिर की भाषा नहीं है। ज्ञानमंदिर की भाषा में 'व्यवस्थित' है। लोग कहते हैं न 'प्रारब्ध में होगा तो हो जाएगा?' तब कोई आपत्ति उठाए कि, 'पुरुषार्थ किए बिना किस तरह होगा?' यानी ज्ञान ऐसा होना चाहिए कि कोई आपत्ति नहीं उठाए। यह तो गप्प है, लोग न तो प्रारब्ध समझते हैं, न ही पुरुषार्थ को समझते हैं!

बीमार पड़ा, वह प्रारब्ध कर्म नहीं है। भगवान प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं कि यह कुछ भी खाता था, वह उसके प्रारब्ध कर्म से खा रहा था, उसका फल ये मरोड़ उठे, वह आया। खुद को खाना नहीं होता, फिर भी खिलाते हैं, वह प्रारब्ध कर्म और मरोड़ उठते हैं वह प्रारब्ध कर्म का फल है।

प्रश्नकर्ता : खाते समय उसे रोकने के लिए क्या करें? उस समय प्रारब्धकर्म या संचित कर्म होता है?

दादाश्री : पिछले जन्म में जो संचित कर्म हों, वे इस भव में प्रारब्ध के रूप में आते हैं, इसलिए 'यह खाऊँ और वह खाऊँ', रहता है और उसमें फिर खट्टा-तीखा खाता रहता है। इसलिए फिर वाइटालिटी पावर (रोग प्रतिरोधक शक्ति) पर ज़ोर पड़ता है, उससे पाचन नहीं किया जा सकता। इसलिए उस कचरे को एक जगह पर इकट्ठा करता रहता है। इस शरीर में कुछ भाग ऐसे हैं कि जिनमें वाइटालिटी पावर कचरे को फेंकती है। ये डॉक्टर उसे रेज़ (किरणें) से जला देते हैं, या फिर कुछ खास प्रकार की दवाओं से खत्म हो जाता है।

भ्रांत पुरुषार्थ और प्रारब्ध कर्म

इस संसार में पुरुषार्थ जिसे मानते हैं, वह पुरुषार्थ है ही नहीं। अब इतनी बड़ी भूल हिन्दुस्तान में चले, सभी जगह चले, तो लोगों की क्या दशा होगी? 'पुरुषार्थ और प्रारब्ध' के भेद 'ज्ञानी पुरुष' के पास से समझ लेने चाहिए।

अपने लोग किसे पुरुषार्थ मानते हैं? सुबह उठा, वह 'जल्दी उठा' उसे पुरुषार्थ कहते हैं, 'कल देर हो गई और आज जल्दी उठा' ऐसा कहता है। फिर चाय पी ली, फिर संडास जाकर आया, नहाया-धोया और झट व्यापार के लिए चला। और व्यापार में पूरा दिन बैठा रहा, उसे पुरुषार्थ कहता है। पर वह तो प्रारब्ध है। टेन्डर भरा, फलाना किया, त्रिकम साहब से मिल आया, फलानी जगह पर जाकर आया, यह सभी प्रारब्ध है। भागदौड़ करता है, दुकान खोलता है, वह भी प्रारब्ध है। बोलो अब, यह पब्लिक क्या समझती होगी प्रारब्ध को? जो प्रारब्ध है न उसे ही पुरुषार्थ कहती है, तो बोलो अब पुरुषार्थ कब होता होगा? समझने जैसी बात है न! 'ज्ञानी पुरुष' के पास से प्रारब्ध और पुरुषार्थ का भेद समझ लें तो हल आए।

इस ज्ञान के बाद प्रारब्ध-पुरुषार्थ 'आपको' नहीं रहते है। आप

आत्मस्वरूप हो गए इसलिए बिल्कुल 'व्यवस्थित' ही है। जगत् के लोगों के लिए जगत् 'व्यवस्थित' नहीं है। क्योंकि वह खुद भ्रांतिस्वरूप में है, इसलिए वह दख़ल किए बगैर रहता नहीं है। अभी चाय देर से आई हो तो आप 'व्यवस्थित' समझ जाते हो और समभाव से *निकाल* (निपटारा) करके हल लाते हो, पर दख़ल नहीं करते हो और वह क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : शोर मचा देगा।

दादाश्री : हम लोग तो पुरुष बने हैं, इसलिए पुरुषार्थ है। परन्तु जगत् के लोगों को बिना पुरुषार्थ की भूमिका नहीं होती है न? वह भ्रांत पुरुषार्थ कहलाता है, वह भी पुरुषार्थ है। पर वह भी जानना चाहिए न? भ्रांत पुरुषार्थ से क्रमिक मार्ग में आगे बढ़ते हैं, मोक्ष की ओर। अब जगत् के लोग कहेंगे कि, 'यह दुकान खूब आगे बढ़ाई, व्यापार खूब जमाया, मैं पढ़ा, मैं पहले नंबर से पास होता हूँ।' उसे ही पुरुषार्थ कहते हैं, पर वह सब प्रारब्ध है। भूल सुधारनी पड़ेगी या नहीं सुधारनी पड़ेगी?

प्रश्नकर्ता : सुधारनी पड़ेगी।

दादाश्री : आप नहीं सुधारो तो चलेगा। क्योंकि आपको तो 'व्यवस्थित' हाथ में आ गया है न! पर लोग तो कब समझेंगे यह?!

पुरुषार्थ कौन-सा करें?

सबकुछ ही प्रारब्ध है, तो पुरुषार्थ क्या होगा? वैसा कुछ समझने का विचार आता है आपको?

प्रश्नकर्ता : खयाल नहीं आता।

दादाश्री : कल रात को आपने निश्चित किया कि सुबह जल्दी उठना है और देर से उठा गया आपसे, तब दूसरे लोगों को ऐसा नहीं कहना कि, 'आप सब जानते थे कि मुझे गाड़ी से जाना है, क्यों जल्दी नहीं उठाया?' ऐसी कलह करने की ज़रूरत नहीं है। हमने लोगों से जल्दी उठाने को कहा होता तो भी वह उस समय भूल गया होता। हमें कलह करने की कोई ज़रूरत है? देर से उठा गया, वही प्रारब्ध है। अब पुरुषार्थ क्या करना

है हमें? निश्चित किया कि जल्दी उठना ही चाहिए, वह पुरुषार्थ है वहाँ पर! और चाय शायद फीकी आए तो मन में निश्चित करना कि मेरे प्रारब्ध के आधार पर चाय फीकी आई। इसलिए किसीका दोष नहीं है। इसलिए विनती करके चीनी माँग लेना, नहीं तो माँगनी ही नहीं ऐसा निश्चित करो। इन दोनों में से एक करो। हमने भाव किया, वह पुरुषार्थ कहलाता है। पर वह 'रिलेटिव' पुरुषार्थ कहलाता है। जब कि 'रियल' पुरुषार्थ किसे कहा जाता है? पारिणामिक भाव जिसे उत्पन्न हुआ उसे 'रियल' पुरुषार्थ कहा जाता है। ये लोग पूरे दिन सामायिक, प्रतिक्रमण, जप-तप, ध्यान, क्रिया ज़रूर करते रहते हैं, पर सब नींद में करते हैं। उसे पुरुषार्थ नहीं कहा जाता। पुरुषार्थ जागता हुआ व्यक्ति करता है या सोता हुआ करता है?

प्रश्नकर्ता : जागता हुआ।

दादाश्री : जगत् तो प्रारब्ध को ही पुरुषार्थ कहता है। कुछ थोड़े, बहुत ही कम लोग जागृत होंगे। तो ऐसे लोग कुछ समझते-जानते होंगे कि ऐसा होना चाहिए। बाक़ी, प्रारब्ध-पुरुषार्थ का भेद भी नहीं समझते।

प्रश्नकर्ता : ये सारी भूलें ही कहलाएँगी न?

दादाश्री : वास्तव में वह भूल नहीं हुई है, किसलिए? वह आपको समझाऊँ। प्रारब्ध और पुरुषार्थ के जो भेद पहले के लोगों ने डाले हुए हैं, वे सही कब तक हैं कि जब तक मन-वचन-काया की एकता हो। यानी कि मन में जैसा हो, वैसा ही वाणी में बोले और वैसा ही वर्तन में करे। पर इस काल में मन-वचन-काया की एकता टूट गई है। इसलिए आज प्रारब्ध और पुरुषार्थ के भेद गलत ठहरते हैं। यह कुछ बिल्कुल गलत नहीं है, परन्तु सापेक्ष है।

प्रश्नकर्ता : प्रारब्ध की बात तो समझ में आई, पर पुरुषार्थ की बात ठीक से नहीं समझ में आई।

दादाश्री : संयोग मिले वह प्रारब्ध और संयोग उल्टा आए उस घड़ी समता रखनी, वह पुरुषार्थ है। जो-जो संयोग मिलते हैं, वे सभी प्रारब्ध हैं। आप 'फर्स्ट क्लास' पास हुए, वह भी प्रारब्ध और कोई फर्स्ट क्लास नापास हुआ, वह भी प्रारब्ध। इन शब्दों पर से नोट करना कि जितने संयोग मिलते हैं वे सारे ही प्रारब्ध हैं। सुबह में उठा गया वह संयोग कहलाता है। साढ़े सात बजे उठा गया तो साढ़े सात का संयोग कहलाता है, वह प्रारब्ध कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति मेरे लिए खराब बोले, मेरे सामने ही बोले और मैं उसके लिए समभाव रखकर पुरुषार्थ करूँ, तो वह वास्तव में प्रारब्ध कहलाएगा या नहीं?

दादाश्री : नहीं, हम लोगों को संयोग मिलता है वह गलत हो, हमें गालियाँ दे, वहाँ लोग पुरुषार्थ नहीं करते और सामनेवाला गाली दे, मुँह चढ़ाए वैसा करते हैं। कोई आपको गालियाँ दे, उस समय आपको मन में ऐसा हो कि यह मेरे ही कर्मों का फल है, सामनेवाला तो निमित्त है, निर्दोष है। वह भगवान का आज्ञारूपी पुरुषार्थ है। उस घड़ी आप समता रखो, वह पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : जिन्हें सम्यक् दर्शन नहीं हुआ, वैसे जगत् के लोगों के लिए तो यही पुरुषार्थ है।

दादाश्री : हाँ, जगत् के लोगों के लिए वह पुरुषार्थ है। वह कौन-सा पुरुषार्थ है? 'रिलेटिव' पुरुषार्थ है। क्योंकि उन्हें संसार में 'रिलेटिव' ज्ञान होता है। कुछ सुनने में आता है, कुछ पुस्तक में पढ़ने में आता है, वह 'रिलेटिव' ज्ञान होता है। वह 'रिलेटिव' ज्ञान का प्रताप बरते उसे 'रिलेटिव' पुरुषार्थ कहा जाता है। यहाँ पर 'रियल' ज्ञान का प्रताप बरतता है, तो 'रियल' पुरुषार्थ कहलाता है, जगत् में कुछ लोग तो पुरुषार्थ करते हैं। बिल्कुल ही कहीं नापाक नहीं हो गए हैं, लगभग हज़ार में से दो-तीन लोग निकलेंगे, ऐसे हैं ज़रूर! परन्तु वे खुद पूरा-पूरा समझ नहीं सकते कि इसे प्रारब्ध कहें या पुरुषार्थ कहें! उनसे पुरुषार्थ स्वाभाविक रूप से हो जाता है। पर वह खुद जानता नहीं कि इसमें वह कौन-से 'ग्रेड' की वस्तु है और 'यह' किस 'ग्रेड' की वस्तु है? प्रारब्ध और पुरुषार्थ में तो लोग बस इतना ही जानते हैं कि मुझे बस ग्यारह बजे जाना है, क्यों देर

हुई? कढ़ी क्यों इस तरह ढोल दी? ऐसा किया और वैसा किया?' अरे, कढ़ी ढुल गई तो वह संयोग कहलाता है। इससे से दो भाग अलग हुए कि संयोग और वियोग दो ही हैं संसार में। जितने संयोग हैं, उतने वियोग होने ही वाले हैं। और संयोग जो हुआ, उसमें समता रखनी, वह पुरुषार्थ। कोई फूल चढ़ाए तब ऐसे छाती फुलाए तो वह पुरुषार्थ नहीं कहलाता। स्वाभाविक जो कुछ भी होता है, वह प्रारब्ध है। फूल चढ़ाएँ, तब हम ऐसे पद्धतिपूर्वक रहें, वैसा पुरुषार्थ पहले कभी हुआ था?

प्रश्नकर्ता : नहीं। मैं जानता ही नहीं था कि यह पुरुषार्थ है।

दादाश्री : इसलिए हम कहते हैं कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ को समझो। और जो पुरुषार्थ होता है, उसे खुद जानता नहीं है, वह स्वाभाविक होता है, वह नींद में होता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो प्रारब्ध है, वह जैसा पिछले जन्म में चार्ज हुआ हो, उसके अनुसार ही प्रारब्ध आता है?

दादाश्री : जो चार्ज हो चुका है, वह डिस्चार्ज होता है। वह संयोग स्वरूप से डिस्चार्ज होता है। और उल्टा संयोग मिला हो, उसे सीधा कर लेना, वह पुरुषार्थ है। फिसलने में तो हरकोई फिसलता है, उसमें क्या पुरुषार्थ किया कहलाएगा? फिसलने में रुकना, वह पुरुषार्थ कहलाता है। यह तो बिल्कुल अँधे भूत होकर टकराते हैं और अपने आप को जाने क्या ही मानते हैं! यह सब समझना पड़ेगा न? गलत बात को सत्य माना गया है, तो उसका ओरछोर कब आएगा? जिसका ओर नहीं आए, उसका छोर आएगा क्या?

और यह 'व्यवस्थित' का ज्ञान तो सब लोगों के लिए नहीं है। क्योंकि उनके पास अहंकार है न! अब अहंकार 'व्यवस्थित' के ताबे में है और वह खुद कहता है कि मैं कर रहा हूँ, इसलिए उन दोनों का वहाँ पर टकराव होता है। 'व्यवस्थित' में भी दख़ल करके बल्कि सुख बिगाड़ता है। वह अहंकार से यदि इतना दख़ल नहीं करता हो और समता से यदि पुरुषार्थ करता हो, तो बहुत लाभदायक हो जाता है। फिर भी 'उससे'

'व्यवस्थित' तो माना ही नहीं जाता। 'व्यवस्थित' तो शुद्ध होने के बाद, 'आत्मा' प्राप्त होने के बाद ही समझ में आता है! जगत् है ही 'व्यवस्थित' उसमें दो मत नहीं हैं, परन्तु जो अहंकार है, वह यदि 'व्यवस्थित' कहे तो दख़ल हो जाता है। इस प्रारब्ध को ही लोगों ने इतना अधिक उल्टा कर दिया है, वहाँ दूसरे अवलंबन की तो बात ही क्या?

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से प्रारब्ध बदला जा सकता है?

दादाश्री : बदल सकता है, पर किस तरह? भुगतने का रस बहुत कड़वा हो तो वह कम कड़वा हो जाता है। कड़वाहट कम हो जाती है, लेकिन भुगतने का मूल नहीं जाता।

स्वरूपज्ञान नहीं हो और किसीके साथ आपको क्रोध हुआ या किसीने आप पर क्रोध किया तो आपको सहज रूप से गलत लगता है या डिप्रेस हो जाते हो अथवा तो उस व्यक्ति पर गुस्सा करते हो आप। अब उस समय आप यदि अपनी प्रतिक्रिया बदल दें, तो उसे पुरुषार्थ कहते हैं। उसे, जागृत है, ऐसा कहते हैं। जागृति हो तो ही पुरुषार्थ कर सकेगा न? सोता है, इसलिए पुरुषार्थ नहीं हो सकता। इसे भावनिद्रा कहा है।

यह सब प्रारब्ध ही है। प्रकृति ज़बरदस्ती नचाती है, प्रकृति उतावले को उतावला नचाती है, आलसी को धीरे-धीरे नचाती है। अब उतावला क्या कहता है कि, 'यह प्रारब्धवादी आलसी है और मैं पुरुषार्थवादी हूँ।' वास्तव में तेरा उतावला प्रारब्ध है और इसका धीमा प्रारब्ध बाँधा हुआ है। दोनों संयोगाधीन है। दुकान अच्छी चले तो पुरुषार्थी माना जाता है और नहीं चले तो कहता है कि प्रारब्धवादी है। हक़ीक़त में ऐसा नहीं है। प्रारब्ध यानी 'फ्री ऑफ कॉस्ट' चीज़ है। पुरुषार्थ यानी आगे ले जानेवाली चीज़ है, वह कमाई की चीज़ है। यानी उसने तो संयम खोया, पर आपने भी संयम खोया। इसलिए दोनों अधोगति में जाओगे। अब आप संयम रखो तो आपकी अधोगति नहीं होगी, इस जगह पर फिसल नहीं जाओगे। सामनेवाला तो फिसला, पर आप भी फिसलो तो वहाँ पुरुषार्थ कहाँ कहलाएगा!

यह प्रारब्ध-पुरुषार्थ बहुत समझने जैसी वस्तु है। कल थी वही की वही प्रथा आज हो, फिर उसे पुरुषार्थ कैसे कहा जाए? फिर भी पुरुषार्थ नहीं है, वैसा नहीं है। बहुत हुआ तो हज़ार में से दो-पाँच लोगों को होगा। प्रतिशत के हिसाब से बहुत कम होते हैं। और वे भी फिर जानते नहीं कि यह पुरुषार्थ है। वे तो ऐसा ही समझते हैं कि जो जल्दी जा रहा हो उसे ही पुरुषार्थ कहते हैं। हमारे लोग पुरुषार्थ तो जल्दबाज़ी करनी, हंगामा करना, भागदौड़ करना, पूरा दिन कभी भी फालतू नहीं रहता हो, उसे कहते हैं।'बहुत पुरुषार्थी व्यक्ति है, बहुत पुरुषार्थी व्यक्ति हैं' ऐसा कहते हैं। अरे, यह लट्टू पूरा दिन घूमने के लिए ही जन्मा है। उसे पुरुषार्थ कैसे कहा जाए फिर?

पुरुषार्थ यानी उपयोगमय जीवन

पुरुषार्थ यानी उपगोयमय जीवन। अपने यहाँ शुद्ध उपयोग होता है और दूसरी जगहों पर शुभ उपयोग होता है। जो अशुभ हो चुका है, पर उपयोगपूर्वक उसे शुभ कर देते हैं। यानी जितने लोगों का संयम दिखता है, वह भी स्वाभाविक है। वह खुद जानता नहीं कि मैं पुरुषार्थ कर रहा हूँ। वह उसकी प्रकृति का स्वभाव है। जो स्वाभाविक होता है उसे पुरुषार्थ नहीं कह सकते। पुरुषार्थ हम जानते हैं कि, यह पुरुषार्थ है, दूसरा सब प्रारब्ध है, पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ, वह सच्चा पुरुषार्थ कहलाता है। यह 'रियल' पुरुषार्थ है और वह 'रिलेटिव' पुरुषार्थ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : समता और संयम में फर्क क्या है?

दादाश्री : संयम, वह पुरुषार्थ है और समता वह तो ज्ञान से उत्पन्न होनेवाला स्वभाव है।'यम' को भी पुरुषार्थ कहा है, 'नियम' को भी पुरुषार्थ कहा है और 'संयम' को भी पुरुषार्थ कहा है। यह दिखनेवाला संयम नहीं है। पुरुषार्थ दिखता नहीं है कभी भी!

प्रश्नकर्ता : संयम और तप में क्या भेद है?

दादाश्री : दोनों अलग ही हैं। संयम में तपना नहीं होता और तप

में तो तपना होता है। कोई कहेगा कि, खुराक में आपको संयम नहीं है। तब खुराक समानुपात लें तो संयम हो जाता है और तप में तो मन को तपाना पड़ता है, जलाकर तपाना पड़ता है और अपना तप तो अलग है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, वाला तप है। अपना तो, बाहर देह को अशाता होती है, उस घड़ी हमें तप करना पड़ता है। क्योंकि जब तक पूरण है, वह पूरण, गलन नहीं हो जाए, तब तक हमें तप करना पड़ेगा। शोर मचाएँ तो कुछ होगा? भीतर हृदय लाल हो जाए, चीख निकल जाए वैसा हो, वहाँ तप करना पड़ता है। तप अर्थात् क्या? अंतिम तप किसे कहते हैं? 'होम डिपार्टमेन्ट' और 'फ़ॉरेन डिपार्टमेन्ट' एकाकार नहीं हो जाएँ, वहाँ जागृति रहे, उसे तप कहा है भगवान ने!

पुरुषार्थ उल्टा करे तो उखड़ भी जाए। खुद 'होल एन्ड सोल' (पूर्ण रूप से) रिस्पोन्सिबल है, जिम्मेदार है। सीधा करना हो तो सीधा कर और उल्टा करना हो तो उल्टा कर। चिंता नहीं हो, वैसा यह ज्ञान है। चिंता से लोग सुलग जाते हैं। एक व्यक्ति मुझे ऐसे कह रहा था कि चिंता नहीं होगी तो मुझसे काम ही नहीं होगा। इसलिए मेरी चिंता रहने दीजिएगा। मैंने उसे कहा कि, 'बहुत अच्छा, तू हमारा ज्ञान ही मत लेना। सत्संग में ऐसे ही आना।' उसके मन में ऐसा कि चिंता हो तो ही यह काम होगा न, नहीं तो काम ही नहीं होगा न! वह जानता नहीं कि खुद करता है या कोई और करता है। उसे तो ऐसा ही मालूम है कि मैं करता हूँ यह सब!

'व्यवस्थित' की यथार्थ समझ

प्रश्नकर्ता : 'प्रारब्ध' और 'व्यवस्थित' उन दोनों में क्या संबंध है?

दादाश्री : ऐसे देखो तो कुछ भी फर्क नहीं है, पर लोगों ने प्रारब्ध का उल्टा अर्थ किया, इसलिए हमने दूसरी भाषा में बात समझाई। परन्तु प्रारब्ध की तुलना में 'व्यवस्थित' ऊँचा है।'व्यवस्थित' क्या कहता है कि तू तेरा काम करता जा, दूसरा सब फल वगैरह मेरी सत्ता में है। और प्रारब्ध कुछ ऐसा नहीं कहता, इसलिए 'व्यवस्थित', वह कम्पलीट वस्तु है। उस पर आधार रखकर चलो तो परेशानी नहीं आएगी। प्रारब्ध सच्ची बात थी,

लेकिन उल्टा ही आधार हो गया, वहाँ पर क्या हो?

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा लगता है कि प्रारब्ध शब्द है वह व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर है और 'व्यवस्थित' है वह समष्टि को लक्ष्य में रखकर है। यह ठीक है?

दादाश्री : नहीं, वैसा नहीं है, प्रारब्ध व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर है ही, पर 'व्यवस्थित' तो उससे आगे जाता है। प्रारब्ध पहले हो जाता है, उसके बाद फिर वह 'व्यवस्थित' होता है। 'व्यवस्थित' व्यष्टि-समष्टि सभी का स्पष्टीकरण देता है।

'व्यवस्थित' के ज्ञान में सारा ही स्पष्टीकरण मैंने दे दिया है। जगत् कैसा है? कौन चलाता है? किस तरह चलता है? सब बता दिया है। इसलिए बता दिया है कि आपको हितकारी हो, आपको शांति रहे, संकल्प-विकल्प नहीं हो। क्रमिक मार्ग में 'व्यवस्थित' समझ में नहीं आता। क्रमिक मार्ग ठेठ तक अहंकारी मार्ग है, इसलिए 'व्यवस्थित' कहा ही नहीं जा सकता। खुद कर्त्ता बने तो 'व्यवस्थित' को कर्त्ता एक्सेप्ट ही नहीं करेगा। उन्हें तो ऐसा ही है कि, 'मैं कर्त्ता हूँ।' तब कहें कि, 'आप कर्त्ता थे, तो फिर नुकसान किस तरह हुआ?' तब कहता है कि, 'भाई, प्रारब्ध के अधीन।' वे लोग प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों कहते हैं।

आपको ज्ञान मिले कितने वर्ष हुए?

प्रश्नकर्ता : तीन वर्ष।

दादाश्री : तो तीन वर्ष में आपको 'व्यवस्थित' में कोई भूल लगी है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ज़रा भी नहीं लगी।

दादाश्री : हरि में तो शंका पड़ती है कि हरि ने ऐसा किसलिए किया? हरि नाम का कोई है ही नहीं, वहाँ पर। यह तो आसरा है। संत पुरुषों का दिया हुआ शब्द, इन लोगों को आधार तो चाहिए न? यह तो अपना अक्रमविज्ञान है, इसलिए 'जैसा है वैसा' जगत् कह दिया कि इतना

अपने आप चल रहा है। इसलिए आपको परेशान होने जैसा है ही नहीं। ये बाल कैसे अपने आप उग रहे हैं! मूँछे उग रही है! तुझे जब फ्रेंचकट करवानी हो तब करवाना। शायद कभी कोई मूँछे मूंड दे तो तू घबराना मत। और उस मूँडनेवाले पर चिढ़ना मत। वे तो फिर से आ जाएँगी। मूँछे तो महीनेभर में फिर से उग जाएँगी। इसलिए चिढ़ने जैसा नहीं है। बेटा मर गया तो चिंता मत करना, 'व्यवस्थित' है। नुकसान हो जाए तो भी चिंता मत करना। फायदा हो तो तू उछलकूद मत करना। वह सारा 'व्यवस्थित' करता है। तू तो करता नहीं है। रात-दिन, संध्या-उषा, सब कैसे नियम में हैं, वैसे ही मन का भी 'व्यवस्थित' के ताबे में है। यह तो हमने सारा अनावृत कर दिया है। और इतना अनावृत करने के लिए ही बहुत लम्बे काल की हमारी खोज थी कि वास्तव में क्या है? प्रारब्ध कहें तो हम आराम से सो जाएँगे, परन्तु फिर पुरुषार्थ कहते हो, तो जल्दी उठें या सोते रहें? अर्थात् यह अद्बद मुझे पसंद नहीं था। तब क्या हक़ीक़त है? तब हमने कहा, 'व्यवस्थित'! यानी ऑल राइट!

यह 'व्यवस्थित' का ज्ञान देने के बाद व्यक्ति संपूर्ण ज्ञानी की तरह ही रह सके वैसा है। संकल्प-विकल्प खड़े ही नहीं होते। इन्कमटैक्सवाले की चिट्ठी आई कि आपको जुर्माना किया जाएगा तो हम तुरन्त ही समझ जाएँ कि 'व्यवस्थित' है। और 'व्यवस्थित' में होगा तो वह जुर्माना करेगा न? नहीं तो उसे संडास जाने की भी शक्ति नहीं है, तो वह और क्या करनेवाला है? जगत् में कोई कुछ कर सके, वैसा है ही नहीं। और अपना 'व्यवस्थित' होगा तो वह भी छोड़नेवाला नहीं है, तो किसलिए हम डरें? हमारा है वह हमें छोड़नेवाला नहीं है। उसमें साहब बेचारा क्या करे? साहब तो निमित्त हैं। और वह साहब के साथ बैर भी रखता है कि, सिर्फ यह साहब ही ऐसा है, वह कब से मेरे पीछे पड़ा है। अरे, साहब तेरे पीछे नहीं पड़ते, तेरा कर्म तेरे पीछे पड़ा है। यानी ये लोग बिना समझे बैर ही बाँधते हैं न बल्कि!

जब तक खुद कर्त्ता बनता है, तब तक 'कौन कर्त्ता है' वह समझ में नहीं आता। और कौन कर्त्ता है, वह समझ में आ जाए, तो खुद कर्त्ता

नहीं रहेगा। देखो, आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : क्रमिक मार्ग यानी अहंकार तो है ही और उसके साथ हरि की इच्छा, उन दोनों का मेल किस तरह हो? इसलिए महावीर भगवान ने कह दिया कि व्यवहार का तू कर्त्ता है। यदि तू अहंकारी है तो तू ही कर्त्ता है और यदि तू निर्‌अहंकारी है तो 'व्यवस्थित' कर्त्ता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि हरि को कर्त्ता कहें, तो खुद को अकर्त्ता समझकर नहीं रह सकते?

दादाश्री : नहीं, खुद कभी भी अकर्त्ता बनेगा किस तरह? अकर्त्ता बने तो त्याग किस तरह किया जाए? 'हरि इच्छा' तो खुद के मन के समाधान के लिए है कि यह प्याला गिर गया तो वह 'हरि इच्छा' के अधीन है, ऐसा कह देता है। बाकी हरि नाम का कोई है ही नहीं, वहाँ पर कैसी 'हरि इच्छा'? अपने काम में किसीको दख़ल करने का अधिकार क्या है? मेरे काम में भला हरि को किसलिए इच्छा करनी पड़े? वह क्या *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) है मेरा? पर देखो न, अभी तक यह पोलम्पोल चली ही है न? 'ज्ञानी पुरुष' तो किसीका अवलंबन नहीं लेते हैं। कुछ लोग उदयकर्मों का फल है कहते हैं। हमने तो, यह 'व्यवस्थित' इतना अच्छा दिया है कि आपको ज़रा भी मुश्किल नहीं पड़े। और 'व्यवस्थित' देखकर आपको दिया है। पूरा सौ प्रतिशत 'व्यवस्थित' है! नहीं तो आप उल्टे रस्ते चढ़ जाओगे। हम क्या कहते हैं कि, जगत् के संबंध में 'व्यवस्थित' है। तुझे मैंने जो दिया है, वह अब तेरा चलाता रहेगा। तू अब पुरुषार्थ धर्म में रह। तब कोई पूछे कि, साहब मेरा चलेगा या नहीं चलेगा? अरे, 'व्यवस्थित' है, इसलिए तू उस तरफ देखना मत। यह शरीर, मन, वचन सभी उसके बस में है। तू तो, शरीर जो करता है उसे देखता रह। ये चंदूभाई क्या करते हैं, उसे आप देखते रहो। और तू हमारी पाँच आज्ञा पालता रह। बोलो, इतना आसान, सरल प्रकार से दिया है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : इन पाँच आज्ञा में रहना, वह पुरुषार्थ कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, आज्ञा में रहना वही पुरुषार्थ है, वही धर्म और वही तप। आज्ञा में सभी आ गया। फिर और कुछ भी करना नहीं है। यदि ज्ञानी मिल जाएँ तो उनकी आज्ञा में ही रहना है।

भाग्य बड़ा या पुरुषार्थ?

प्रश्नकर्ता : भाग्य बड़ा या पुरुषार्थ बड़ा?

दादाश्री : भाग्य को और पुरुषार्थ को जो पहचाने 'वह' बड़ा! उसे लोग पहचानते नहीं हैं। आप किसे पुरुषार्थ समझते हो? आपको भाग्य का अनुभव हुआ है?

प्रश्नकर्ता : मैं तो, सबकुछ भाग्य से ही होता है, ऐसा मानता हूँ।

दादाश्री : पुरुषार्थ कहाँ देखा आपने?

प्रश्नकर्ता : रोज़ के रूटीन में होता है वह पुरुषार्थ है।

दादाश्री : प्रारब्ध कौन-सा?

प्रश्नकर्ता : चमत्कार जैसा हो, तब आपके दर्शन हुए उसे भाग्य मानता हूँ।

दादाश्री : और यहाँ आप आए वह पुरुषार्थ कहलाता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह पुरुषार्थ कहलाता है।

दादाश्री : यानी प्रारब्ध और पुरुषार्थ में भेद का ही लोगों को पता नहीं चलता। यह भ्रांति से ऐसा कहते हैं। भ्रांति एक दृष्टि है न?! उस भ्रांत दृष्टि से ऐसा दिखता है कि यह प्रारब्ध और यह पुरुषार्थ। वास्तव में पुरुषार्थ दिखता ही नहीं। यह जो दिखता है, वह सारा ही प्रारब्ध है। पुरुषार्थ तो होता रहता है, उसका खुद को पता भी नहीं चलता। यदि पुरुषार्थ दिखे, तब तो सभी उसे मोड़ दें।

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ किस तरह होता है?

दादाश्री : पुरुषार्थ अंदर हो रहा है, जिसे भावपुरुषार्थ कहते हैं। अब

भाव, लोग बोलते तो ज़रूर हैं, पर समझते नहीं हैं। द्रव्य सारा प्रारब्ध है और भाव पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : जो कर्म करते हैं, वह भाग्य से होता है या कर्म से भाग्य होता है?

दादाश्री : भाग्य से कर्म होता है, पर कर्म होता है उसमें भाव हो जाता है उसका पता नहीं चलता, वहाँ पर उस घड़ी अंदर सूक्ष्म रूप से पुरुषार्थ चलता ही रहता है। वे 'कॉज़ेज़' हैं और ये सब 'इफेक्ट्स' हैं। सभी इफेक्ट्स प्रारब्ध हैं। आप यहाँ आए - वह प्रारब्ध, यह पूछा - वह प्रारब्ध, यह सुन रहे हो - वह प्रारब्ध और पुरुषार्थ तो अंदर हो रहा है। इसलिए जन्म से मरण तक सबकुछ ही अनिवार्य है। जो अनिवार्य है, वह सब प्रारब्ध है। इसलिए शादी किए बगैर चारा नहीं है, विधवा-विधुर हुए बगैर चारा नहीं है, पढ़े बगैर चारा नहीं और नौकरी-व्यवसाय किए बगैर चारा नहीं है। कोई न्याय से व्यापार करे तो उल्टा चलता है और अन्याय से करे तो अच्छा चलता है, वह सारा ही प्रारब्ध है। स्थूल भाग सारा ही प्रारब्ध है और सूक्ष्म भाग है, वह पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : जो भाग्य होता है, वह बदलता रहता है या वैसे का वैसा ही रहता है? कर्म अच्छे हों तो भाग्य बदलता है क्या?

दादाश्री : अच्छे कर्म करने से जो दिखने में बदला हुआ लगता है कि ऐसा किया तो ऐसे बच गया, वह वास्तव में तो वैसा भाग्य में था इसलिए ही वैसा हुआ। यों ही नहीं। इसलिए यह सब प्रारब्ध ही है, वह बदलता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य ऊँचे कर्म करे तो भी उसे दु:ख हो, वह भुगतना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : ऊँचे कर्म हों तो भी दु:ख नहीं भोगे तो जाएँ कहाँ? दु:ख तो सभी भुगतने ही हैं। शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय दोनों होते हैं। बेटी की शादी करवाएँ तब शाता वेदनीय होती है, फिर शादी करने के बाद जमाई पैसे माँगने आए, उस घड़ी अशाता वेदनीय उत्पन्न होती है।

बाहर की शाता-अशाता 'व्यवस्थित' के अधीन है और अंदर की शाता रहे, वह पुरुषार्थ है।

क्रमिक मार्ग, भ्रांत पुरुषार्थाधीन

प्रारब्ध अर्थात् क्या? अपने हाथ की सत्ता नहीं है। वह परसत्ता है, फिर भी हम हमारी सत्ता मानें वह पुरुषार्थ है। मैंने ऐसा किया, वैसा किया, कर्त्ता नहीं है, फिर भी आरोपित भाव रखे, वह सारा पुरुषार्थ है, वह भ्रांत पुरुषार्थ कहलाता है। और 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ' ऐसा भान हुआ तब से भ्रांत पुरुषार्थ बंद हो जाता है और फिर मोक्ष का पुरुषार्थ शुरू होता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ' उस प्रकार का भाव आए, वह भी फिर भाग्य में हो तभी होता है न?

दादाश्री : वह भाग्य में हो तो ही होता है। फिर भी भाग्य का ही है, ऐसे बोलें तो नहीं चलेगा। आत्मा प्राप्त हो जाने के बाद यथार्थ पुरुषार्थ शुरू होता है। नहीं तो भ्रांत पुरुषार्थ तो है ही न! भ्रांति का भ्रांत पुरुषार्थ चल रहा होता है और ज्ञान का ज्ञान पुरुषार्थ चल रहा होता है। ज्ञान पुरुषार्थ मोक्ष में ले जाता है और भ्रांत पुरुषार्थ यहाँ संसार में भटकाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रयत्न, प्रारब्ध और पुरुषार्थ ये तीनों एक ही हैं?

दादाश्री : प्रारब्ध और प्रयत्न तो एक ही वस्तु है। दोनों एक ही माँ-बाप के बच्चे हैं। और खरा पुरुषार्थ तो किसे कहा जाएगा? मिलावट नहीं हो, उसे। वह बिना मिलावटवाला होता है। सच्चे पुरुषार्थ में किसीका अवलंबन नहीं चाहिए। वह तो जब भी करना हो तब हो सकता है। और संसार में कहे जानेवाला यह पुरुषार्थ तो, पैर अच्छे हों तो स्टेशन जाया जा सकता है। सिर भारी नहीं हो तो ठीक से बढ़ता है आगे, यानी पराधीन कहलाता है यह सब। सापेक्ष, अपेक्षावाला कहलाता है और पुरुषार्थ निरपेक्ष होता है। यदि यथार्थ पुरुषार्थ में आ गया, तब तो सभी बातों का हल आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : मैं क्रमिक मार्ग में था, आज अक्रम मार्ग की ओर मेरा

ध्यान मुड़ गया। तो वह मेरा पुरुषार्थ मानूँ या भाग्योदय मानूँ?

दादाश्री : वह आपके पुण्य का उदय कहलाएगा। भाग्य का उदय आपको यहाँ लेकर आया। फिर हमने आपको ज्ञान दिया। यानी आप पुरुष हुए और पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ शुरू हुआ। जब तक 'मैं कर रहा हूँ', तब तक पुरुषार्थ नहीं कहलाता। आत्मा का ज्ञान हुआ यानी आत्मा 'देखना-जानना' सीख गया। 'हम' 'ज्ञाता' और 'चंदूलाल' 'ज्ञेय', इतना जान लिया, तब से पुरुषार्थ शुरू हुआ!

आत्मा और प्रकृति दो ही हैं। प्रकृति पूरी प्रारब्धाधीन है। ये क्रियाएँ होने से भाव अपने आप कुदरती प्रकार से उत्पन्न होते हैं। ये भाव तो आनेवाले भव का पुरुषार्थ हैं। पर उसकी लोगों को खबर नहीं है कि इसे भ्रांत पुरुषार्थ कहा जाता है! अगले भव का जो चार्ज करता है वह भ्रांत पुरुषार्थ और दूसरा सब प्रारब्ध है। भाव तो होते ही हैं न? विवाह करना है, वह भाव तो करना पड़ता है न? पूर्वभव के भाव से अभी हमें इच्छाएँ होती हैं, अर्थात् भाव चार्ज किया था इसलिए यह आया। यानी भाव को पुरुषार्थ कहा और द्रव्य को प्रारब्ध कहा जाता है। परन्तु लोग तो उनकी भाषा में द्रव्य को ही पुरुषार्थ कहते हैं और वह भावपुरुषार्थ तो समझ में ही नहीं आता।

यहाँ अक्रम मार्ग में द्रव्य और भाव दोनों को डिस्चार्ज स्वरूप में रख दिया है। क्रमिक मार्ग भाव के अधीन है। अक्रम मार्ग में तो हम स्वभाव में आ गए, इसलिए बाक़ी सब परभाव हैं। हमने भाव को एक ओर रख दिया और द्रव्य का समभाव से *निकाल* करने को कहा है।

प्रश्नकर्ता : जब तक खुद को जाने नहीं, तब तक पुरुषार्थ किया कहा ही नहीं जाएगा?

दादाश्री : खरा पुरुषार्थ हुआ नहीं कहा जाएगा, पर भ्रांति का पुरुषार्थ तो होगा। यदि मन-वचन-काया की एकात्मवृत्ति हो, तब भ्रांति के पुरुषार्थ में से बीज पड़ता है। वह व्यवहार पुरुषार्थ कहलाता है। मन में जैसा हो, वैसा वाणी में बोले और वैसा ही वर्तन में रखे। और शुभ में पड़े तो व्यवहार पुरुषार्थ से फायदा होता है। और ऐसे करते-करते 'रियल' के लिए योग मिल जाता है। इसलिए शुभ की प्रशंसा की गई है। यह भ्रांत पुरुषार्थ एक प्रकार का पुरुषार्थ ही कहलाता है। इसे भ्रांत पुरुषार्थ किसलिए कहा जाता है, वह आपको समझाऊँ। क्रमिक मार्ग ऐसा है कि यदि उसे कहें कि तू जप करने बैठ जा, तो वह जप करने बैठता है। वह जाप प्रारब्ध से होता है, पर उस समय भीतर जो भाव करता है, उससे वापिस अगले जन्म का बीज डलता है, वह पुरुषार्थ कहलाता है। इसलिए प्रारब्ध भोगते समय भीतर पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। प्रारब्ध भोगते समय भीतर पुरुषार्थ का बीज डलता है। क्योंकि 'मैं कर्त्ता हूँ' यह भान है इसलिए। नहीं तो प्रारब्ध भोगते हुए बीज नहीं डलें और मोक्ष में जाए। परन्तु कर्त्ताभाव है, इसलिए प्रारब्ध पर, क्रियाओं पर बहुत ज़ोर देते थे। क्योंकि उनके साथ पुरुषार्थ अपने आप होता ही रहता है।

आज तो वह क्रमिक मार्ग फ्रेक्चर हो गया है। जप करने बैठा हो तो जप करता जाता है और मन में भाव करता जाता है कि, 'मेरे फादर नालायक हैं, मेरे फादर नालायक हैं... मुझे परेशान करते हैं। मेरा तेल निकाल देते हैं।' इसलिए मन में अलग, वाणी में अलग और वर्तन में अलग ही प्रकार का होता है। नहीं तो अभी तक क्रमिक मार्ग कैसा था कि प्रारब्ध भोगते हुए पुरुषार्थ करो। और अक्रम मार्ग यानी क्या? सीधा 'डायरेक्ट' पुरुषार्थ। 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से पुरुष होकर पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाता है। संपूर्ण जागृति में आ जाता है, एकदम उजाला हो जाता है! फिर एक सेकन्ड भी आपका 'स्वरूप' नहीं भूलते हो आप!

प्रारब्ध, किस तरह उदय में आता है?

प्रश्नकर्ता : पर पुरुषार्थ करें, तभी प्रारब्ध आएगा न?

दादाश्री : वह पुरुषार्थ नहीं है। वह नैमित्तिक प्रयत्न है। नैमित्तिक प्रयत्न आप करते जाओ।

प्रश्नकर्ता : वह प्रारब्ध का ही नैमित्तिक कर्म है?

दादाश्री : वह प्रारब्ध के आधार पर ही होनेवाला है। प्रारब्ध की

ही प्रेरणा से होनेवाला है।

प्रश्नकर्ता : प्रारब्ध अर्थात् क्या?

दादाश्री : प्रारब्ध यानी पिछले जन्म में भावकर्म बाँधा हुआ होता है। अब वह भावकर्म जाए 'कम्प्यूटर' के पास, यानी कि समष्टि में जाता है और समष्टि में फिर कुदरत उसे मिलती है, दूसरे सब कुदरती कारण भी मिल जाते हैं और यहाँ पर हमें रूपक के रूप में प्राप्त हो जाता है। 'व्यवस्थित' शक्ति हमें रूपक के रूप में देती है। फिर वह उठाए तो हमें उठना है और चलाए वैसे चलना है। खराब विचार भी उसके माध्यम से होते हैं। अच्छे विचार भी उसके माध्यम से होते हैं। यह बहुत सूक्ष्म बात है।

प्रश्नकर्ता : अभी जो प्रारब्ध है, वह अपने पूर्वभव के भावों का फल है?

दादाश्री : हाँ, वह पूर्वभव के भावों का फल है और अभी जो नये भाव उत्पन्न हो रहे हैं, वे अगले भव का कारण है।

प्रश्नकर्ता : नये भाव उत्पन्न होते हैं, वे इसी भव में फल नहीं देंगे?

दादाश्री : नहीं, कुछ नहीं फलेगा। नये भाव हैं, वे कॉज़ेज़ हैं और कॉज़ेज़ का अगले जन्म में इफेक्ट होता है। इसलिए 'कॉज़ेज़ और इफेक्ट, इफेक्ट और कॉज़ेज़' ऐसे चलता ही रहता है। अनंत जन्मों तक चलता ही रहता है! जब तक 'ज्ञानी पुरुष' कॉज़ेज़ बंद नहीं कर दें, भावकर्म का कर्त्ता बंद नहीं हो जाए, तब तक यह चक्र चलता ही रहता है!

सफल हो वह पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : दृढ़ पुरुषार्थ से प्रारब्ध को बदला जा सकता है?

दादाश्री : सिर्फ पुरुषार्थ ही हो तो उसे बदला जा सकता है, पर पुरुषार्थ किसे कहें, वह जानना पड़ेगा न? जाने बिना क्या काम होगा? इन नोटों में एक सच्चा हो और दूसरा बनावटी हो, उसमें सच्चे को हम पहचानें

नहीं और बनावटी लेकर जाएँ तो कौन पैसे देगा? पुरुषार्थ किसे कहते हो आप?

प्रश्नकर्ता : धर्म और मोक्ष के लिए जो क्रियाएँ करें, वह पुरुषार्थ!

दादाश्री : वह पुरुषार्थ नहीं कहलाता। वह तो हितकारी किया कहा जाता है। और उसके अलावा जो-जो करें, वह सारा अहितकारी। यह तो हितकारी और अहितकारी हुआ, पर पुरुषार्थ किसे कहते हैं? हम जो करें, वह सफल हो जाए, वह पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : कोई कहे कि हम श्रम करें तो ही प्रारब्ध मिलेगा और कोई कहे कि प्रारब्ध हो तो ही श्रम करने का मौका मिलेगा। इसमें सच्चा क्या है?

दादाश्री : इन आँखों से जो-जो दिखता है, कानों से जो-जो सुना जाता है, नाक में जो-जो सुगंध आती है, जीभ से जो-जो चखा जाता है, चमड़ी से जो-जो स्पर्श होता है, इन पाँच इन्द्रियों के ज्ञान से जो-जो अनुभव में आता है, वह सारा ही प्रारब्ध है। बोलो, अब ऐसी बात किस तरह समझें लोग?

प्रश्नकर्ता : तो पुरुषार्थ की ज़रूरत तो है ही न?

दादाश्री : वास्तव में यह सब प्रारब्ध ही है। सच्चा पुरुषार्थ लोगों को समझ में नहीं आया, इसलिए भ्रांत पुरुषार्थ ढूंढ निकाला। भ्रांत पुरुषार्थ यानी 'इल्युज़न' (भ्रांति) जैसा! पुरुषार्थ ढूंढी जा सके, वैसी वस्तु नहीं है। पुरुषार्थ यदि ढूंढा जा सके न तो कल सारे ही लोग पुरुषार्थ करके मोक्ष में चले जाएँ! पर ये तो प्रारब्ध को ही बदलते रहते हैं, इसलिए इनकी मेहनत बेकार जाती है। जब कि मैं वह आसानी से बता देता हूँ, इसलिए उनकी मेहनत फलती है। पुरुषार्थ तो वह कहलाता है कि जो सफल हो, नहीं तो अनंत जन्मों तक सिरफोड़ी करे तो भी कुछ होगा नहीं। क्योंकि अज्ञानी की सिरफोड़ी! अज्ञानी से अज्ञान कभी भी जाता नहीं है।

❖❖❖❖❖

(४)
श्रद्धा

अंधश्रद्धा-अज्ञश्रद्धा

एक बड़े फार्म सुप्रिन्टेन्डन्ट थे। वे मुझे कहते हैं कि हम अंधश्रद्धा नहीं रखते। उनकी यह बात हमने नोट कर ली। फिर हम साथ में फार्म में घूम रहे थे। बीच में पचास फुट का खेत आया। उसमें बहुत ऊँची घास थी। उसे पार करते समय वे भाई चार-चार फुट लम्बी छलाँग मारकर पार निकल गए। मैंने उन्हें पूछा, 'इस घास में साँप है या बिच्छू है, वैसा आप जानते नहीं थे तो किस आधार पर आप पैर रख रहे थे?' कैसी ज़बरदस्त अंधश्रद्धा है!

अंधश्रद्धा के बिना तो खाना भी नहीं खाया जा सकता, स्टीमर में बैठा नहीं जा सकता और टैक्सी में भी नहीं बैठा जा सकता। कौन-सी श्रद्धा से टैक्सी में बैठते हो? एक्सिडेन्ट नहीं होगा उसकी आपको श्रद्धा तो नहीं है! अरे, घर पर पानी पीते हो, तो उसमें छिपकली गिरी या कोई जीवजंतु गिरा या किसी पड़ोसी ने खटमल मारने की दवाई डाल दी है या नहीं, उसकी जाँच करते हो? यानी अंधे विश्वास के बिना तो घड़ीभर भी चले वैसा नहीं है।

आप जिसे अंधश्रद्धा कहते हो या समझते हो, वह अंधश्रद्धा नहीं है, अज्ञश्रद्धा है। पूरा जगत् अज्ञश्रद्धा में है। छोटा बच्चा गुड्डे-गुड़ियों से खेलता है, वह अज्ञश्रद्धा है, वैसे ही धर्म में भी अज्ञश्रद्धा होती है। सिर्फ स्वयं खुद 'ज्ञानी पुरुष' ही अंधश्रद्धा रहित होते हैं, फिर भी देह अंधश्रद्धा में होता है। अभी हम भी घर जाकर बिना जाँच किए पानी पीएँगे, पर हमें देह

का मालिकीभाव नहीं होता।

आत्मश्रद्धा-प्रभुश्रद्धा

प्रश्नकर्ता : आत्मश्रद्धा और प्रभुश्रद्धा, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रभुश्रद्धा में प्रभु अलग और मैं अलग, ऐसे जुदाई मानी जाती है और आत्मश्रद्धा तो खुद स्वयं आत्मा होकर आत्मा की भक्ति करना, वह। यह प्रत्यक्ष भक्ति और वह परोक्ष भक्ति कहलाती है। जिसे आत्मानुभव नहीं हुआ, वे जिन्हें प्रभु कहते हैं, वे ही उनका आत्मा हैं, परन्तु उसकी उसे खबर नहीं है। इसलिए प्रभु के नाम से आराधना करते हैं, परन्तु परोक्षरूप से उनके ही आत्मा को पहुँचता है।

श्रद्धा-ज्ञान

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा के बिना ज्ञान हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : यह अज्ञान भी श्रद्धा के बिना नहीं होता है। श्रद्धा, वह 'कॉज़ेज़' हैं और ज्ञान 'परिणाम' है।

यह स्वरूपज्ञान होने के बाद कैसा बन जाना चाहिए? श्रद्धा की प्रतिमा बन जाना चाहिए! देखते ही श्रद्धा आए। श्रद्धा की प्रतिमा कभी ही प्रकट होती है!

❖❖❖❖❖

(५)

अभिप्राय

अभिप्रायों का अँधापन

कोई तीनपत्तीवाला (ताश खेलनेवाला) यहाँ पर आया हो और आपका उस पर अभिप्राय बैठ गया हो कि 'यह तीनपत्तीवाला है' तो वह यहाँ पर बैठा हो, उतनी देर आपको अंदर खटकता रहेगा। दूसरे किसीको नहीं खटकेगा, उसका कारण क्या है?

प्रश्नकर्ता : दूसरे जानते नहीं कि 'यह तीनपत्तीवाला है', इसलिए।

दादाश्री : दूसरे जानते हैं, पर अभिप्राय नहीं बैठाते और आपको अभिप्राय बैठ गया है, इसलिए खटकता है। ये अभिप्राय आपको छोड़ देने चाहिए। ये अभिप्राय हमने ही बाँधे हैं, यानी यह हमारी ही भूल है, इसलिए ये खटकते हैं। सामनेवाला ऐसा नहीं कहता कि मेरे लिए अभिप्राय बाँधो। हमें खटके, वह तो हमारी ही भूल का परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : किसी वस्तु को जाने बिना उसके बारे में राय बना लेना, वह प्रेज्युडिस (पूर्वाग्रह) है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। ये भाई हमेशा दान देते हैं और आज भी वे दान देंगे, वैसा मान लेना, वह प्रेज्युडिस है। कोई व्यक्ति रोज़ आप पर कटाक्ष कर जाता हो और आज भोजन के लिए बुलाने आया हो तो उसे देखते ही विचार आता है कि यह कटाक्ष करेगा, वह प्रेज्युडिस। इस प्रेज्युडिस के कारण संसार खड़ा रहा है। पहले का जजमेन्ट छोड़ दो। वह तो बदलता ही रहता है। चोर अपने सामने चोरी करे तो भी उस पर पूर्वाग्रह

मत रखना, कल शायद वह साहूकार भी बन जाए। हमें एक क्षण के लिए भी पूर्वाग्रह नहीं होता।

अभिप्राय और इन्द्रियाँ

ये आम बहुत स्वादिष्ट हों, तो इन्द्रियाँ तो उन्हें एक्सेप्ट करेंगी ही। वे सामने आएँ तो झटपट खाने लगता है, पर खाने के बाद आम याद आते हैं, वह किसलिए? वह इसलिए कि उसने अभिप्राय बाँधे थे कि 'आम बहुत अच्छे हैं।' इन्द्रियाँ कुछ याद नहीं करतीं, वे तो बेचारी तो रखो, तब खा लेती हैं। हमारे अभिप्राय हमसे राग-द्वेष करवाते हैं। अभिप्राय छूटें तो सहज हो जाए।

अभिप्राय बंधा कि राग-द्वेष होते हैं। जहाँ अभिप्राय नहीं, वहाँ राग-द्वेष नहीं।

अभिप्राय में से अटकण

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय बंध गया और छूटे नहीं तो क्या होता है?

दादाश्री : जिस वस्तु पर ज़बरदस्त अभिप्राय बैठ जाए यानी उसे वहाँ *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) हो ही जाती है। अभिप्राय सब तरफ बँटे हुए हों तो निकालना आसान होता है, पर *अटकण* जैसा हो तो निकालना मुश्किल है। वह बहुत भारी रोग है। विषय राग-द्वेषवाले नहीं हैं, अभिप्राय की मान्यता ही राग-द्वेष है।

अभिप्राय किस तरह छूटें?

प्रश्नकर्ता : गाढ़ अभिप्राय निकालें किस तरह?

दादाश्री : जब से नक्की किया कि निकालने हैं, तब से वे निकलने लगते हैं। बहुत गाढ़ हों, उन्हें रोज़ दो-दो घंटे खोदें तो वे खत्म होंगे। आत्मा प्राप्त होने के बाद पुरुषार्थ धर्म प्राप्त हुआ कहलाता है और पुरुषार्थ धर्म पराक्रम तक पहुँच सकता है, जो कैसी भी *अटकण* को उखाड़कर फेंक सकता है। पर एकबार जानना पड़ेगा कि इस कारण से यह खड़ा

हुआ है, फिर उसके प्रतिक्रमण करने चाहिए।

घर में से सबके एक-दूसरे के लिए अभिप्राय निकल जाएँ तो कैसा स्वर्ग जैसा घर हो जाए!

प्रश्नकर्ता : हमें किसीके लिए कोई खास अभिप्राय हो कि इसकी प्रकृति ऐसी ही है, तब मन में ऐसा रहता है कि इसे कहूँगा नहीं तो ठिकाने नहीं रहेगा।

दादाश्री : जब तक भीतर अभिप्राय नहीं टूटेंगे कि सामनेवाले को डाँटे बिना चले वैसा नहीं है, तब तक किसीके साथ कुछ भी हुआ तो वह डाँटे बिना नहीं रहेगा, पिछले रिएक्शन तो आएँगे ही। हम नक्की करें कि अभिप्राय छोड़ना है, फिर भी थोड़े समय तक पिछले रिएक्शन रहेंगे। सामनेवाले को भी रहेंगे और हमें भी रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय बार-बार परेशान करते हैं।

दादाश्री : उन अभिप्रायों का अभिप्राय रखना ही नहीं चाहिए, वैसे उपाय करने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय कौन रखता है?

दादाश्री : यह आम यहाँ पर आया, तो हमारी प्रकृति के अनुसार इन्द्रियों को अच्छा लगता है। पर इन्द्रियों को ऐसा नहीं है कि इसके लिए अच्छा या बुरा अभिप्राय बाँधे, वह उसका स्वभाव नहीं है। लोकसंज्ञा इसमें बहुत काम करती है, लोगों का माना हुआ खुद बिलीफ़ में रखता है कि यह अच्छा है और यह खराब। फिर बुद्धि निश्चित करती है और काम करती है। ज्ञानी की संज्ञा से लोकसंज्ञा खत्म हो जाती है, तब उसमें से छूटा जाता है।

किसीके लिए थोड़ा भी उल्टा या सीधा विचार आए कि तुरन्त उसे धो डालना चाहिए। वह विचार यदि, थोड़े ही समय रहा न तो वह सामनेवाले को पहुँच जाता है और फिर पनपता है। चार घंटे में, बारह घंटे में या दो दिनों बाद भी उसमें पनपता है। इसलिए स्पंदन का प्रवाह उस

तरफ नहीं चले जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करके मिटा देना चाहिए तुरन्त ही। प्रतिक्रमण नहीं हो तो 'दादा' को याद करके या आपके इष्टदेव को याद करके संक्षिप्त में कह देना कि 'यह विचार आ रहा है वह ठीक नहीं है, वह मेरा नहीं है।'

सामनेवाले के प्रति अपना अभिप्राय टूटा या हम उसके साथ खुश होकर बातें करें तो वे भी खुश हो जाते हैं। बाक़ी उसे अभिप्राय सहित देखो, उसके दोष देखो, तो हमारे मन की छाया उसके मन पर पड़ती है। फिर वह आए तो भी हमें अच्छा नहीं लगता, उसका असर तुरन्त उसे भीतर होता है।

अभिप्राय बदलने के लिए क्या करना पड़ेगा? चोर हो तो मन में उसे 'साहूकार, साहूकार' कहना। 'ये अच्छे व्यक्ति हैं, शुद्धात्मा हैं, हमसे ही गलत अभिप्राय पड़ गया है।' इस तरह अंदर बदलते रहना।

वाणी कुछ बिगड़ गई है, वह अभिप्राय के कारण। उसके कारण *तंतीली* (विवादवाली, तीखी, चुभनेवाली) वाणी निकलती है। तंतीला बोलें, तब सामनेवाला भी तंत की शुरूआत करता है।

किसी पर शंका नहीं होनी चाहिए। शंका होना, अर्थात् वे सब अभिप्राय पड़े हुए हैं उसका परिणाम है।

देखो न आज के बच्चे इतने लम्बे बाल रखते हैं, वह किसलिए? उनके अभिप्राय में है कि यह अच्छा दिखता है और इन भाई को लम्बे बाल रखने को कहें तो? उन्हें वह खराब लगेगा। यह अभिप्रायों का ही साम्राज्य है। बुद्धि ने जिसमें सुख माना उसके अभिप्राय हैं। अभिप्राय बुद्धि के आशय के अधीन है।

कोई हमसे दग़ा कर गया हो, वह हमें याद नहीं रखना है। अभी वर्तमान में वह क्या कर रहा है, वह देख लेना चाहिए, नहीं तो प्रेज्युडिस

कहलाएगा। पिछला याद करने से बहुत नुकसान होता है।

प्रश्नकर्ता : पर ध्यान में तो रखना चाहिए न वह?

दादाश्री : वह तो अपने आप हो ही जाता है। ध्यान में रखें तो प्रेज्युडिस होता है। प्रेज्युडिस से तो फिर संसार बिगड़ता है। हमें वीतराग भाव से रहना है। पिछला लक्ष्य में रहेगा ही, पर वह कुछ हेल्पिंग चीज़ नहीं है। अपने कर्म के उदय वैसे थे, इसलिए उसने हमारे साथ वैसा वर्तन किया था। उदय अच्छे हैं तो ऊँचा वर्तन करेगा। इसलिए प्रेज्युडिस रखना मत। आपको क्या मालूम पड़े कि जो पहले ठगकर गया, वह आज नफा देने आया है या नहीं? और आपको उसके साथ व्यवहार करना हो तो करो और नहीं करना हो तो मत करना। परन्तु प्रेज्युडिस मत रखना। और शायद कभी व्यवहार करने का समय आए तब तो बिल्कुल प्रेज्युडिस मत रखना।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय वीतरागता तोड़ते हैं?

दादाश्री : हाँ। हमें अभिप्राय नहीं होने चाहिए। अभिप्राय अनात्म विभाग के हैं, वह आपको समझना है कि वे गलत हैं, नुकसानदायक है। खुद के दोष, खुद की भूलें, खुद के व्यू पोइन्ट्स से अभिप्राय बाँधते हैं। आपको अभिप्राय बाँधने का क्या राइट (अधिकार) है?

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय बंध जाएँ और वे मिटे नहीं, तो नया कर्म बंधता है?

दादाश्री : यह अक्रमविज्ञान प्राप्त हो गया हो और आत्मा-अनात्मा का भेदज्ञान हो गया हो, उसे नया कर्म नहीं बंधता। हाँ, अभिप्रायों का प्रतिक्रमण नहीं हो तो सामनेवाले पर उसका असर रहा करता है। इसलिए उसे आप पर भाव नहीं आता। शुद्ध भाव से रहे तो एक भी कर्म बंधेगा नहीं और यदि प्रतिक्रमण करो तो वह असर भी उड़ जाएगा। सात से गुणा किया उसे सात से भाग दे दिया, वही पुरुषार्थ।

जन्म से मृत्यु पर्यंत 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के

हाथ में है, तो अभिप्राय रखने की ज़रूरत ही कहाँ है? स्वरूपज्ञान मिलने के बाद ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध प्राप्त होने के बाद दो-पाँच अभिप्राय पड़े हों उन्हें निकाल दें, तो विद ऑनर्स पास हो जाएँ हम!

अभिप्राय के कारण जैसा है वैसा देखा नहीं जा सकता, मुक्त आनंद का अनुभव नहीं होता, क्योंकि अभिप्राय का आवरण है। अभिप्राय ही न रहें, तब निर्दोष हुआ जाता है। स्वरूपज्ञान के बाद अभिप्राय है तब तक आप मुक्त कहलाते हो, लेकिन महामुक्त नहीं कहलाते। अभिप्राय के कारण ही अनंत समाधि रुकी हुई है।

पहले जो कॉज़ेज़ थे, उनका अभी इफेक्ट आ रहा है। लेकिन उस इफेक्ट पर 'अच्छा है, बुरा है', ऐसा अभिप्राय देता है, उससे राग-द्वेष होते हैं। क्रिया से कॉज़ेज़ नहीं बंधते, पर अभिप्राय से कॉज़ेज़ बंधते हैं।

स्वागत योग्य अभिप्राय

चीज़ें भोगने में हर्ज नहीं है, लेकिन उन पर अभिप्राय नहीं रहना चाहिए। 'अब मुझे हर्ज नहीं' ऐसा अभिप्राय भी नहीं होना चाहिए। झूठ बोल लिया जाए उसमें हर्ज नहीं, पर अभिप्राय तो 'सत्य' बोलने का ही होना चाहिए।

अब्रह्मचर्य का हर्ज नहीं, पर उसका अभिप्राय नहीं होना चाहिए। अभिप्राय तो 'ब्रह्मचर्य' का ही होना चाहिए। अभिप्राय तो 'यह देह धोखा है' उसमें रखना है। किसी भी प्रकार का अभिप्राय बोझा बढ़ाता है। जिसका अभिप्राय, उसका बोझा!

हम सामनेवाले पर अभिप्राय रखें, इसीलिए वह हम पर रखता है। हम अपना अभिप्राय तोड़ दें तो उसका अभिप्राय अपने आप चला जाएगा।

अभिप्राय का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय अर्थात् प्रतिष्ठित अहंकार?

दादाश्री : हाँ। अभिप्राय अहंकार के परमाणुओं से बना हुआ है।

अभिप्राय व्यक्तित्व दिखाता है। अभिप्राय से दृष्टि ही बदल जाती है।

अभिप्राय मृतप्राय हों, बिना आग्रह के हों तो हर्ज नहीं, जल्दी खत्म हो जाते हैं। पर जो अभिप्राय आग्रहवाले हैं, वे ज्ञान पर आवरण लाते हैं।

मिश्रचेतन के प्रति अभिप्राय

जड़ वस्तु का अभिप्राय दो, उसमें इतना अधिक हर्ज नहीं है, उसे छोड़ते देर नहीं लगेगी। पर मिश्रचेतन के साथवाले अभिप्राय के सामने हम सचेत रहने को कहते हैं।

हर एक को अपनी-अपनी वाइफ के लिए अभिप्राय बैठ चुके होते हैं। इसलिए टकराव होता है।

'मैं चंदूलाल हूँ' वह अभिप्राय ही है न? आप हो, वैसा नहीं मानते हो और नहीं हो वैसा मानते हो।

घर के सारे ही लोगों के साथ गाढ़ अभिप्राय बंध गए होते हैं। इसलिए जिनके मुँह चढ़ें-उतरें, वैसे मिश्रचेतन के लिए अभिप्राय बाँधना ही नहीं। अभिप्राय ही अंतराय हैं। पाप जल सकते हैं, परन्तु अभिप्रायों के अंतराय तो खुद के लिए ही हानिकारक बन जाते हैं और जिनसे छूटना है, वहाँ पर ही अधिक गाँठें पड़ जाती है।

खुद के हावभाव खुद को ही कड़वे लगते हैं, पर वे *पुद्‌गल* के हैं। अपनी राज़ीखुशी से अभिप्रायों का माल भरा है। हर एक के खुद के अभिप्राय के अनुसार हावभाव होते हैं।

'शुद्धात्मा' तो है, परन्तु प्रतिष्ठित आत्मा का अभिप्राय खड़ा हुआ, इसलिए उसके अनुसार ही 'मशीनरी' चलेगी। 'शुद्धात्मा' के सिवाय दूसरा सबकुछ ही मशीनरी है।

❖❖❖❖❖

(६)

कुशलता का अँधापन

कुशलता, एक्सपर्ट होने से रोके

हमें लिखना-करना नहीं आता, पेन भी पकड़ना नहीं आता। हमें कुछ भी नहीं आता। संसार का कुछ भी नहीं आए, उनका नाम 'ज्ञानी'। हम अबुद्ध कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप अपने आप को अबुद्ध कहते हैं, पर प्रबुद्ध लगते हैं हमें।

दादाश्री : पर मैं तो हर एक बात का अनुभव करके कहता हूँ। आज सत्तर वर्ष की उम्र हुई, परन्तु अभी तक मुझे दाढ़ी बनानी नहीं आती। लोग मन में मानते हैं कि उन्हें दाढ़ी बनानी आती है, वह सब इगोइज़म है। कुछ ही, बहुत कम लोगों को दाढ़ी बनानी आती होगी। मुझे खुद को भी समझ में आता है, कि मुझे यह रेज़र किस तरह पकड़ना चाहिए, कितनी डिग्री से पकड़ना चाहिए, उसके बारे में कुछ मालूम नहीं है। उसके एक्सपर्ट हम नहीं हुए हैं। जब तक मैं एक्सपर्ट नहीं हुआ, तब तक हमें नहीं आता है ऐसा ही कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : एक्सपर्ट होने में आपको फायदा नहीं दिखा न?

दादाश्री : फायदे की बात नहीं, परन्तु 'जैसा है वैसा' मैं कह देता हूँ कि मुझे दाढ़ी बनानी नहीं आती। आपको लगे कि, ऐसा तो किस तरह हो सकता है? परन्तु आपको आता है वही गलत है। वह सिर्फ इगोइज़म है। कुछ को तो ब्लेड का उपयोग करना भी नहीं आता, ब्लेड काम में

आ चुकी या नहीं, वह भी नहीं जानते। यह तो सारा पोलम्पोल चलता रहता है!

प्रश्नकर्ता : एक्सपर्ट मतलब?

दादाश्री : मनुष्य एक्सपर्ट नहीं हो सकता। एक्सपर्ट, वह तो क़ुदरती बख़्शिश है। इस आत्मविज्ञान में मैं भी एक्सपर्ट हुआ हूँ, वह भी क़ुदरती बख़्शिश है। नहीं तो मनुष्य ज्ञानी किस तरह बन सकता है? इसलिए हम कहते हैं कि 'दिस इज़ बट नेचुरल।'

अरे, मुझे तो चलना भी नहीं आता। लोग कहें कि दादा बहुत अच्छा चलते हैं! पर मैं तो ज्ञानदृष्टि से देखता हूँ, इसलिए मुझे पता चलता है कि मुझे चलना भी नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : परन्तु हमें तो आपका सभीकुछ आदर्शरूप ही दिखता है।

दादाश्री : वैसा लगता है, पर मैं ज्ञानरूप से देखता हूँ, अंतिम स्थिति के चश्मे से देखता हूँ, इसलिए अंतिम लाइट से यह सब कच्चा लगता है।

कुछ लोग मुझे कहते हैं कि दादा, आपके साथ बैठकर हम भोजन करना सीख गए। अब मैं अपने आप को जानता हूँ न कि मुझे भोजन करना ही नहीं आता। भोजन करनेवाले का फोटो कैसा होना चाहिए, कैसा चारित्र होना चाहिए, वह हमें लक्ष्य में होता ही है। परन्तु वैसा किसे होता है? बख़्शिशवाले को होता है।

एक ओर अहंकार हो और एक ओर एक्सपर्ट होना, वे दोनों साथ में हो ही नहीं सकते। अहंकार ही एक्सपर्ट होने से रोकता है।

इसलिए हम अबुध हैं वह अनुभवपूर्वक कह रहे हैं, ऐसे ही नहीं कहते। फिर भी आपको प्रबुध दिखते हैं वह आपकी दृष्टि है। मेरी दृष्टि कहाँ होगी? वह आपको समझ में आया? हमारी चरम दृष्टि है।

व्यापार में भी मैं खुद को एक्सपर्ट मानता था। उसे भी यह ज्ञान

होने के बाद तटस्थ दृष्टि से देखा, लोगों को व्यापार करते हुए देखा तब मैं समझ गया कि यह तो कुछ आता ही नहीं। यह तो इगोइज़म ही है खाली। कुछ पाँच लोग मानें, स्वीकार करें, इसलिए क्या सारी कुशलता आ गई?

प्रश्नकर्ता : आपकी दृष्टि से अबुधता ठीक है, पर व्यवहारिक दृष्टि से?

दादाश्री : 'मैं बुद्ध हूँ' वह भान और यह ज्ञान वह दोनों साथ में रह ही नहीं सकते। हमारे पास ज्ञान का फुल प्रकाश है, इसलिए हमें बुद्धि की ज़रूरत ही नहीं न? बुद्धि इमोशनल करवाती है और ज्ञान मोशन (संतुलन) में रखता है।

हमें संसार विस्मृत हो चुका है। हमें हस्ताक्षर करना भी नहीं आता। पंद्रह-बीस वर्षों से कुछ लिखा ही नहीं इसलिए सब विस्मृत हो गया है। यह संसार अपने आप विस्मृत हो जाए, वैसा है। उसके लिए इतने सारे प्रयोग करने की ज़रूरत नहीं है। परिचय छूटा कि विस्मृत हो गया। यानी परिचय छूट जाना चाहिए। साधारण व्यवहार में हर्ज नहीं है, पर परिचय में हर्ज है।

सार का खाता

परभव से क्या-क्या साथ में लेकर आए हैं? चंदूभाई की ज़रूरत की सारी वस्तुएँ लेकर ही आए हो, मन की ज़रूरत की सारी वस्तुएँ लेकर आए हो, चित्त की ज़रूरत की सारी वस्तुएँ लेकर आए हो, बुद्धि की, अहंकार की ज़रूरत की सारी ही वस्तुएँ लेकर आए हो, अब वे ज़रूरत की वस्तुएँ कुदरत आपको सप्लाइ करती है और खुद कहता है कि मैं कर रहा हूँ। सब तैयार हो उसमें हमने क्या किया कहलाएगा? जो तैयार नहीं है उसके लिए करना, वह पुरुषार्थ कहलाता है।

यह सारा तो आप तैयार लेकर आए हुए हो : दुकान, ऑफिस, पत्नी, बच्चे सब तैयार सामान लेकर आए हुए हो। यह बहीखाते का हिसाब है।

आत्मा के पिता भी नहीं होते और पुत्र भी नहीं होते, बहीखाते के लेन-देन के हिसाब के लिए इकट्ठे होते हैं सभी। अब आगे क्या करना है, वह नहीं जानने से आज जोतते रहते हैं। अरे, यह तो जोता हुआ ही है, तैयार ही है। उसमें बहुत ध्यान रखने की ज़रूरत नहीं है। सहज चित्त रखना और दूसरा सब करना। जन्म से मृत्यु तक के सारे ही स्टेशन अनिवार्य रूप से लेकर आए हुए हो। खुद को अच्छा लगता है तब समझता है कि मेरी मर्ज़ी का है और पसंद नहीं हो, तब कहता है कि अनिवार्य है। वास्तव में तो सबकुछ ही अनिवार्य है। यह सब जानना पड़ेगा न? ऐसे कब तक गप्प चलने देंगे? कुछ सार तो निकालना चाहिए न? सार का खाता साथ में रखना चाहिए। सब्ज़ी लेने गए, वह तो अनिवार्य रूप से लानी चाहिए, परन्तु रास्ते में फलाने भाई ने जय-जय किया, उससे छाती ऐसे फूल जाती है! उससे नुकसान ही होता है न? इसलिए बही देखकर सार निकालना चाहिए कि कहाँ नुकसान हुआ? विवाह में गए और किसीने आइए सेठ कहा कि तुरन्त ही आप टाइट हो गए तो देखनेवाला समझ जाता है कि सेठ ने नुकसान उठाया। उसमें सामनेवाले का तो फर्ज़ है कि आपको 'आइए' कहे, परन्तु आपको वहाँ पर कच्चा नहीं पड़ जाना चाहिए। ऐसे पक्के हो जाओ कि कहीं भी नुकसान नहीं हो। एकबार नुकसान उठाया, दो बार उठाया, बीस बार नुकसान उठाया, पर अंत में आपको सार निकालना चाहिए कि ये जय-जय कह रहे हैं, वह मुझे कह रहे हैं या भीतरवाले को कह रहे हैं? 'भीतर' 'भगवान' बैठे हैं, वे 'शुद्धात्मा' हैं।

❖❖❖❖❖

(७)

अंतराय

अंतराय किस तरह पड़ते हैं?

प्रश्नकर्ता : संसार है ही ऐसी वस्तु कि वहाँ निरे अंतराय ही हैं।

दादाश्री : आप खुद परमात्मा हो, पर उस पद का लाभ नहीं मिलता, क्योंकि निरे अंतराय हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ' बोले कि अंतराय पड़ते हैं। क्योंकि भगवान कहते हैं कि, 'तू मुझे चंदू कहता है?' यह नासमझी से बोला तो भी अंतराय पड़ते हैं। अँगारों पर अनजाने में हाथ डालें तो वे छोड़ेंगे क्या?

भीतर परमात्मा बैठे हैं, अनंत शक्ति है भीतर, वह जितनी चाहिए उतनी मिले वैसा है। पर जितने अंतराय डाले उतनी शक्ति आवृत्त हो जाती है।

इच्छा करो, वहाँ अंतराय पड़ते हैं। जिस चीज़ की इच्छा होती है उसका अंतराय होता है। हवा की इच्छा होती है? इसलिए उसका अंतराय खड़ा नहीं होता। पर पानी की थोड़ी-थोड़ी इच्छा होती है उससे उसके अंतराय खड़े होते हैं।

ज्ञानी पुरुष को किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होती, इसलिए उनका निर्‌अंतराय पद होता है, हर एक वस्तु सहज ही आ मिलती है, 'ज्ञानी' को किसी चीज़ की भीख नहीं होती। भिखारीपन छूटे तो आप खुद ही परमात्मा हो। भिखारीपन से ही बंधन है।

खुद की वस्तुओं के लिए खुद ही अंतराय खड़े करता है। बुद्धि

के आशय में हो और अंतराय नहीं हो तो वह वस्तु बिना इच्छा के सामने आती है!

जगत् में सभी वस्तुएँ हैं, पर मिलती क्यों नहीं? तब कहे, 'अंतराय बाधा डालता है।'

प्रश्नकर्ता : ये अंतराय किस तरह डलते हैं?

दादाश्री : ये भाई नाश्ता दे रहे हों तो आप कहते हो कि, 'अब रहने दे न, बेकार बिगड़ेगा।' वह अंतराय डाला कहलाता है। कोई दान दे रहा हो वहाँ आप कहो कि, 'इसे कहाँ दे रहे हो? वे तो हड़प ले जाएँ वैसे हैं।' वह आपने दान का अंतराय डाला। फिर देनेवाला दे या नहीं दे वह चीज़ अलग रही, पर आपने अंतराय डाला। फिर आपको दुःख में भी कोई दाता नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : वाणी से अंतराय नहीं डाले हों, परन्तु मन से अंतराय डाले हों तो?

दादाश्री : वाणी से बोले हुए का इफेक्ट इस जन्म में आता है और मन से चित्रित किया हुआ दूसरे जन्म में रूपक में आएगा।

यानी ये सब खुद के ही डाले हुए अंतराय हैं, नहीं तो आत्मा के पास क्या चीज़ नहीं होती? जगत् की तमाम वस्तुएँ उसके लिए तैयार ही हैं। वे तो 'हम आएँ? हम आएँ?' ऐसा पूछते हैं। फिर भी अंतराय कहते हैं, 'नहीं। नहीं आना है।' अंतराय उस चीज़ को मिलने ही नहीं देते।

प्रश्नकर्ता : यानी खुद जागृति रखनी चाहिए कि उल्टा विचार नहीं आए।

दादाश्री : ऐसा नहीं होगा, विचार तो उल्टे-सीधे आए बगैर रहेंगे ही नहीं। हमें उन्हें मिटा देना है, वह अपना काम! आपको विचार आया कि, 'इसे नहीं देना चाहिए।' पर ज्ञान हाज़िर होता है कि यह बीच में कहाँ अंतराय डालना? इसलिए तुरन्त मिटा देना चाहिए। ज्ञान नहीं हो तो क्या करेंगे? हम कहें कि, 'ऐसा विचार किसलिए किया?' तो वह ऊपर से

कहेगा, 'करना ही चाहिए। आप इसमें क्या समझते हो?' वह उल्टा डबल कर देता है। पागल अहंकार क्या नहीं करे? खुद, खुद के ही पैर पर कुल्हाड़ी मारता है। अब हम इसे मिटा सकते हैं। मन में पश्चाताप करें, क्षमा माँगे और फिर निश्चित करें कि ऐसा नहीं बोलना चाहिए, तो मिटाया जा सकता है। पत्र पोस्ट में डालने से पहले बदला जा सकता है और यदि सोचे कि दान देना अच्छा है, तब पहले का कहा हुआ मिट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अच्छे कार्य का अनुमोदन करें तो?

दादाश्री : तो उस देनेवाले को लाभ होता है और खुद को भी लाभ होता है। हमने अनुमोदना नहीं की हो तो हमें अनुमोदना करनेवाला कोई नहीं मिलेगा। जब कि यह सब ज्ञानियों के लिए हेय (त्यागने योग्य) है। वह सब संसार बढ़ानेवाला है। फिर भी, जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं हो उसके लिए तो रमणीय संसार का साधन है।

इस संसार में अंतराय किस तरह पड़ते हैं, वह आपको समझाऊँ। आप जिस ऑफिस में नौकरी करते हों, वहाँ आपके आसिस्टिन्ट को बेअक्कल कहा कि उससे आपकी अक्कल पर अंतराय पड़ा! बोलो, अब पूरे जगत् ने इन अंतरायों में फँस-फँसकर, इस मनुष्य जन्म को यों ही खो डाला है! आपको राइट ही नहीं है, सामनेवाले को बेअक्कल कहने का। आप ऐसा बोलो तब सामनेवाला भी उल्टा बोलेगा, उससे उसे भी अंतराय पड़ेंगे! बोलो अब, इन अंतरायों में पड़ने से जगत् किस तरह रुके? किसीको आप नालायक कहो तो आपकी कुशलता पर अंतराय पड़ता है! आप उसके तुरन्त ही प्रतिक्रमण करो तो वह अंतराय पड़ने से पहले धुल जाएगा।

इलायची महँगी, लौंग महँगे, सुपारी महँगी, इसलिए लोग खाते नहीं हैं। वह खाने को नहीं मिलता है, वह अंतराय पड़े हुए हैं इसलिए। घर में सात व्यक्ति श्रीखंड खा रहे हों और एक व्यक्ति बाजरे की रोटी और छाछ खाता है, डॉक्टर ने कहा होता है कि श्रीखंड खाओगे तो मर जाओगे! वह अंतराय किसलिए पड़ता है? खाना सामने आया तब हमने उसका तिरस्कार किया होगा, इसलिए।

मोक्षमार्ग में अंतराय

मोक्षमार्ग में तो अंतराय आएँ तब खुद की शक्तियाँ अधिक प्रकट होती जाती हैं। इसलिए इसमें अंतराय आएँ तो भी हमें हमारा निश्चय दृढ़ रखना है कि 'किसीकी ताकत नहीं कि मुझे रोक सके', वैसा भाव रखना है। मुँह पर नहीं बोलना है, बोलना तो अहंकार है।

खुद का अनिश्चय ही अंतराय है। निश्चय करें तो अंतराय टूट जाते हैं। आत्मा का निश्चय हो जाए तब सारे अंतराय टूट ही जाते हैं न!

संसारी बुद्धि के अंतरायों का बहुत हर्ज नहीं है, पर धार्मिक बुद्धि के अंतराय अनंत जन्मों तक भटका देते हैं। उसमें भी 'रिलेटिव' धर्म के अंतराय कई साधु, साध्वी, आचार्य महाराजों के टूटे हुए होते हैं, तब 'रियल' धर्म, आत्मधर्म के अंतराय बहुत डले हुए होते हैं।

अब धर्म में अंतराय किसलिए पड़ते हैं? 'मैं कुछ जानता हूँ' वह सबसे बड़ा अंतराय है। धर्म में जाना कब कहा जाता है? कभी भी ठोकर नहीं लगे, आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं हो, थोड़ा-सा भी रौद्रध्यान का परिणाम तक खड़ा नहीं हो, वैसे संयोग भी नहीं मिलें, उसे 'जान लिया' कहा जाता है। इसलिए भगवान ने क्या कहा है, जब तक आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता है, तब तक 'मैं कुछ भी नहीं जानता, 'ज्ञानी पुरुष' जानते हैं', ऐसे बोलना। तब तक सिर पर जिम्मेदारी मत लेना। बहुत जोखिम है। दूसरे स्टेशन पर उतर जाओगे। भगवान ने सबसे बड़ा अंतराय ज्ञानांतराय को कहा है। लक्ष्मी के और दान के अंतराय टूटते हैं, पर ज्ञान के अंतराय जल्दी नहीं टूटते।

ज्ञानांतराय-दर्शनांतराय किससे?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानांतराय, दर्शनांतराय किससे पड़ते हैं?

दादाश्री : धर्म में उल्टा-सीधा बोले, 'आप कुछ भी नहीं समझते और मैं ही समझता हूँ', उससे ज्ञानांतराय और दर्शनांतराय पड़ते हैं। या फिर कोई आत्मज्ञान प्राप्त कर रहा हो, उसमें रुकावट डाले तो उसे ज्ञान का

अंतराय पड़ता है। कोई कहे कि, ''ज्ञानी पुरुष' आए हैं, चलो आना हो तो।' तब आप कहो कि, 'अब ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' तो बहुत देखे हैं।' यह अंतराय डला! अब मनुष्य है, इसलिए बोले बगैर तो रहता ही नहीं न! आपसे नहीं जाया जाए ऐसा हो, तब आपको मन में भाव हो कि, 'ज्ञानी पुरुष' आए हैं पर मुझसे नहीं जाया जा सकता', तो अंतराय टूटेंगे। अंतराय डालनेवाला खुद नासमझी से अंतराय डालता है, उसकी उसे खबर नहीं है।

प्रत्येक शब्द बोलना जोखिम से भरा हुआ है, वह बोलना नहीं आए तो मौन रहना अच्छा। उसमें भी धर्म में बहुत जोखिम है, व्यवहार के जोखिम तो उड़ जाएँगे।

ये भजन गाने क्यों नहीं आते हैं? 'हमें तो आएगा ही नहीं।' ऐसे करके अंतराय खड़े किए हैं। 'हमें तो आएगा ही।' वैसा बोले तो अंतराय टूटें। सीखने जाना ही नहीं पड़ता, सब सीखकर ही आया हुआ है।

प्रश्नकर्ता : 'मुझे भजन गाना आता है' बोले तो आ जाता है?

दादाश्री : नहीं। 'आता है' वैसा नहीं। 'क्यों नहीं आएगा?' वैसा मन में दृढ़ रहना चाहिए।

कुछ कहते हैं, 'ऐसा अक्रम ज्ञान तो कहीं होता होगा? घंटेभर में मोक्ष तो होता होगा?' ऐसा बोले कि उन्हें अंतराय पड़े। इस जगत् में क्या नहीं हो सकता, वह कहा नहीं जा सकता। इसलिए यह जगत् बुद्धि से नापने जैसा नहीं है। क्योंकि यह हुआ है, वह हक़ीक़त है। 'आत्मविज्ञान' के लिए तो खास अंतराय डले हुए होते हैं। यह सबसे अंतिम स्टेशन है।

परोक्ष के लिए जिनके अंतराय टूट गए हों, उन्हें प्रत्यक्ष के अंतराय होते ही हैं। इसलिए उन्हें परोक्ष ही मिलते हैं। और प्रत्यक्ष के अंतराय तो बहुत बड़े-बड़े डले हुए होते हैं। वे टूटें तब तो अनंत जन्मों के नुकसान की भरपाई हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानांतराय और दर्शनांतराय किस तरह टूटते हैं?

दादाश्री : वे अंतराय ज्ञानीपुरुष तोड़ देते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' अज्ञान तोड़ देते हैं और अंतराय भी निकाल देते हैं। परन्तु कुछ अंतराय तो 'ज्ञानी पुरुष' भी नहीं तोड़ सकते।

प्रश्नकर्ता : वे कौन-से अंतराय हैं?

दादाश्री : जहाँ विनयधर्म खंडित हो रहा हो वह। विनय तो मोक्षमार्ग में मुख्य वस्तु है। 'ज्ञानी पुरुष' के लिए एक भी उल्टा विचार नहीं आना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यहाँ आने का भाव रहा करता है, परन्तु *पुद्गल*-माया नहीं आने देती तो क्या करें?

दादाश्री : वही अंतराय कर्म है। हमारे भाव दृढ़ होंगे तो एक दिन वह पूरा होगा। अंतरायकर्म अचेतन है और हम लोगों के भाव चेतन को पाए हुए हैं, उससे अतंराय टूटते हैं। और 'ज्ञानीपुरुष' के पास से 'विधि' में माँगते रहना चाहिए कि हमारे अंतराय तोड़ दीजिए तो वे तोड़ देंगे। ज्ञानी का वचनबल आपके अंतराय तोड़ देगा। अंदर खेद रहे कि सत्संग में नहीं जाया जा सकता, उससे अंतराय टूटते हैं।

प्रश्नकर्ता : अंतराय अपने आप टूटते हैं या पुरुषार्थ से टूटते हैं?

दादाश्री : वे भाव से टूटते हैं। जब अंतराय टूटने का काल आए, तब भाव होता है।

जिसे 'यह' ज्ञान मिल जाए न उसके तो सारे अंतराय टूट जाते हैं। क्योंकि अंतराय अहंकार के कारण डलते हैं कि 'मैं कुछ हूँ'। अंतराय कर्म टूटें तो घड़ीभर की भी देर नहीं लगती। आत्मा में और मोक्ष में कितनी दूरी है? कुछ भी नहीं। बीच में अंतराय पड़े हुए हैं, उतना ही दूर है!

आत्मा प्राप्त करने के बाद अंतराय संयोग स्वरूपी हैं और संयोग वियोगी स्वभाव के हैं और 'हम' 'शुद्धात्मा' असंयोगी, अवियोगी हैं।

❖❖❖❖❖

(८)
तिरस्कार-तरछोड़

जिसका तिरस्कार, उससे ही भय

जिसका तिरस्कार करोगे, उससे भय लगेगा। इस पुलिसवाले से किसलिए भय लगता है? उसके प्रति तिरस्कार है इसलिए। आप जिसका तिरस्कार करोगे, उसके प्रति आपमें भय घुस जाएगा। रात को मच्छर पर तिरस्कार हो गया तो पूरी रात सोने नहीं देगा।

कोर्ट का तिरस्कार हो, वकील का तिरस्कार हो, तो कोर्ट के अंदर प्रवेश करते ही भय लगता है।

कोई जान-पहचानवाला हो उससे क्यों भय नहीं लगता? क्योंकि उस पर तिरस्कार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पहले तिरस्कार होता है या पहले भय होता है?

दादाश्री : पहले तिरस्कार होता है। पहले भय नहीं होता। वह किस तरह? सुना हो कि यह पुलिसवाला बहुत खराब है, वह ज्ञान हुआ हो, इसलिए उस ज्ञान के आधार पर पहले तिरस्कार हो जाता है और तिरस्कार से भय उत्पन्न होता है। फिर वह भय बढ़ता जाता है और पुलिसवाले को देखे और अकुलाहट हो जाती है। पुलिसवाला आपके पास सिर्फ एड्रेस ही पूछने आया हो, तो भी!

प्रश्नकर्ता : तिरस्कार से भय लगता है तो राग से क्या होता है?

दादाश्री : मूर्च्छा होती है, बेसुधी होती है। ये दोनों जाएँ तब वीतराग होता है।

तरछोड़, कितना जोखिमवाला?

प्रश्नकर्ता : तिरस्कार और *तरछोड़*, इन दोनों में क्या फ़र्क है?

दादाश्री : तिरस्कार तो शायद कभी पता भी नहीं चले। तिरस्कार बिल्कुल 'माइल्ड' (हल्की-फुल्की) वस्तु है, परन्तु *तरछोड़* तो बहुत उग्र स्वरूप है, तुरन्त खून निकलता है, इस देह में से खून नहीं निकलता, मन में से खून निकलता है।

प्रश्नकर्ता : तिरस्कार और *तरछोड़* के फल कैसे होते हैं?

दादाश्री : तिरस्कार का फल इतना बड़ा नहीं आता, परन्तु *तरछोड़* का बहुत बड़ा आता है। *तरछोड़* तमाम प्रकार के अंतराय डालता है। इसलिए वस्तुएँ हमें प्राप्त नहीं होने देता, बिल्कुल परेशान करके रख देता है। *तरछोड़* क्या नहीं करता? *तरछोड़* से तो सारा जगत् खड़ा रहा है। इसलिए हम एक ही वस्तु कहते हैं कि 'बैर छोड़ो, *तरछोड़* नहीं लगे वैसे चलो।'

तरछोड़ के लिए हमारा चित्त बहुत जागृत रहता है। देर रात को रास्ते पर से जाना हो, तब हम जागृत होते हैं कि जिससे हमारे जूतों की आवाज़ से कुत्ता नहीं जाग जाए। उसके अंदर भी आत्मा है न? कोई हमें प्रेम से पोइज़न दे, तो भी हम उसे *तरछोड़* नहीं मारेंगे!

वीतराग मार्ग में तो किसीका भी विरोध या *तरछोड़* नहीं होता। चोर, डाकू या बदमाश, वीतराग किसीके भी विराधक नहीं होते। उन्हें ऐसा कहें 'तू गलत धंधा लेकर बैठा है' तो उसे *तरछोड़* लगेगी और *तरछोड़* लगे वहाँ भगवान को नहीं देख सकते। भगवान तो इतना ही कहते हैं कि, 'उसे भी तू तत्त्वदृष्टि से देख। अवस्था दृष्टि से देखेगा तो तेरा ही बिगड़नेवाला है।' हम कीचड़ में पत्थर डालें तो? कीचड़ का क्या बिगड़नेवाला है? कीचड़ तो बिगड़ा हुआ ही है, छींटें हम पर ही उड़ेंगे। इसलिए वीतराग तो बहुत समझदार थे। जीव-मात्र को *तरछोड़* नहीं लगे वैसे निकल जाते थे।

तरछोड़ सभी दरवाज़े बंद कर देती है। जिसे हम *तरछोड़* मारें, वह कभी भी दरवाज़ा खोलेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तिरस्कार और *तरछोड़* हैं, वे जीवन व्यवहार में हर पल अनुभव में आते हैं।

दादाश्री : हाँ, हर एक को यही हो रहा है न? जगत् में दुःख ही उसके हैं। उल्टी वाणी तो ऐसी निकलती है, 'अकाल पड़े' ऐसा बोलता है!

प्रश्नकर्ता : उल्टी वाणी के तो आजकल राजा होते हैं।

दादाश्री : हमें पिछले जन्मों का दिखता है, तब आश्चर्य होता है कि ओहोहो! *तरछोड़* का कितना अधिक नुकसान है! इसलिए मज़दूरों को भी *तरछोड़* नहीं लगे, उस प्रकार आचरण करते हैं। अंत में साँप होकर भी काटते हैं, *तरछोड़* बदला लिए बगैर रहता नहीं है।

बाहर के घाव तो भर जाएँगे, परन्तु वाणी के घाव तो पूरी ज़िन्दगी नहीं भरते। अरे, कुछ घाव तो सौ-सौ जन्मों तक नहीं भरते हैं!

तरछोड़ का उपाय क्या?

प्रश्नकर्ता : क्या उपाय करूँ कि जिससे *तरछोड़* के परिणाम भुगतने की बारी नहीं आए?

दादाश्री : उसके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है, सिर्फ प्रतिक्रमण ही करते रहना है। जब तक सामनेवाले का मन वापस नहीं पलटे, तब तक करना। और प्रत्यक्ष मिल जाएँ, तो फिर वापस मीठा-मीठा बोलकर क्षमा माँग लेना कि, 'भाई, मेरी तो बहुत भूल हो गई, मैं तो मूरख हूँ, बेअक़्ल हूँ।' इससे सामनेवाले के घाव भरते जाएँगे। हम अपने आप को बुरा-भला कहें तो सामनेवाले को अच्छा लगता है। तब उसके घाव भर जाते हैं।

संसार में सुखी होने की इच्छा हो तो किसीको *तरछोड़* मत मारना।

तरछोड़ किसे मारते हो? भगवान को ही। क्योंकि हर एक के भीतर भगवान बैठे हुए हैं। मनुष्य को गाली नहीं पहुँचती, भगवान को पहुँचती है। संसार के सभी परिणाम भगवान स्वीकार करते हैं, इसलिए वे परिणाम ऐसे लाना कि भगवान स्वीकार करें तो वहाँ अपना खराब नहीं दिखे, एक जीव को भी *तरछोड़* मारकर कोई मोक्ष में नहीं जा सकता।

❖❖❖❖❖

(९)
व्यक्तित्व सौरभ

वीतरागता से बरतते हैं 'ये' 'ज्ञानी'

प्रश्नकर्ता : आपको सबसे अधिक प्रिय वस्तु कौन-सी है?

दादाश्री : मुझे आत्मा के सिवाय कोई वस्तु प्रिय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आध्यात्मिकता के बारे में आपके अनुभव, विचार बताइए।

दादाश्री : मैं मन-वचन-काया से बिल्कुल जुदा रहता हूँ, बिल्कुल निराला रहता हूँ। फिर भी केवलज्ञान नहीं हुआ है, काल के आधार पर वह चार डिग्री पचा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : संसार से आप किस प्रकार अलिप्त रह सकते हैं?

दादाश्री : संपूर्ण वीतरागता से। व्यवसाय-व्यापार करते हैं, इन्कमटैक्स-सेल्सटैक्स सभी भरते हैं, संसार की सेंकड़ों तलवारों के नीचे भी वीतरागता में रहते हैं। हाथ काट डालें, तो भी वीतरागता रहती है।

प्रश्नकर्ता : इतना होने के उपरांत भी आपको व्यापार का महत्व लगता है?

दादाश्री : हमें किसी चीज़ का महत्व नहीं होता, फिर भी करना पड़ता है। पुलिसवाला पकड़कर ले जाए और करवाए और वह करना पड़े, उसके जैसा है।

प्रश्नकर्ता : व्यापार में फायदा हो तो?

दादाश्री : वैसी कोई वृत्ति ही नहीं है। फायदे का विचार ही नहीं आया, सब सहज रूप से होता है। किसी भी प्रकार की इच्छा ही नहीं है, यह निरीच्छक दशा हुई है!

प्रश्नकर्ता : आपकी ऐसी दशा कब से हुई है?

दादाश्री : वैसे तो सारा जीवन धर्मध्यान में ही गया है, पर १९५८ में ज्ञान प्रकट हुआ!

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान आपको प्रकट हुआ तो उसके पीछे आपने कितनी साधना की थी?

दादाश्री : 'यह' तो अनंत अवतारों की साधना का फल है, फिर भी इस अवतार में भी साधना थी। इसके उपरांत, माता के संस्कार बहुत उत्तम मिले हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने व्रत, नियम, उपवास किए थे?

दादाश्री : हमसे सौगंध खाने जितना भी उपवास नहीं हुआ है। हाँ, पूरी ज़िन्दगी हमेशा उणोदरी तप किया है। *चोविहार* (सूर्यास्त से पहले भोजन करना), उबला हुआ पानी, कंदमूल निषेध वगैरह बहुत ही स्ट्रिकली किए हैं।

१९५८ का वह अद्भुत दर्शन

प्रश्नकर्ता : आपको १९५८ में सूरत में जो दर्शन हुआ, वह कैसा हुआ था?

दादाश्री : इस देह में से मानों कि अलग हो गए हों, वैसा लगा।

प्रश्नकर्ता : वह मुक्तता कैसी लगी थी?

दादाश्री : एब्सोल्यूट मुक्त ही, वह दशा अलग ही थी! उसका वर्णन हो सके वैसा नहीं है!

प्रश्नकर्ता : वह मोमेन्ट (क्षण) था, उससे पहले आपको कुछ लगा

था कि कुछ होनेवाला है?

दादाश्री : शांति बहुत रहा करती थी। पर वह अहंकार सहितवाली शांति कहलाती है, वह काम की नहीं है। वह तो अज्ञानी को भी रह सकती है।

प्रश्नकर्ता : उस समय स्टेशन पर आपका आनंद अनोखा था?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा-परमानंद, सारे गुण सहित अलग हो गया था। देह में नहीं, वचन में नहीं, मन में नहीं, उस तरह अलग हो गया था, उस स्थिति को 'ज्ञान प्राप्त हो गया' कहा जाता है। ज्ञान ही आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : आपको ज्ञान प्रकट होने के बाद ज्ञानप्रकाश उतना ही रहता है या बढ़ता रहता है?

दादाश्री : हमें तो यह 'अनुभवज्ञान' है। उसमें दो प्रकार का प्रकाश नहीं होता है। निरंतर एक ही प्रकार का प्रकाश रहता है, हमें आत्मा का स्पष्ट अनुभव है। जब तक आत्मा का स्पष्ट अनुभव नहीं हो जाता, तब तक ज्ञान बढ़ता रहता है। परन्तु स्पष्ट अनुभव हो जाए, तब वह ज्ञान पूरा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आध्यात्मिक स्टडी करनेवाला पूर्णता तक पहुँचा, उसका किस तरह पता चले?

दादाश्री : उनकी वाणी वीतराग होती है, बातें वीतराग होती हैं, वर्तन वीतराग होता है। उनकी हरएक बाबत में उनकी वीतरागता होती है। कोई गाली दे तो भी वीतरागता और फूल चढ़ाएँ तो भी वीतरागता होती है। उनकी वाणी स्यादवाद होती है यानि कि किसी धर्म का, किसी जीव का प्रमाण नहीं *दुभता* (आहत होता)।

ज्ञान का तरीका नहीं होता

प्रश्नकर्ता : आप मुक्ति में विचरते हैं, परन्तु वह सिद्धि किस तरह प्राप्त हुई?

दादाश्री : आपकी ही तरह मुझे बहुत लोग पूछते हैं, तब मुझे कहना पड़ता है कि, 'आपको नकल करनी है? नकल करोगे तो आपकी मेहनत बेकार जाएगी।' 'दिस इज़ बट नेचुरल।' और वह भी सूरत स्टेशन की बेंच पर बैठा हुआ था, तब अत्यंत भीड़ में यह ज्ञान प्रकट हुआ!

प्रश्नकर्ता : आपको 'बट नेचुरल' ज्ञान हुआ वह क्या है? उसे समझाइए।

दादाश्री : 'बट नेचुरल' ज्ञान किसीको ही होता है। कोई कहेगा कि, 'मैंने अपने आप किया है।' तो वह ज्ञान अधूरा रहता है। यह तो 'नेचुरली' अपने आप हुआ है। यदि किया होता, तो ८० प्रतिशत विकल्प कम हुआ होता, तो २० प्रतिशत बाकी रहता। यह तो १०० प्रतिशत निर्विकल्प है, यह वीतराग विज्ञान है।

'ज्ञानी', मोक्ष का प्रमाण देते हैं

प्रश्नकर्ता : आपका नित्यक्रम क्या है?

दादाश्री : मैं मेरे मोक्ष में ही निरंतर रहता हूँ, अभी भी मैं मेरे मोक्ष में ही हूँ। यह वाणी निकल रही है, वह टेपरिकॉर्ड निकल रहा है, उसका मालिक मैं नहीं हूँ। यह वाणी 'सही है या गलत' उसे मैं देखता रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : आपके भीतर की 'टेप' नहीं बोले, तब वह 'ब्लेन्क' निकल जाती है क्या?

दादाश्री : सुनाई दे वैसी टेप भी चलती रहती है और सूक्ष्म वाणी की टेप भी चलती रहती है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' परमाणु बदल सकते हैं? या फिर उनकी उपस्थिति से वे बदलते हैं?

दादाश्री : दूध में दही डालने के बाद ज्ञानी कुछ भी नहीं कर सकते। दही डालने से पहले कहें तो होगा, बाद में कुछ नहीं होगा। 'ज्ञानी' कर्म भस्मीभूत कर सकते हैं, सिर्फ वही एक उनकी सत्ता है। कुछ भागों के रंग बदल सकते हैं, वह हम कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : दूध में दही डाला, वह किसे कहा जाता है?

दादाश्री : जो जम गया है, बर्फ के रूप में हो चुके हैं, उन कर्मों को तो भोगना ही पड़ेगा। भाप और पानी के रूप में हों, उन्हें 'ज्ञानी' भस्मीभूत कर देते हैं। फिर भी खुद तो नैमित्तिक भाव में ही होते हैं, अकर्त्ता ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष अर्थात् क्या?

दादाश्री : मोक्ष अर्थात् सर्व दुःखों से मुक्ति और सनातन परमानंद रहे। मोक्ष अर्थात् मुक्तभाव।

प्रश्नकर्ता : बंधन किससे है?

दादाश्री : अज्ञान से।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष, वह स्थल है या अवस्था है?

दादाश्री : वह अवस्था है और वह यह 'अवस्था' नहीं है, वह स्वाभाविक अवस्था है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष अर्थात् स्वतंत्रता?

दादाश्री : हाँ, सच्ची आज़ादी-कोई *ऊपरी* नहीं और कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : वैसी मुक्त स्थिति संसार में उपलब्ध है?

दादाश्री : क्यों नहीं? यह मैं प्राप्त करके बैठा ही हूँ न! संसार में रहकर उपलब्ध हो सकता है, उसके प्रमाण के रूप में मैं हूँ। मुझे देखकर आपको एन्करेजमेन्ट मिलता है कि संसार में भी उपलब्ध हो सके ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : दर्शन और ज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : दर्शन ही मोक्ष में जाने का मुख्य साधन है। ज्ञान तो दर्शन के विशेष भाव से है। और ज्ञान-दर्शन मिल जाएँ, तब चारित्र उत्पन्न होता है। ज्ञान किसे कहते हैं? दर्शन द्वारा जो जाना, समझा, वह अंदर फिट हो जाए, फिर वह दूसरों को समझाए, वैसी दशा उत्पन्न हो, तब वह ज्ञान कहलाता है। वास्तव में तो दर्शन ही काम करता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और शुद्धात्मा के बीच कोई संबंध है?

दादाश्री : शुद्धात्मा खुद ही ज्ञानस्वरूप है। खुद संपूर्ण ज्ञानस्वरूप हो जाए तब परमात्मस्वरूप कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा क्रिया नहीं करता तो कर्म कौन बाँधता है?

दादाश्री : अहंकार जो यह बोलता है कि, 'मैंने यह किया' वही कर्म बाँधता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञायक और जिज्ञासु, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। उनकी तो तुलना ही नहीं हो सकती। ज्ञायक तो खुद परमात्मा हुआ और जिज्ञासु को तो गुरु बनाने पड़ेंगे, ढूंढते रहना पड़ेगा। जिज्ञासा उत्पन्न हुई है यानी पुरुषार्थी हुआ कहलाएगा, पर यह ज्ञायक तो खुद ही भगवान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : मुमुक्षु और जिज्ञासु में क्या फर्क है?

दादाश्री : मुमुक्षु अर्थात् केवल मोक्ष की इच्छावाला और जिज्ञासु अर्थात् जिसे अभी तक सुख की वांछना है और वह जहाँ से मिले वहाँ से लेने जाता है।

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मांड के अंदर और ब्रह्मांड के बाहर से देखना मतलब क्या?

दादाश्री : ज्ञेयों में तन्मयाकार हो जाए, तब ब्रह्मांड में कहलाता है। और ज्ञेयों को ज्ञेय के रूप में देखे, तब ब्रह्मांड से बाहर कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : एब्सोल्यूट विज्ञान अर्थात् क्या?

दादाश्री : अज्ञान से बिल्कुल निर्लेप विज्ञान, वह एब्सोल्यूट विज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा शब्द अनादिकाल से है?

दादाश्री : हाँ, अनादि काल से है। अनादि काल से ज्ञान और ज्ञान का तरीका एक ही है।

निमित्त की महत्ता

प्रश्नकर्ता : आत्मा को पहचानने के लिए निमित्त की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : निमित्त के बिना तो कुछ नहीं होता है। किसीको ही वह अपवादरूप में होता है, उसे स्वयंबुद्ध कहा जाता है। स्वयंबुद्ध को भी पिछले अवतारों में ज्ञानी मिले हों, तब होता है। निमित्त के बिना तो कुछ भी नहीं होता। उपादान भी जागृत चाहिए और निमित्त भी चाहिए।

'उपादान का नाम लेकर जो तजे निमित्त,

पाए नहीं सिद्धत्व को रहे भ्रांति में स्थित।' - श्रीमद् राजचंद्र।

यानी पहले निमित्त चाहिए। उपादान अजागृत हो तो भी ज्ञान उसे ऊँचा ले आएगा, पर निमित्त के बिना कुछ भी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : वैसा सौ प्रतिशत निश्चित रखे कि निमित्त से आत्मानुभव नहीं होता है, तो?

दादाश्री : तो आत्मानुभव कभी भी नहीं होगा। लाखों मन उपादान जागृत रखे, पर निमित्त नहीं मिले तो वह कभी भी नहीं होता। निमित्त की ही क़ीमत है सारी।

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा निश्चित रखें कि निमित्त से ही आत्मानुभव होता है?

दादाश्री : ऐसा है न, उपादान जागृति तो सभी को रखनी ही चाहिए,

वह तो बहुत लोगों के पास है। परन्तु निमित्त के बिना क्या करें? दूसरा कोई उपाय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : निमित्त पुण्य से मिलते हैं या पुरुषार्थ से?

दादाश्री : पुण्य से। वर्ना, पुरुषार्थ करे और इस उपाश्रय से उस उपाश्रय की ओर दौड़े, ऐसे अनंत जन्मों तक भटकता रहे तो भी निमित्त प्राप्त नहीं होंगे और हमारे पुण्य हों तो रास्ते में ही मिल जाते हैं। उसमें पुण्यानुबंधी पुण्य चाहिए।

पुण्य का संबंध कब तक?

प्रश्नकर्ता : आत्मा का पुण्य से कोई संबंध है?

दादाश्री : कोई संबंध नहीं है। पर जब तक बिलीफ़ ऐसी है कि 'यह मैं कर रहा हूँ', तब तक संबंध है। जब 'मैं नहीं करता' वह राइट बिलीफ़ बैठ जाए, उसके बाद आत्मा का और पुण्य का कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पुण्य की वृद्धि हो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : सारे दिन लोगों पर उपकार करते रहना। इन मनोयोग, वाणीयोग और देहयोग का उपयोग लोगों के लिए करना, वह पुण्य कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दूसरे का भला करने जाएँ, पर खुद का बिगड़ जाए तो?

दादाश्री : खुद का उसमें नहीं बिगड़ेगा, उसकी हम गारन्टी देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अभी का यह काल ऐसा है कि माला फेरें, जप करें, तप करें, भक्ति करें, चाहे जो करे, फिर भी शांति नहीं रहती, वह क्या है?

दादाश्री : उसका अर्थ यही है कि ठीक रास्ता नहीं मिला है, इसलिए रास्ता बदलो।

धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : धर्मध्यान किसे कहते हैं?

दादाश्री : कोई गालियाँ दे और क्रोध हो जाए, वह रौद्रध्यान है। अब कोई गालियाँ दे, तब इतना ज्ञान हाज़िर हो जाए कि यह गालियाँ देनेवाला निमित्त है और यह मेरे ही कर्म के उदय का फल आया है, इसलिए इसमें कोई गुनहगार है ही नहीं। ऐसा समझ में आए और खुद को क्रोध नहीं आए तब धर्मध्यान होता है। आैर्तध्यान और रौद्रध्यान को बदलना, वह धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान

प्रश्नकर्ता : शुक्लध्यान अर्थात् क्या?

दादाश्री : शुक्लध्यान अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वैसा निरंतर ध्यान रहे, वह। वह टुकड़ों में नहीं होना चाहिए, निरंतर होना चाहिए। शुक्लध्यान यानी शाश्वत वस्तु का ध्यान उत्पन्न होना, वह और धर्मध्यान, वह अवस्था का, अशाश्वत वस्तु का ध्यान उत्पन्न होना, वह है।

मन और आत्मा

प्रश्नकर्ता : मन और आत्मा में क्या फर्क है?

दादाश्री : मन तो अज्ञान परिणाम से खड़े हुए स्पंदनों की गाँठें हैं, वे फूटें तब विचार स्वरूप होता है। मन तो स्थूल है, निश्चेतन चेतन है और आत्मा तो चैतन्य परमात्मा है।

प्रेम और भक्ति

प्रश्नकर्ता : प्रेम और भक्ति, उन दोनों में से उत्तम कौन-सा है?

दादाश्री : भगवान के प्रति प्रेम न? यह संसारी प्रेम नहीं है न? भगवान के प्रति प्रेम हो तो ही भक्ति उत्पन्न होगी, नहीं तो नहीं होगी। बिना प्रेम की भक्ति, वह भक्ति ही नहीं मानी जाएगी।

प्रश्नकर्ता : प्रेमलक्षणा भक्ति किसे कहते हैं?

दादाश्री : भगवान के साथ का प्रेम, वही खरी प्रेमलक्षणा भक्ति है। पूरा दिन भगवान भुलाए नहीं जाएँ। रुपये गिनते समय भी याद रहा करें, वह भगवत् प्रेम। अभी तक तो लक्ष्मी के लिए प्रेम अधिक है। बेटी की शादी करवाते समय भगवान विस्मृत हो जाते हैं, वह मोह है, मूर्छा है। प्रेमलक्षणा भक्ति तो बहुत उच्च भक्ति है। उसमें तो भगवान खुद हाज़िर होते हैं।

निर्दोष दृष्टि, वहाँ जग निर्दोष

प्रश्नकर्ता : निर्दोषता किस तरह प्राप्त होती है?

दादाश्री : पूरे जगत् को निर्दोष देखोगे तब। मैंने पूरे जगत् को निर्दोष देखा है, तब मैं निर्दोष हुआ हूँ। हित करनेवाले को और अहित करनेवाले को भी हम निर्दोष देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'रिलेटिव' तो दिखने में दोषित ही दिखता है न?

दादाश्री : दोषित कब माना जाता है? उसका शुद्धात्मा वैसा करता हो, तब। लेकिन शुद्धात्मा तो अकर्त्ता है। वह कुछ भी कर सके ऐसा नहीं है। यह तो डिस्चार्ज हो रहा है, उसमें तू उसे दोषित मान रहा है। दोष दिखें, उसका प्रतिक्रमण करना। जब तक जगत् में कोई भी जीव दोषित दिखता है, तब तक समझना कि अंदर शुद्धिकरण नहीं हुआ है, तब तक इन्द्रियज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : कड़वाहट एक प्रकार का अहंकार कहलाता है?

दादाश्री : कड़वाहट, मिठास, वे दोनों कर्म के फल हैं और वे कर्म के फल, जब तक अहंकार हो तब तक ही होते हैं। अच्छा करने का अहंकार किया तो मिठास आती है, बुरा करने का अहंकार किया तो कड़वाहट आती है।

प्रश्नकर्ता : इस जगत् में कौन उलझाता है?

दादाश्री : अज्ञान।

प्रश्नकर्ता : क्षमा माँगनेवाला बड़ा या क्षमा देनेवाला बड़ा?

दादाश्री : क्षमा तो घोड़ागाड़ीवाला, टैक्सीवाला या मटकीवाला भी माँगने आ सकता है। पर किसीको क्षमा नहीं दी होती है। इसलिए खरी क़ीमत क्षमा करे उसकी है। क्षमा देना बहुत मुश्किल है। हमारी सहज क्षमा होती है। आपकी भूल हो जाए तो अपने आप क्षमा दे दी जाती है, आप माँगो या नहीं माँगो तो भी।

कर्त्ता हुआ तो बीज पड़ेंगे

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति सोचता है कि मारना है और दूसरा मारता है, तो उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : सोचता है वह गुनहगार है और जो मार डालता है वह दुनिया का गुनहगार है। जिसे इस जन्म में मार डाला, वह पिछले जन्म का गुनहगार है, उसका तो इस जन्म में *निकाल* हो जाएगा। जेल में जाएगा, लोग टीका-निंदा करेंगे। उसका हल हो जाएगा, लेकिन बाद में बीज नहीं डला होगा तभी।

प्रश्नकर्ता : बीज का कोई क्रम है? ऐसी कोई समझ है कि यह बीज डलेगा और यह नहीं डलेगा?

दादाश्री : हाँ। आप कहो कि, 'यह नाश्ता कितना अच्छा बना है और मैंने खाया' तो बीज पड़ा। 'मैंने खाया' वह बोलने में हर्ज नहीं है। कौन खाता है, वह आपको जानना चाहिए कि 'मैं नहीं खाता हूँ, खानेवाला खाता है।' यानी कर्त्ता बनो तो ही बीज पड़ेगा।

आत्मज्ञान मिला या प्रकट हुआ?

प्रश्नकर्ता : 'आपकी दशा प्राप्त करनी' और 'मोक्ष प्राप्त करना', इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : कुछ भी फर्क नहीं है। हमारा तो मोक्ष हो ही गया है।

मेरी दशा तू प्राप्त करे तो तेरा भी मोक्ष हो ही जाएगा। मोक्ष बाहर नहीं ढूंढना है, भीतर ही है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि आप अपने आप को पहचानो तो अपने आप को पहचानने के लिए क्या करें?

दादाश्री : वह तो मेरे पास आओ। आप कह दो कि हमें अपने आप को पहचानना है, तब मैं आपकी पहचान करवा दूँ।

प्रश्नकर्ता : आपके पास से ज्ञान मिला, वही आत्मज्ञान है न?

दादाश्री : जो मिला वह आत्मज्ञान नहीं है, भीतर प्रकट हुआ वह आत्मज्ञान है। हम बुलवाते हैं और आप बोलो तो उसके साथ ही पाप भस्मीभूत होते हैं और भीतर ज्ञान प्रकट हो जाता है। वह आपके भीतर प्रकट हो गया है न?

महात्मा : हाँ, हो गया है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' की कृपा प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : 'ज्ञानी' की आज्ञाएँ पाले, तब ज्ञानी को खुद को ही पता चल जाता है, ज्ञानी को और कुछ भी नहीं चाहिए। जिस गाँव जाना हो, उस गाँव के नियम में हों तो राज़ी रहते हैं, दूसरा कुछ नहीं।

...तब वाणी विज्ञान कह जाती है

प्रश्नकर्ता : आपकी साधना की लिंक कब से चल रही है?

दादाश्री : कितने ही काल से हर एक की लिंकबद्ध टोलियाँ होती ही हैं। ये तो सब लिंक ही हैं। १९५८ में उस दिन यह ज्ञान हुआ था। फिर बाद में यह ज्ञान प्रकट होना चाहिए, इसे प्रकट होने के लिए लिंक मिलती ही रहती है। हमें तीन सौ छप्पन डिग्री का ज्ञान हुआ है, पर वह निकला नहीं है, उससे नीचे का निकलता है। और जिस दिन तीन सौ छप्पन डिग्री तक का निकलेगा, तब तो गज़ब हो जाएगा इस काल का!

प्रश्नकर्ता : तीन सौ छप्पन डिग्री का निकलवाने के लिए किन्हीं पात्र जीवों की ज़रूरत पड़ेगी?

दादाश्री : हाँ, वैसे पात्र की ज़रूरत पड़ेगी। वह आया कि निकलेगा ही एकदम से। यानी जैसे-जैसे पात्र आएँगे, वैसे-वैसे उच्च ज्ञान निकलता जाएगा। उसे प्रकट करना हमारे हाथ में नहीं है। यह तो रिकॉर्ड है। फिर पात्र भी मिलेंगे और रिकॉर्ड भी बोलेगी।

...वह कैसा अद्‌भुत सुख

प्रश्नकर्ता : आपको ज्ञान हुआ तब पता चल गया था कि यह मुझे ज्ञान हुआ?

दादाश्री : अरे, पता क्या? उस घड़ी सिद्धगति में बैठा होऊँ वैसा अपार सुख बरता, तब फिर उसका पता कैसे नहीं चलता! बैंच पर बैठा था तो भी सिद्धगति का सुख बरत रहा था! मेरे साथ में सेवा में बैठे थे, उनका तो यों ही मोक्ष हो गया! यह अक्रम तो ग़ज़ब का निकला है!!!

'ज्ञानी' विकसित करें स्व-शक्ति

प्रश्नकर्ता : आपके चरणों में विधि करते हैं, उसका क्या अर्थ है?

दादाश्री : यह चरणविधि अंदर आत्मा को देह से अलग करती है और अंतरसुख, स्वयंसुख उत्पन्न होता है, सारी निर्बलताएँ चली जाती हैं। ज्ञानी के चरणों में ग़ज़ब की शक्ति होती हैं!

'ज्ञानी' की उपमा?

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' की उपमा नहीं होती?

दादाश्री : उनकी उपमा नहीं है। 'ज्ञानी' कौन? सभी लोग ज्ञानी नहीं कहलाते। जिन्हें देह का मालिकीपन ज़रा भी नहीं, वाणी का, मन का मालिकीपन नहीं है, जो खुद आत्मा में ही निरंतर रहते हैं, जिनमें किंचित् मात्र अहंकार नहीं होता, वे 'ज्ञानी'।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' में नम्रता की पराकाष्ठा होती है?

दादाश्री : नम्रता तो सामान्य मनुष्य में भी होती है, पर 'ज्ञानी' को तो अहंकार ही नहीं होता। गालियाँ दें तो भी अहंकार नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' निस्पृही होते हैं?

दादाश्री : 'ज्ञानी' निस्पृही नहीं होते। निस्पृही तो बहुत लोग होते हैं। 'हमें कुछ नहीं चाहिए', ऐसा बहुत लोग कहते हैं, पर वे निस्पृहता का अहंकार है। 'ज्ञानी पुरुष' सस्पृह-निस्पृह होते हैं। यानी भौतिक सुखों में निस्पृह और आपके आत्मा के लिए सस्पृह।

प्रश्नकर्ता : स्पृहा यानी इच्छा?

दादाश्री : स्पृहा यानी एक ही प्रकार की इच्छा नहीं, अनेकों प्रकार की, तरह-तरह के विनाशी सुख भोगने की इच्छाएँ होती हैं, उसे स्पृहा कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : आप भविष्य बता सकते हैं?

दादाश्री : हम ऐसा नहीं कहते, परन्तु आप यदि दुःख में हों, तो आपको संपूर्ण चिंता रहित कर सकते हैं।

'ज्ञानी' की परख

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' को पहचानें किस तरह?

दादाश्री : उन्हें छेड़ो और फुफकारें नहीं तो समझना कि सच्चे ज्ञानी हैं। परीक्षा तो करनी पड़ेगी न? बापजी में क्रोध-मान-माया-लोभ दिखें तो तुरन्त ही दुकान बदल लेना।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की परीक्षा करें, उसमें अविनय होता है, उन्हें बुरा लगता है और खरे 'ज्ञानी' हों तो दोष भी लगते हैं न?

दादाश्री : यदि खरे ज्ञानी मिले हों तो फिर वे तो आपका कल्याण ही करेंगे, अनुचित हो जाए तो भी कल्याण ही करेंगे। और जो क्रोध से

भर जाएँ, फन फैलाएँ, तो आप उनसे माफी माँगकर, पाँच-पचास के चश्मे देकर खुश कर देना चाहिए। ऐसा करने पर भी शांत नहीं हों तो उनसे कहो कि, 'बापजी, मेरा दिमाग ज़रा चक्रम है। अभी ही घर पर पत्नी के साथ लड़कर आया हूँ', ताकि वे खुश हो जाएँ। कब तक अपना टाइम वहाँ बिगाड़ें?

आप्तवाणी-कैसी क्रियाकारी

प्रश्नकर्ता : आपकी आप्तवाणी पढ़ते हुए परिणाम इतना अच्छा आता है कि पढ़ते ही रहें।

दादाश्री : यह 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी है और फिर ताज़ी है। अभी के पर्याय हैं, इसलिए उसे पढ़ते ही अपने सारे पर्याय बदलते जाते हैं, वैसे-वैसे आनंद उत्पन्न होता जाता है। ऐसे करते हुए यों ही समकित हो जाए किसीको! क्योंकि यह वीतरागी वाणी है। राग-द्वेष रहित वाणी हो तो काम होता है, नहीं तो काम नहीं होता। भगवान की वाणी वीतराग थी, उसका असर आज तक चल रहा है। २५०० वर्ष हो चुके हैं, तो भी उसका असर होता है, तो 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी का भी असर होता है, दो-चार पीढ़ी तक तो होता ही है।

वीतराग वाणी के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है, मोक्ष में जाने के लिए।

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी के दोनों भाग मैंने पढ़े हैं। उसमें कहीं भी किसीका खंडन या टीका नहीं है, पूरी पुस्तक में!

दादाश्री : ऐसा है न, कि समकिती जीव किसीका भी विरोध नहीं करते। उनमें खंडन-मंडन नहीं होता। किसलिए खंडन-मंडन? किसलिए विरोध? विरोध तो एक प्रकार का अहंकार है, वह पागल अहंकार कहलाता है।

धर्म तो वह कहलाता है कि विखवाद नहीं हो, अमृतवाद हो वह धर्म, विख अर्थात् विष।

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी पढ़ते-पढ़ते 'दादा' दिखते हैं!

दादाश्री : हाँ.... 'दादा' दिखते हैं। एक्ज़ेक्ट 'दादा' दिखते हैं। जहाँ इच्छा करे, वहाँ 'दादा' दिखे वैसे हैं और अपना फल मिले वैसा है। ये 'दादा' नहीं हैं, ये दिखते हैं वे तो भादरण के पटेल हैं। ये बोलते हैं वे भी दादा नहीं है, वह तो टेपरिकॉर्ड बोलता है। 'दादा' तो 'दादा' हैं! जो वीतराग हैं, चौदह लोक के नाथ हैं!! जिन्हें 'हम' भी भजते हैं। जो भीतर वीतराग बैठे हैं, वे 'दादा' हैं। ये तो भीतर प्रकट हो गए हैं! कितने ही लोगों का कल्याण हो जाएगा। हाथ से स्पर्श करेगा उसका भी कल्याण हो जाएगा! यह 'अक्रम विज्ञान' है। अभी क्रमिक चले वैसा नहीं है।

❖❖❖❖❖

(१०)
अक्रम मार्ग

'ज्ञानी' कृपा से ही 'प्राप्ति'

प्रश्नकर्ता : आपने जो अक्रम मार्ग कहा, वह आपके जैसे 'ज्ञानी' के लिए ठीक है, सरल है। पर हमारे जैसे सामान्य, संसार में रहनेवाले, काम करनेवाले लोगों के लिए वह मुश्किल है। तो उसके लिए क्या उपाय है?

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' के वहाँ भगवान प्रकट हो चुके होते हैं, चौदह लोक के नाथ प्रकट हो चुके होते हैं, वैसे 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो क्या बाकी रहेगा? आपकी शक्ति से नहीं करना है। उनकी कृपा से होता है। कृपा से सबकुछ ही बदल जाता है। इसलिए यहाँ तो जो आप माँगो वह सारा ही हिसाब पूरा होता है। आपको कुछ भी नहीं करना है। आपको तो 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा में ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु खुद के आत्मा का उद्धार खुद के आत्मा को ही करना है न?

दादाश्री : ठीक है, पर वह बात 'क्रमिक मार्ग' की है। यह तो 'अक्रम विज्ञान' है। यानी प्रत्यक्ष भगवान के पास से काम निकाल लेना है और वह आपको प्रतिक्षण रहता है, घंटे-दो घंटे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : यानी उन्हें सब सौंप दिया हो, तो वे ही सब करते हैं?

दादाश्री : वे ही सब करेंगे, आपको कुछ भी नहीं करना है। करने से तो कर्म बंधेगे। आपको तो सिर्फ लिफ्ट में बैठना है। लिफ्ट में पाँच

आज्ञाएँ पालनी हैं। लिफ्ट में बैठने के बाद भीतर उछलकूद मत करना, हाथ बाहर मत निकालना, इतना ही आपको करना है। कभी ही ऐसा मार्ग निकलता है, वह पुण्यशालियों के लिए ही है। यह तो अपवाद मार्ग है। दस लाख वर्षों में एकबार अपवाद मार्ग निकलता है! वर्ल्ड का यह ग्यारहवाँ आश्चर्य कहलाता है! अपवाद में जिसे टिकिट मिल गई, उसका काम हो गया।

...अपूर्व और अविरोधाभास

प्रश्नकर्ता : इस 'अक्रम' द्वारा मोक्ष देने की बात है, वह आपने शुरू की है या पहले कुछ था ऐसा?

दादाश्री : हर बार दस लाख वर्षों में आता है। यह बिल्कुल नया नहीं है, पर नया इसलिए दिखता है कि दस लाख वर्षों से किसी पुस्तक में नहीं होता है, इसलिए अपूर्व कहलाता है। पढ़ा नहीं हो, सुना नहीं हो, जाना नहीं हो, वैसा यह अपूर्व!

प्रश्नकर्ता : आप ज्ञान देते हैं, उसके पीछे कोई वैज्ञानिक भूमिका हो तो वैसी कोई बात कीजिए न!

दादाश्री : यह पूरा विज्ञान ही है, अविरोधाभासी विज्ञान है। और विज्ञान की भूमिका क्या है? आपके सर्व पाप भस्मीभूत कर डालता है। उसके बिना तो आप साक्षात्कार प्राप्त ही नहीं कर सकते और साक्षात्कार प्राप्त किए बिना मोक्ष में नहीं जा सकते और वह साक्षात्कार योग निरंतर रहना चाहिए। एक क्षण भी साक्षात्कार योग नहीं बदले, अपने आप ही रहा करे, आपको याद नहीं करना पड़े।

आत्मा जानने के लिए, अरे आत्मा जानने की बात तो कहाँ गई पर आत्मा कुछ श्रद्धा में आए कि 'मैं आत्मा हूँ' वैसी प्रतीति बैठे उसके लिए भयंकर प्रयत्न लोगों ने किए हैं। पर वह श्रद्धा बैठनी मुश्किल हो जाती है, ऐसा विचित्र काल है। अब ऐसे काल में आत्मा का अनुभव 'ज्ञानी पुरुष' के पास से हो जाना, वे ही इस अक्रम ज्ञान की सिद्धियाँ हैं। सभी देवी-देवताओं की जो 'ज्ञानी पुरुष' पर कृपा बरसती है, पूरा ब्रह्मांड जिन पर

खुश है, उससे यह सब प्राप्त होता है।

अक्रम में पात्रता

प्रश्नकर्ता : उपादान की योग्यता के बिना, पात्रता के बिना निमित्त उपकार कर सकता है? यदि कर सकता है तो कितना और किस प्रकार से?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में उपादान की योग्यता के बिना निमित्त उपकार नहीं कर सकता। ये अक्रमज्ञानी चाहे किसीका भी काम कर सकते हैं। उनसे मिला, वही उसकी पात्रता। यह तो अक्रमविज्ञान है, घंटेभर में ही मुक्ति दे, ऐसा यह विज्ञान है! जो करोड़ों जन्मों तक नहीं हो सके, वह घंटेभर में ही हो जाता है! तुरन्त फल देनेवाला है। क्रमिक अर्थात् क्या कि 'स्टेप बाय स्टेप'। सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना, परिग्रह छोड़ते-छोड़ते ऊँचे चढ़ना।

प्रश्नकर्ता : यदि सत्ता में जो दोष डल गए हों तो अक्रमिक मार्ग से सद्गुरु उनका नाश कर सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, सबका नाश कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद का आत्मा उन दोषों का नाश नहीं कर सकता, परन्तु सद्गुरु कर सकते हैं?

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' सबकुछ ही कर सकते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' क्या नहीं कर सकते? सबकुछ कर सकते हैं, क्योंकि वे कर्त्ता नहीं हैं। जो कर्त्ता हों, उनसे कुछ नहीं होता। और 'ज्ञानी पुरुष' तो कर्त्ता हैं ही नहीं, सिर्फ निमित्त ही हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद का आत्मा वह नहीं कर सकता?

दादाश्री : खुद का आत्मा यदि कर सकता तो अभी तक भटकना ही नहीं पड़ता न? निमित्त के बिना कभी भी ठिकाना नहीं पड़ता। खुद का आत्मा कुछ नहीं कर सकता। जो बंधा हुआ है, वह स्वयं किस तरह छूट सकता है?

प्रश्नकर्ता : इतने सारे ज्ञानी पूर्व में हो गए हैं, तो किसीने ऐसा अक्रमिक मार्ग बताया था?

दादाश्री : हाँ, बताया था। ऋषभदेव भगवान ने बताया हुआ है। ऋषभदेव भगवान ने अक्रम मार्ग बताकर भरत राजा को संसार में तेरह सौ रानियों के साथ मोक्ष दिया था, दूसरे निन्यानवे बेटों को 'क्रमिक मार्ग' दिया था।

प्रश्नकर्ता : वह तो भरत राजा की पात्रता होगी। हमारी वैसी योग्यता कहाँ होगी?

दादाश्री : इस 'अक्रम विज्ञान' में योग्यता देखी ही नहीं जाती। मुझसे मिलना चाहिए और वह कहे कि मेरा कल्याण कर दीजिए, तो बहुत हो गया।

अहो! ऐसा ग़ज़ब का ज्ञान!

यह हमें 'नेचुरल' देन है। मेरी खोज थी, पर अभी यह 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शिल एविडेन्स' है। कुदरती रूप से 'लाइट' हो गई है, आप अपना दीया प्रकट कर जाओ।

प्रश्नकर्ता : इस 'अक्रम मार्ग' में सातवीं मंजिल पर पहुँचकर फिर चौथी, पाँचवी पर उतर सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, फिर नहीं उतरता। फिर ऐसा है न, कि यदि खुद को जान-बूझकर खोद डालना हो, फेंक देना हो, तो उसे कौन रोक सकता है? बाकी खुद की इच्छा के बिना कोई गिरानेवाला नहीं है।

यहाँ पर ही मोक्ष हो जाना चाहिए। उधार मोक्ष हमें नहीं चाहिए। मोक्ष अर्थात् मुक्तभाव। यहाँ पर ही चिंता, वरीज़ नहीं होतीं, कोई असर नहीं होता, हमारा *ऊपरी* कोई है नहीं, ऐसा अनुभव में आता है। यह अनुभव में आना ही चाहिए। अनुभव के बिना तो काम का ही नहीं, अनुभव के बिना तो सब घोटालेवाला कहलाएगा। 'केश' चाहिए। इसलिए 'दिस इज़ द केश बैन्क ऑफ डिवाइन सोल्युशन।'

प्रश्नकर्ता : ज़िन्दगी में वर्ष कम हैं और रास्ता लम्बा है, पर यह अक्रम वस्तु मिल गई, उससे बहुत उल्लास आता है!

दादाश्री : ऐसा है न, ऐसा कभी होता नहीं है और हुआ तो अपना काम निकाल लेना है। उल्लास तो आएगा ही न! मुझे यह ज्ञान प्रकट हुआ, तब मुझे भी उल्लास आया कि ऐसा ग़ज़ब का ज्ञान! ग़ज़ब की सिद्धियाँ उत्पन्न हुई हैं! क्योंकि इस वर्ल्ड में ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि जिसकी मुझे भीख हो। मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, कीर्ति की भीख, विषयों की भीख, शिष्यों की भीख, मंदिर बनवाने की भीख, किसी भी चीज़ की भीख हमें नहीं थी, तब यह पद प्राप्त हुआ है! फिर भी यह 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' हैं। अब इस पद के आधार पर आपको वही दशा प्राप्त हो जाती है। जिनका निदिध्यासन करें उस रूप हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : पूर्वजन्म के योग से ही 'अक्रम' मिलता है न?

दादाश्री : यह एक ही साधन है कि जिसके द्वारा मुझसे भेंट हो सकती है। कोटि जन्मों के पुण्य जगें, तब ऐसा योग आ मिलता है।

बाक़ी सब क्रमिक मार्ग कहलाते हैं। क्रमिक मार्ग वह 'रिलेटिव' मार्ग है। 'रिलेटिव' अर्थात् भौतिक फल देता है और मोक्ष की ओर धीरे-धीरे 'स्टेप बाय स्टेप' ले जाता है। त्याग और तप करते-करते अंत में अहंकार शुद्ध करना पड़ेगा। फिर वहाँ पर आगे मोक्ष का दरवाज़ा मिलेगा। क्रोध-मान-माया-लोभ, विषय, सांसारिक भाव-इन सबसे अहंकार शुद्ध करना पड़ता है, तब वहाँ पर मोक्ष का दरवाज़ा खुलता है। क्रमिक मार्ग तो बहुत मुश्किलोंवाला है। और यहाँ अक्रम मार्ग में तो 'ज्ञानी पुरुष' आपका अहंकार शुद्ध कर देते हैं। अहंकार और ममता दोनों निकाल देते हैं, फिर रहा क्या? फिर आप अपने स्वरूप के अनुभव में आ जाते हो। आत्मा का अनुभव हो जाए आपको, तभी काम होता है।

❖❖❖❖❖

(११)
आत्मा और अहंकार

सनातन चेतन

प्रश्नकर्ता : चेतन कहाँ से आया? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई?

दादाश्री : उसकी उत्पत्ति नहीं है और व्यय भी नहीं है। ये तो जीव की अवस्थाएँ हैं। अवस्थाएँ बदलती हैं, वस्तु वैसी की वैसी रहती है।

कुदरत अर्थात्...

प्रश्नकर्ता : कुदरत अर्थात् क्या?

दादाश्री : कुदरत अर्थात् 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है।

प्रश्नकर्ता : ये वैज्ञानिक संयोगिक प्रमाण इकट्ठे हों तो उनके पीछे कोई शक्ति तो है न?

दादाश्री : वह जीवंत शक्ति नहीं है, वह जड़ शक्ति है। जड़ और चेतन की मिक्सचर शक्ति है। उसमें जड़ का विशेष भाव हो गया है। इसमें आत्मा तो अनादि काल से जैसा है वैसा, वैसे का वैसा ही रहा है।

किसका किस पर क़ाबू?

प्रश्नकर्ता : जीव शरीर पर क़ाबू रखता है या शरीर जीव पर क़ाबू रखता है?

दादाश्री : वही प्रश्न है न! अभी जीव का इस शरीर पर बिल्कुल

क़ाबू नहीं है। किसलिए क़ाबू नहीं है? तब कहें कि, 'उसे खुद को रोंग बिलीफ़ बैठी है।' 'मैं चंदूलाल हूँ' वही सबसे बड़ी 'रोंग बिलीफ़' है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहारिक रूप से ऐसा मानना पड़ता है।

दादाश्री : व्यवहारिक रूप से मानो तो हर्ज नहीं है, पर आपको कोई गाली दे तो उसे आप स्वीकार करते हों या नहीं? उसका आप पर असर नहीं होता है न?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : तो आप व्यवहारिक रूप से 'चंदूलाल नहीं हो', वास्तविक रूप से ही 'चंदूलाल' हो, वैसी 'रोंग बिलीफ़' बैठी है। लोगों ने कहा, 'चंदूलाल', इसलिए आपने भी वैसा मान लिया। फिर 'इस स्त्री का पति हूँ, इस बच्चे का बाप हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं कलेक्टर हूँ, फलाना हूँ।' ऐसी कितनी 'रोंग बिलीफ़' हैं?

प्रश्नकर्ता : बहुत सारी।

दादाश्री : ये रोंग बिलीफ़ बैठी हैं, इसलिए ही देह का जीव पर कंट्रोल है। यदि रोंग बिलीफ़ें निकल जाएँ तो देह का जीव पर बिल्कुल कंट्रोल नहीं रहता। आत्मा खुद अनंत शक्तिवाला है, पर इन रोंग बिलीफ़ों के कारण फँस गया है। वे रोंग बिलीफ़ें किससे जाएँगी? 'ज्ञानी पुरुष' राइट बिलीफ़ दें, जिसे अपने शास्त्र सम्यक् दर्शन कहते हैं, वह सम्यक् दर्शन मिल जाए तब जाएँगी। नहीं तो 'मैं चंदूलाल हूँ' मानने से कभी भी दिन नहीं बदलेंगे। वास्तव में आप 'खुद' चंदूलाल नहीं हो। बाय 'रिलेटिव' व्यू पोइन्ट से आप चंदूलाल हो, बाय 'रियल' व्यू पोइन्ट से आप क्या हो? वह पता लगाना चाहिए न? नहीं लगाना चाहिए? अर्थात् अभी 'आपके' ऊपर देह का ही 'कंट्रोल' है। सिर्फ देह का ही नहीं, मन का भी 'कंट्रोल' है! मन कम्पलीट फिज़िकल है। इन सभी का 'कंट्रोल' अभी आपके ऊपर है। अरे, देह के जीव पर कंट्रोल की कहाँ बात करते हो। एक फुँसी हुई हो, वह दर्द करे, उसका भी कंट्रोल जीव के ऊपर है!

अहंकार का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : वास्तव में आवागमन आत्मा का है या देह का?

दादाश्री : आवागमन न तो देह का है, न ही आत्मा का, अहंकार का ही आवागमन है। यह देह है, वह तो उसका सारा सामान लेकर आती है, परन्तु मूल आवागमन तो अहंकार ही करता है। जिसका अहंकार खत्म हो गया, उसका आवागामन बंद हो गया।

प्रश्नकर्ता : अहंकार की सच्ची परिभाषा क्या है?

दादाश्री : अहंकार की सच्ची परिभाषा जगत् समझा नहीं है। लोग जो समझे हैं, उस अनुसार नहीं है। सब खुद की भाषा में ही समझते हैं। हर एक की खुद की भाषा अलग होती है न? पर वह भगवान की भाषा के सामने नहीं चलेगी। वहाँ तो टेस्ट लेनेवाले हैं, वहाँ वह काम नहीं आएगी।

अहंकार यानी खुद नहीं करता है, फिर भी कहता है कि 'मैं करता हूँ' वह आरोपित भाव है। उसे अहंकार कहा जाता है। अहंकार मूल वस्तु है और उसमें से मान, अभिमान, गर्व, *घेमराजी* (अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने) सब तरह-तरह के शब्द बने हैं। अभिमान कैसी चीज़ है? उसमें आरोपित भाव अर्थात् कि अहंकार तो है ही, लेकिन 'मेरे चार बंगले हैं, दो गाड़ियाँ हैं' ऐसा प्रदर्शन करे, वह अभिमान कहलाता है।

जो खुद नहीं करता है, उसे करने का आरोप करे, वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : गीता में अहंकार को मूल वस्तु कहा है, उत्पत्ति से पहले की वह वस्तु होनी चाहिए न?

दादाश्री : वह उत्पत्ति से पहले की ही वस्तु है। गीता की बात सच्ची है। उत्पत्ति के बाद अहंकार नहीं होता। मूल तो पहले अहंकार हो जाता है और फिर उत्पत्ति होती है। इस भव में आपने जो-जो कर्म किए, उनका जो अहंकार करते हो, उसका फल अगले भव में आता है। यह तो करता है कोई दूसरा और आप भ्रांति से मानते हो कि मैंने किया। यदि

खुद कर्त्ता होते न तो कोई अर्थी में ही नहीं जाता। संडास जाने की शक्ति नहीं है किसीमें भी। फिर भी उसकी दूसरी खुद की शक्तियाँ हैं, पर वे शक्तियाँ प्रकट नहीं हुई हैं। और जो 'मैं करता हूँ', ऐसा कहते हैं वे तो 'खुद' की शक्ति से बाहर की वस्तु है। लोग कहते हैं न कि 'मैंने खाया, मैंने पीया, मुझे भूख लगी!' 'लगी है तब बुझा दे न!' तब कहता है, 'नहीं, अंदर कुछ डाले बगैर बुझेगी नहीं!' अहंकार पहले हो जाता है, उसके बाद यह शरीर बनता है, उसके बाद ये बाहर के परिणाम आते हैं। अहंकार से कर्म बंधते हैं और उसका यह फल है। ये मन-वचन-काया, वे सभी फल हैं। अहंकार 'कॉज़' है और ये मन-वचन-काया, वे 'इफेक्ट्स' हैं। 'कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट' 'इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़' ऐसे चलता ही रहता है। 'कॉज़ेज़' को 'ज्ञानी पुरुष' बंद कर देते हैं। इसलिए मात्र 'इफेक्ट' ही रहते हैं, फिर वापिस 'इफेक्टिव बोडी' (पारिणामिक देह) नहीं बनती है।

धर्म : भेद स्वरूप से - अभेद स्वरूप से

दुनिया में धर्म दो प्रकार के होते हैं : एक - आत्मा-परमात्मा को अभेद स्वरूप से पहचानना, वह एक प्रकार का धर्म है। दूसरा - आत्मा-परमात्मा को भेद स्वरूप से पहचानना, यानी मैं और भगवान दोनों अलग हैं, उस प्रकार से पहचानना, वह।

पहले प्रकार का धर्म ऐसा है कि आत्मा ही परमात्मा है, वैसा भान होता है। यह सच्चा धर्म है, उसके बाद मुक्ति मिलती है। खुद का आत्मा ही परमात्मा है, ऐसा भान हो, तब मुक्ति मिलती है।

और आत्मा-परमात्मा अलग हैं, जब तक ऐसा भान है, तब तक पुण्य बंधता है या पाप बंधता है और इसलिए कारण शरीर उत्पन्न होता रहता है और अनंत जन्मों तक भटकता रहता है। भगवान अलग और मैं अलग ऐसा कहते रहते हैं, वह भ्रांत मान्यता है। वास्तव में भगवान और आप एक ही हो, पर आपको वह समझ में नहीं आता। आप और परमात्मा एक ही हो, ऐसा समझानेवाला कोई मिलता नहीं है, वह मिले तो आपको अभेद स्वरूप का भान करवाए। ये भगवान अलग लगते हैं, वे आपकी

कमज़ोरियाँ हैं, इसलिए ही आप जीव स्वरूप में हो। और भगवान में कमज़ोरी नहीं हैं, इसलिए आपकी कमज़ोरियाँ जाएँगी, तो फिर भगवान-स्वरूप का निरंतर साक्षात्कार रहेगा।

यह तो लोग 'चंदू-चंदू' करते रहते हैं इसलिए उसे असर हो जाता है कि, 'मैं चंदू हूँ।' इस भ्रांति का असर फिर जाता नहीं। बाकी खुद ही परमात्मा है!

तरणतारण ही तारें

प्रश्नकर्ता : उस परमात्मा की 'स्टेज' तक जाने के लिए क्या करना पड़ता है?

दादाश्री : उसके लिए 'ज्ञानी पुरुष' के पास से कृपा प्राप्त करनी चाहिए। यदि धीरे-धीरे उस स्टेज में जाना हो तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास से आज्ञा लेनी चाहिए और यदि कृपा प्राप्त कर ले, तो वह पद घंटेभर में ही मिल जाए। और नहीं तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जाना। जिसे बहुत जल्दी नहीं हो, अभी इन्द्रियों के रस भोगने की इच्छा रह गई हो, संसार की इच्छा रह गई हो, वह धीरे-धीरे जाए और जिसे इस संसार के सुख में भी दुःख लगता रहता हो, सुख भी सहन नहीं होता हो, तो फिर वह मुक्ति का अधिकारी हो गया। फिर 'ज्ञानी पुरुष' उसे मुक्ति देते हैं। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष' खुद तरणतारण हुए हैं, खुद तर गए हैं और अनेक लोगों को तारने में समर्थ हैं।

प्रश्नकर्ता : वैसी गुरुकृपा हो जाए तो फिर मेहनत कम करनी पड़ेगी।

दादाश्री : अभी आप जो मेहनत कर रहे हो, वह सारी बेकार जाएगी। अब वह बिल्कुल बेकार नहीं जाती, पर जो काम घंटेभर में हो जाए, उसके बदले पूरा साल बिगड़ता है। और गुरु सिर पर हों, वे गुरु जहाँ तक पहुँचे हों, वहाँ तक हमें ले जाते हैं। और 'ज्ञानी पुरुष' ठेठ तक पहुँचे हुए होते हैं, इसलिए वे हमें ठेठ तक ले जाते हैं।

❖❖❖❖❖

(१२)

व्यवस्था 'व्यवस्थित' की

'व्यवस्थित शक्ति'

प्रश्नकर्ता : जगत् नियंत्रण किसी शक्ति से है, वही 'व्यवस्थित शक्ति' है?

दादाश्री : वही 'व्यवस्थित शक्ति' है। यह नियंत्रण यानी कैसा है? हमें पानी ऊपर चढ़ाना हो तो पंप चलाना पड़ता है और पानी खाली कर देना हो तो? आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। कोई पूछे कि ऐसा क्यों? क्योंकि पानी का स्वभाव ही है कि निचले स्थान पर चले जाना। वैसे ही यह नियंत्रण भी स्वभाव से ही होता है।

प्रश्नकर्ता : जगत् में जो मूल तत्व हैं, उन पर तो 'व्यवस्थित' का क़ाबू है न?

दादाश्री : किसीका भी किसी पर क़ाबू है ही नहीं। बेक़ाबू टोली है यह सारी, सभी स्वतंत्र हैं। 'व्यवस्थित' तो आपके जानने के लिए है, समझने के लिए हैं। बाकी उन्हें कुछ भी पड़ी नहीं है। 'व्यवस्थित' तो आपको मोक्ष के स्टेशन तक जाने की टिकिट है। वह टिकिट हो तो आपसे आगे बढ़ा जाएगा। कोई किसीके बस में नहीं है, सब स्वतंत्र हैं। उसमें आत्मा परमात्मा है, चेतन है। फिर भी दूसरे उसकी सुनते नहीं हैं। दूसरे तत्व कहते हैं कि, 'तू परमात्मा है, उसमें हमें क्या? तू जुदा और हम जुदा है!'

कालचक्र के अनुसार...

प्रश्नकर्ता : ये युग, सत्युग-कलियुग किस तरह बने?

दादाश्री : यह तो कालचक्र होता है। जैसे यह गोल चक्र घूमता-घूमता ऐसे उतरता है, वैसे ही यह उतरता हुआ काल है। इसके बाद वापिस चढ़ता हुआ काल आएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पापी और पुण्यशालियों का क्या दोष?

दादाश्री : कुछ भी दोष नहीं है। वास्तव में खुद दोषित है ही नहीं, परन्तु खुद कहता है कि, 'मैंने यह किया।' गलत करे या सच्चा करे, फिर भी 'मैंने किया', ऐसा कहता है। वह खुद हस्ताक्षर कर देता है, उसके लिए भुगतना पड़ता है। यह खुद नहीं करता। नहीं करना हो, फिर भी कुदरत उससे ज़बरदस्ती करवाती है। नैमित्तिक धक्के से होता है सारा। ये सत्युग और सारे युग कैसे हैं? अभी दिन में हमें चने लेने हों तो थोड़े-बहुत मिलते हैं, सो मन, दो सौ मन मिल सकते हैं। परन्तु रात को ढाई बजे जाएँ तो? कितने चने मिलेंगे? वैसा है। काल के अनुसार होता रहता है।

सेवा में समर्पणता

प्रश्नकर्ता : तो इस जगत् के लिए हमें कुछ भी करने का नहीं रहता है?

दादाश्री : आपको करना था ही नहीं, यह तो अहंकार खड़ा हो गया है। सिर्फ ये मनुष्य ही अहंकार करते हैं, कर्त्तापन का।

प्रश्नकर्ता : ये बहन डॉक्टर हैं। एक गरीब पेशेन्ट आया, उसके प्रति अनुकंपा होती है, इलाज करती है, परन्तु आपके कहे अनुसार तो फिर अनुकंपा करने का कोई सवाल ही नहीं रहता न?

दादाश्री : वह अनुकंपा भी कुदरती है, पर वापिस अहंकार करते हैं कि, 'मैंने कैसी अनुकंपा की!' अहंकार नहीं करे तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु अहंकार किए बिना रहते नहीं हैं न?

प्रश्नकर्ता : इस जगत् की सेवा में परमात्मा की सेवा का भाव रखकर सेवा करे, वह फर्ज में आता है न?

दादाश्री : हाँ। उसका फल पुण्य मिलता है, मोक्ष नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : उसका श्रेय साक्षात्कारी परमात्मा को सौंप दें, तो भी मोक्ष नहीं मिलता?

दादाश्री : ऐसे फल सौंपा नहीं जा सकता न किसीसे।

प्रश्नकर्ता : मानसिक समर्पण करें तो?

दादाश्री : वैसा समर्पण करे तो कोई फल ले ही नहीं और कोई दे ही नहीं। वह तो सिर्फ कहने के लिए समर्पण है। उसका फल खुद को ही मिलता है। कुदरत के घर ऐसा न्याय है कि 'भुगते उसकी भूल'।

प्रश्नकर्ता : 'मैं करता हूँ' वह भाव छूट जाए तो?

दादाश्री : कर्त्ताभाव छूट जाए और स्वरूपज्ञान हो जाए, तो कर्म नहीं बंधता।

क्या नई ही समाज-रचना?

प्रश्नकर्ता : दुनिया में कुछ लोग लोगों को मारते हैं, काटते हैं और नई समाज-रचना खड़ी करते हैं, उसके बाद क्या होगा?

दादाश्री : यह समुद्र है, इस समुद्र में हमले होते हैं, वे आपने देखे हैं क्या? बड़ी-बड़ी मछलियाँ, सौ-सौ मन की, दस-दस मन की, अंदर ही अंदर लड़ती हैं, वह सब देखा है आपने?

प्रश्नकर्ता : बस, वैसी ही लड़ाईयाँ चलती ही रहेंगी, ऐसा?

दादाश्री : हाँ। यह कुदरत का काम है। कोई इसमें कुछ नहीं करते बेचारे! यह 'व्यवस्थित' करवाता है। ये लड़ाईयाँ, वॉर, सब कुदरती है। आपको यदि संसार पसंद नहीं हो तो अकर्त्ता होकर, 'ज्ञानी पुरुष' के कहे अनुसार रहो तो हल आ जाए। इसमें किसीकी सत्ता नहीं है। वर्ल्ड में किसीकी संडास जाने की भी सत्ता नहीं है। जब कुदरत में संयोग होंगे तभी सब होगा।

प्रश्नकर्ता : यह जगत् तो लक्ज़ुरीयस बनता जा रहा है, जड़ होता जा रहा है।

दादाश्री : कब तक लक्ज़ुरियस नहीं थे? जब तक कुछ देखा नहीं था, तब तक ही। इसलिए जिन्होंने देखा नहीं था, ये वैसे निर्मोही थे। गाँव में देखा ही नहीं था न?

प्रश्नकर्ता : नहीं मिला तो ब्रह्मचारी थे, ऐसा?

दादाश्री : अभी जो मोह दिखता है, वह देखने का मोह है। और इस मोह में से ज्ञान उत्पन्न हुआ है। ठोकरें खा-खाकर दम निकल गया है और उस मोह में से वैराग्य जन्मा है।

❖❖❖❖❖

(१३)
व्यवहारधर्म : स्वाभाविकधर्म

सुख प्राप्त करने के लिए धर्म कौन-सा?

प्रश्नकर्ता : धर्म क्या है? धर्म किसे करना है? धर्म पालन करने का अर्थ क्या है?

दादाश्री : ये सारे धर्म चल रहे हैं, वे व्यवहारिक धर्म हैं, व्यवहारिक मतलब व्यवहार चलाने के लिए। वैष्णव धर्म, जैन धर्म, शैव धर्म वगैरह सब व्यवहार धर्म है।

अब इस रोड पर गाड़ियों का व्यवहार होता है या नहीं होता? उनका क्या धर्म है कि टकराओगे तो आप मर जाओगे। टकराने में जोखिम है इसलिए किसीके साथ टकराना नहीं, किसीको दुःख या त्रास मत देना, वैसा वाहनधर्म भी कहता है, वैसे ही यह व्यवहारधर्म भी कहता है कि किसीको त्रास मत देना। आपको सुख चाहिए तो दूसरों को सुख देना। वही मनुष्य आपको सुख नहीं दे सके तो दूसरे मनुष्य सुख देंगे आपको। यदि दुःख दोगे तो कोई न कोई मनुष्य आपको दुःख देगा ही, यह व्यवहारिक धर्म कहलाता है।

जब कि सच्चा धर्म तो खुद की वस्तु का स्वभाव है। वह आत्मधर्म है, खुद का स्वाभाविक धर्म है, उसमें तो निरंतर परमानंद ही है। सच्चा धर्म तो 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा दे दें तब से अपने आप ही चलता रहता है और व्यवहारधर्म तो हमें करना पड़ता है, सीखना पड़ता है।

सर्व समाधान से, सुख ही

प्रश्नकर्ता : धर्म में और व्यवहार में सभी जगह लागू हो और सुख

रहे ऐसी कौन-सी चीज़ है?

दादाश्री : हमारे पास स्वरूप का ज्ञान ले जाए तो उसे सबकुछ सुखवाला ही होता है। और जिसके अंतराय हों और ज्ञान नहीं लेना हो तो वे हमें सब पूछ लें और समझ लें कि 'यह संसार किस तरह चलता है, यह सब क्या है?' तब भी उसे सुख रहे।

समाधान रहे, वही धर्म है। कुछ अंशों तक समाधान और कुछ अंशों तक असमाधान रहे, वह 'रिलेटिव' धर्म है, वह पहली सीढ़ी है। फिर 'रियल' धर्म में आता है, जिसमें हर एक संयोग में समाधान रहना चाहिए। समाधान हो तो ही शांति रहेगी न?

जीव-मात्र क्या ढूंढता है? आनंद ढूंढता है, परन्तु क्षणभर भी आनंद नहीं मिलता। शादी में जाए या नाटक में जाए, पर वापिस फिर दुःख आता है। जिस सुख के बाद दुःख आए, उसे सुख कहेंगे ही कैसे? वह तो मूर्छा का आनंद कहलाता है। सुख तो परमानेन्ट होता है। यह तो टेम्परेरी सुख हैं और फिर कल्पित हैं, माना हुआ है। हर एक आत्मा क्या ढूंढता है? हमेशा के लिए सुख, शाश्वत सुख ढूंढता है। वह 'इसमें से आएगा, इसमें से आएगा, यह ले लूँ, ऐसा करूँ, बंगला बनवाऊँ तो सुख आएगा, गाड़ी लूँ तो सुख आएगा।' ऐसे करता रहता है। पर कुछ आता नहीं। बल्कि और अधिक जंजालों में फँसता है। सुख खुद के भीतर ही है। आत्मा में ही है। इसलिए आत्मा प्राप्त करे तो सुख ही प्राप्त होगा।

रात को साढ़े दस बजे सो गए और किसीको दो सौ रुपये उधार दिए हों और विचार आए कि 'आज उसकी मुद्दत पूरी हो गई, उसका क्या होगा?' फिर नींद आएगी क्या? उस घड़ी पर समाधान होने का साधन चाहिए या नहीं चाहिए? समाधान के बिना तो मनुष्य मेड हो जाता है, प्रेशर बढ़ जाता है और हार्ट के दर्द खड़े हो जाते हैं। समाधान हो जाए, तो कुछ चैन मिले।

भगवत् उपाय ही, सुख का कारण

प्रश्नकर्ता : आपने 'टेम्परेरी' आनंद कहा है और दूसरा 'परमानेन्ट' आनंद कहा है, पर हमने जब तक वह सुख नहीं भोगा, तब तक उन दोनों में फर्क किस तरह पता चले?

दादाश्री : उसका पता ही नहीं चलता। जब तक परमानेन्ट सुख नहीं आया है तब तक इसे ही आप सुख कहते हो।

एक गोबर में रहनेवाला कीड़ा हो, उसे फूल में रखें तो वह मर जाएगा, क्योंकि उसे इस सुख की आदत है, परिचित है, उसकी प्रकृति ही ऐसी बन गई है। और फूल के कीड़े को गोबर में अच्छा नहीं लगेगा।

लोग कहेंगे कि पैसों में सुख है, पर कुछ साधु महाराज ऐसे होते हैं कि उन्हें पैसे दें तो भी वे नहीं लेते। आप मुझे पूरे जगत् का सोना देने आओ तो भी मैं वह नहीं लूँ। क्योंकि मुझे पैसे में सुख है ही नहीं। इसलिए पैसे में सुख नहीं है। यदि पैसों में सुख हो तो सभी को उसमें से वह सुख लगना चाहिए। जब कि आत्मा का सुख तो सबको ही महसूस होता है। क्योंकि वह सच्चा सुख है, सनातन सुख है। वह आनंद तो कल्पना में भी नहीं आए, उतना अधिक आनंद है!

जहाँ आत्मा-परमात्मा के अलावा दूसरी कोई बात नहीं होती, वहाँ पर सच्चा आनंद है, जहाँ संसार की किंचित् मात्र भी बात नहीं होती कि संसार में से किस तरह फायदा हो, किस तरह गुण उत्पन्न हों। लोग सद्गुण उत्पन्न करना चाहते हैं। ये गुण, सद्गुण, दुर्गुण, ये सब अनात्म विभाग हैं और विनाशी हैं। फिर भी लोगों को उनकी ज़रूरत है। हर एक को हर एक की अपेक्षा के अनुसार अलग-अलग चाहिए। लेकिन जिसे संपूर्ण वीतराग पद चाहिए तो इन सारे सद्गुणों, दुर्गुणों से परे होना चाहिए और 'खुद कौन है' वह जानना चाहिए और वह जानने के बाद आत्मा-परमात्मा की बातों में ही रहे, तो उससे संपूर्ण वीतराग दशा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : सच्चा सुख मिल नहीं रहा और समय बीतता जा रहा है।

दादाश्री : सच्चा सुख चाहिए तो हमें सच्चा बनना पड़ेगा। और

संसारी सुख चाहिए तो संसारी बनना पड़ेगा। संसारी सुख पूरण-गलन स्वभाव का है, आता है और फिर उड़ जाता है, वह द्वंद्ववाला है। 'मैं कौन हूँ', उसका खयाल आ जाए, बाद में ही हमेशा सच्चा सुख बरतता है।

प्रश्नकर्ता : संसार में सुख कब मिलेगा?

दादाश्री : संसार में सुख होता ही नहीं है। परन्तु भगवत् उपाय लो तो कुछ शांति लगती है और ज्ञान उपाय से हमेशा के लिए शांति लगती है।

अभी निन्यानवे प्रतिशत दुःख और एक प्रतिशत सुख, सांसारिक सुख है। सत्युग में सुख थे।

काल का तो क्या दोष?

प्रश्नकर्ता : समय के कारण सुख-दुःख होते हैं?

दादाश्री : यह तो समसरण मार्ग है। ये जीव प्रवाह में बह रहे हैं, यानी कि गति कर रहे हैं। गति किस तरह नापी जाए? द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव मिल जाएँ तब कार्य दिखता है। काल प्रत्यक्ष दिखता है इसलिए लोग काल को ही गाते रहते हैं। इस कलियुग में, इस दूषमकाल में हम आए, उसमें अपना कर्त्तापन कितना है? उसमें अपना कितना हिस्सा है?

पूरे जगत् को भीतर अपार जलन है। निरंतर अंतरदाह होता रहता है। किसीने कहा कि, 'चंदूभाई में अक्कल नहीं है' तो भीतर असर हो जाता है, अंतरदाह लगता है। अंतरदाह यानी क्या? भीतर परमाणु जलते हैं और एक जले, तब दूसरे को सुलगाता है, दूसरा तीसरे को सुलगाता है, ऐसा निरंतर चलता रहता है, 'इलेक्ट्रिसिटी' की तरह जलता रहता है, वेदना की तरह भुगतना पड़ता है। विशेष परमाणु सुलगें, तब लोग कहते हैं कि, 'मेरी जान जलती रहती है।' वह किस तरह सहन हो? जिसका अंतरदाह गया, तब से ही मुक्ति की नौबतें बजीं!

अंतरसुख - बाह्यसुख

आज का भौतिक विज्ञान 'आउट ऑफ बैलेन्स' हो गया है,

'नोर्मेलिटी' से बाहर चला गया है, इसलिए 'पोइज़न' हो गया है। आज इस भौतिक विज्ञान से अपार बाह्यसुख हो गए हैं, जब कि दूसरी ओर अंतरसुख सूख गया है! अंतरसुख और बाह्यसुख, इन दोनों का कुछ 'इक्वल बैलेन्स' (संतुलन) होना चाहिए। थोड़ा-बहुत कम-ज़्यादा हो गया हो तो चलेगा, पर उसका अनुपात होना चाहिए। भौतिक सुख नीचे गया हो तो चला सकते हैं, पर आज तो आंतरिक सुख खत्म हो गया है। इस अमरीका में तो बिल्कुल खत्म हो गया है। वहाँ की प्रजा को तो बीस-बीस गोलियाँ खाएँ, तब मुश्किल से नींद आती है! अमरीका ने एक तरफ अपार भौतिक सुख प्राप्त किए हैं, जब कि दूसरी तरफ अंतरसुख खत्म हो गया!! यह कैसा साइन्स!!!

मनुष्य अंतरशांति के लिए बाहर भागदौड़ करते हैं, पर इस तरह भागदौड़ से शांति मिलेगी? अंतरशांति हो तभी बाहर शांति मिलेगी। इसलिए पहले अंतर में सुख है वैसा श्रद्धा में आ जाना चाहिए, तब अंतरशांति मिलेगी।

भगवान ने क्या कहा था कि अंतरसुख और बाह्यसुख का काँटा देखते रहना। अंतरसुख कम हो और बाह्यसुख बढ़े तो समझना कि मरनेवाला है। काँटा थोड़ा-बहुत ऊँचा-नीचा हो तो चला सकते हैं, पर यह तो अंतरसुख की डंडी बिल्कुल ऊँची चली गई, तब तेरी क्या दशा होगी? ये बाहर के सुख बढ़ा दिए, चालीस लाख के फ्लेट लिए हों, खाने-पीने का बहुतायत में हो, टोकरे भर-भरकर फ्रूट के हों, तब साहब को ब्लड प्रेशर और हार्ट अटेक आए हुए होते हैं और मेमसाहिब को डायाबिटीज़ हुआ होता है! उन दोनों के मुँह पर डॉक्टर ने सीकी (पशुओं के मुँह पर बाँधी जानेवाली जाली) बाँध दी होती है!!! फिर यह सब खाए कौन? तब कहें, घर के वे चूहे, नौकर और रसोइये खा-पीकर गोल-मटोल हो गए होते हैं! फ्लेट में जाओ तो जैसे शमशान में नहीं आ गए हों! सेठ के साथ बातें करो तो भी निरे अहंकार से बात करता है वह। सेठ महँगे भाव की चाय पिलाते हैं, पर जब तक भावरूपी द्रव्य नहीं पड़ा है, तब तक चाहे जैसा सोलह आनी का सोना हो, फिर भी बेकार है। सेठ का मुँह देखें तो जैसे कि सेठ हँसना ही भूल गए हों, वैसा लगता है! यह

बाह्यसुख की कैसी भेंट(!)?

अंतरशांति तृप्ति देती है और बाह्य शांति से लोभ बढ़ता रहता है। जहाँ स्वार्थ बुद्धि है, वहाँ अंतरशांति नहीं रहती।

अहंकार विलय होने से सनातन सुख

जितना उल्टा चले उतना इगोइज़म बढ़ता है और जितना इगोइज़म विलय हो उतना सुख बरतता रहता है। हमारा इगोइज़म खत्म हो गया है, इसलिए निरंतर सनातन सुख रहता है। दु:ख में भी सुख रहे, वह खरा सुख है। कोई अपमान करे तब भी खुद को भीतर सुख लगता है, तब ऐसा होता है कि, 'अरे, यह कैसा सुख!'

आत्मा में परमसुख ही है, लेकिन कलुषित भाव के कारण वह सुख आवरित हो जाता है। यह सुख कहाँ से आता है? विषयों में से? मान में से? क्रोध में से? लोभ में से? इनमें किसीमें से नहीं आए तो समझना कि यह समकित है।

जहाँ कुछ भी दु:ख नहीं होता, वहाँ आत्मा है।

मिथ्या दर्शन से ही दु:ख

संसार में दु:ख की उपासना की है, इसलिए दु:ख है। वास्तव में दु:ख नहीं है।

इस जगत् में सबकुछ ही है, परन्तु दु:ख किसलिए उपस्थित हुए हैं? अदर्शन से ही। सम्यक् समझ किसे कहा जाता है कि दु:ख में से सुख का शोधन करे।

जिस दु:ख से हम घबराएँ नहीं, वह सामने आता ही नहीं, लुटेरा भी नहीं आता और भगवान भी नहीं आते!

भगवान क्या कहते हैं कि यदि तुझे मोक्ष चाहिए तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास जा और संसार में सुख चाहिए हो तो माँ-बाप और गुरु की सेवा

करना। माँ-बाप की सेवा से तो अपार सुख प्राप्त हो ऐसा है।

लोगों ने जिसमें सुख माना, उसमें हमें भी सुख मानना, वह लोकसंज्ञा है। और आत्मा में ही सुख है वैसा मानना, वह ज्ञानी की संज्ञा है।

एक व्यक्ति भगवान से रोज़ प्रार्थना करे कि, 'हे भगवान! मुझे सुखी करो, सुखी करो।' दूसरा व्यक्ति प्रार्थना करे तब बोलता है कि, 'हे भगवान! घर के सभी लोग सुखी हों।' उसमें खुद तो आ ही जाता है। सच्चा सुखी दूसरावाला व्यक्ति होता है, पहलेवाले की अर्ज़ी बेकार जाती है। और हम तो जगत्‌कल्याण की भावना करते हैं उसमें खुद का आत्यंतिक कल्याण आ जाता है।

दु:ख उपकारी बनते हैं

प्रश्नकर्ता : कुन्ती ने दु:ख माँगा, सुख नहीं माँगा, ताकि भगवान याद आएँ। उसका रहस्य क्या है?

दादाश्री : ऐसा है, घर का यह दरवाज़ा हम हमेशा बंद रखते थे। पर एक जाए और बंद करें, तब तक तो दूसरा खटखटाता है। वह जाए तब दरवाज़ा बंद करें, वहाँ पर तीसरा खटखटाता है, ऐसे पूरे दिन चलता रहता है। यदि तीन घंटे तक कोई नहीं खटखटाए तो बंद किया हुआ काम का है, पर यह तो बंद करें और खटखटाए, बंद करें और खटखटाए, इसलिए बंद करें, उसके बदले तो दरवाज़ा खुला ही रख दो न! वैसे ही एक पर एक दु:ख आएँ, तब दु:ख से कह दो कि, 'ये दरवाज़े खुले हैं, तुझे जब आना हो तब आ और जब जाना हो तब जा।'

जितने संत हुए हैं, वे सभी किसके भोक्ता थे! वे दु:खभोक्ता थे। दु:ख और सुख विकल्प हैं। इसलिए विकल्प को चेन्ज कर देते हैं, यानी दु:ख का नाम सुख और सुख का नाम दु:ख रख देते हैं। फिर दरवाज़े खुले रखते हैं, जिसे आना हो वह आए।

पुद्‌गल सुख : उधार का व्यवहार

पुद्‌गल सुख की आशा छोड़, वह उधारी व्यवहार है। *पुद्‌गल* सुख

फ्री ऑफ कोस्ट नहीं आता है, वह तो लेकर वापिस चुकाना पड़ता है। उधार लेकर कितने दिन तक सुखी होंगे? उधार के रुपये कब लिए जाते हैं? जब नाक कटे तब। यह तो जहाँ-तहाँ से उधार लिया है, वह अब वापिस देना पड़ रहा है। जब वापिस दें, तब वह दु:ख के रूप में देना पड़ता है। शारीरिक, मानसिक या वाचिक चाहे जिस प्रकार से देना पड़ेगा।

बेटा 'पापाजी-पापाजी' करे तो वह कड़वा लगना चाहिए। यदि मीठा लगा तो उसे उधार का सुख लिया कहा जाएगा, वह फिर दु:ख के रूप में वापिस देना पड़ेगा। बेटा बड़ा होगा तब आपसे कहेगा कि, 'आप बेअक्कल हो।' तब होगा कि ऐसा क्यों? वह जो पहले आपने उधार लिया था, वह वापिस ले रहा है। इसलिए पहले से ही सावधान हो जाओ। हमने तो उधारी सुख लेने का व्यवहार ही छोड़ दिया था। अहा, खुद के आत्मा में अनंत सुख है! उसे छोड़कर इस भयंकर गंदगी में पड़ें?

घरवाले या बाहरवाले कड़वा बोले तो सहन नहीं होता, इसलिए हमने कहा है कि वाणी रिकॉर्ड है। इस काल में रिकॉर्ड टेढ़ी बजती है। सामनेवाले की चाहे जितनी, चाहे जैसी रिकॉर्ड बज रही हो, पर हम रिकॉर्ड के रूप में सुनते रहें और सामनेवाला ऊब जाए, तब समझें कि वास्तव में ज्ञान पचा है। कषाय कभी भी कषाय से जीते नहीं जा सकते, कषाय समता से ही जीते जा सकते हैं।

खाने की या दूसरी किसी चीज़ की भावना ही नहीं होनी चाहिए। पौद्गलिक सुख की तमन्ना, अरे उसका विचार ही नहीं आना चाहिए। क्योंकि वह उधारी व्यवहार पुसाए वैसा नहीं है। वह वापिस माँगें तब दिया नहीं जा सकेगा। *पुद्गल* खुद वीतराग है। आप उसे जब से लाओगे, तब से उधारी व्यवहार शुरू हो जाता है।

❖❖❖❖❖

(१४)
सच्ची समझ, धर्म की

धर्म का स्थान

प्रश्नकर्ता : धर्म किस स्थल पर है?

दादाश्री : धर्म दो प्रकार के हैं। एक लौकिक धर्म और दूसरा अलौकिक धर्म। लौकिक धर्म संसारिक सुख देते हैं। मिथ्यात्व सहित जो-जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे सभी लौकिक धर्म कहलाते हैं। उसका फल संसार है। उससे भौतिक सुख मिलते हैं, पर मोक्ष नहीं मिलता। जब कि अलौकिक धर्म में आए, यानी कि मिथ्यादर्शन टूटे, तब से मोक्ष का रास्ता मिल गया कहा जाता है। मिथ्यादर्शन टूटे किस तरह? 'ज्ञानी पुरुष' उसे ज्ञान में समझाएँ कि ये सब 'रोंग बिलीफ़ें' हैं और वे 'रोंग बिलीफ़' फ्रेक्चर कर देते हैं और 'राइट बिलीफ़' उसकी मान्यता में हमेशा के लिए बैठ जाती है, वैसी उनकी कृपा उतरे तब सम्यक् दर्शन होता है, और सम्यक् दर्शन हुआ, उसके साथ ही सम्यक् ज्ञान होता ही रहता है और सम्यक् चारित्र भी आता ही रहता है।

धर्म : त्याग में या भोग में

प्रश्नकर्ता : धर्म वह त्याग में है या भोग में है?

दादाश्री : धर्म त्याग में भी नहीं होता है और भोग में भी नहीं होता है, दोनों विपरीत मान्यताएँ हैं। त्यागवाला वापिस ग्रहण करता है। अपने में कहावत है न, कि 'त्यागे सो आगे?' इसलिए जितना त्याग करोगे उसका अनेक गुना होकर वापिस आएगा और ग्रहण किया तो उसे वापिस ग्रहण की अड़चनें आएँगी, तब फिर उसे वापिस त्याग करने की भावना

होगी। क्योंकि बहुत ग्रहण हो जाए तब ऊब जाता है।

प्रश्नकर्ता : तब फिर त्याग करें या त्याग नहीं करें?

दादाश्री : त्यागना कितना है? अपने सिर पर जितना बोझ उठा सकें, उतने ही बोझ की ज़रूरत है और उससे ज़्यादा का त्याग कर देना चाहिए। उसके बदले लोग बोझा बढ़ाते रहते हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान हों, ऐसा हो तो उतना आवश्यकता से अधिक माल त्याग देना चाहिए। त्याग उसे कहते हैं कि वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं करवाए।

...तब धर्म ने रक्षण किया?

आपकी जेब कटे और पाँच हज़ार रुपये जाएँ तो आपको भीतर परेशानी-परेशानी हो जाती है। थानेदार से कहते हो कि, 'साहब, देखिए यहाँ से काटा है, यहाँ से काटा है।' क्योंकि आप मानते हो कि ''आप 'चंदूलाल' हो और आपकी जेब कटी है।'' और ये भाई हैं वे सीधे घर चले जाते हैं, किसीको कुछ दिखाते-करते नहीं हैं। क्योंकि वे 'प्रवीणभाई' ही नहीं हैं न! और जेब भी उनकी नहीं है। इसलिए उन्हें कुछ भी परेशानी ही नहीं रहती है न! उसे मुक्ति कहते हैं। संसार स्पर्श नहीं हो, वह मुक्ति। और आपको तो परेशानी स्पर्श करती है न?

प्रश्नकर्ता : एकदम, चारों ओर से स्पर्श करती है।

दादाश्री : पूरी ज़िन्दगी धर्म किया, अरे अनंत जन्मों से धर्म किया पर धर्म आपका सगा नहीं हुआ। एक जेब कटे, उससे पहले तो धर्म चला जाता है, वह धर्म ही नहीं कहलाता। हर एक मिनट पर हाज़िर रहे वह धर्म कहलाता है। धर्म रक्षण देता है, शांति देता है, समाधि देता है। चिंता नहीं करवाता। चिंता हो, उसे धर्म नहीं कहते। किसकी चिंता करते हो? बेटी बड़ी हो गई, उसकी? अरे, बेटी बड़ी हुई वह उसके शरीर से बड़ी हुई, उसमें तुझे क्या है इतना कुछ? बेटी बड़ी नहीं होगी? यह पौधा भी बड़ा होता है, जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे! यह तो बेटी बड़ी होती जाती है, वैसे-वैसे भीतर अकुलाहट होती जाती है। और एक व्यक्ति की बेटी थी, वह बड़ी ही नहीं हो रही थी, तब कहता है, 'ठिगनी रह गई

है! इसलिए अकुलाहट होती है।' इस तरह ऐसे अकुलाहटवाले लोग हैं। इन्हें कहाँ पहुँच पाएँ? देखो अकुलाहट, अकुलाहट! ज़रा अक्कलवाली लड़की होगी तो कहेंगे कि, 'ज़रूरत से ज़्यादा अक्कलमंद है' और ज़रा कम अक्कलवाली होगी तो कहेंगे कि 'पागल है!' चारों तरफ से इसका ठिकाना ही नहीं है न!

कोई अपमान करे तब आपका धर्म चला जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, चला जाता है।

दादाश्री : रोज़ भगवान की पूजा करते रहते हैं, फिर भी थोड़ा-सा किसीने अपमान किया तो वह चला जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : अरे, सेवा-पूजा या माला कर रहे हों, तब भी कोई अपमान करे तो उस घड़ी भी धर्म चला जाता है, साहब!

दादाश्री : धर्म वह कहलाता है कि धर्म होकर परिणमित हो। धर्म होकर परिणमित हो, वह किसे कहते हैं कि सामनेवाला गालियाँ दें, उस घड़ी धर्म हमारी मदद करे। यह तो सिर्फ भागदौड़, भागदौड़ करते हैं। कितने ही मंदिर और जिनालयों की सीढ़ियाँ घिस डालीं, संगमरमर के पत्थर भी घिसने लगे, पर कुछ भी कल्याण नहीं होता है। धर्म हाज़िर नहीं रहे, वह धर्म ही नहीं कहलाता। मैंने पाँच बार आपके पास चक्कर लगाए हों तो आप मेरे ज़रूरत के समय पर हाज़िर रहते हो और यह तो धर्म का रोज़ करते हैं, पर वह (धर्म) ज़रूरत के समय हाज़िर ही नहीं रहता, आने से पहले ही एकदम भाग जाता है, उसे धर्म कैसे कहेंगे? रोज़ किताबें पढ़ते रहते हैं, वे इतनी सारी पढ़ीं की दिमाग़ पूरा किताब जैसा हो गया! दिमाग़ ही किताब बन गया!! भगवान ने क्या कहा था कि आत्मा जान। उसके बदले ये किताबें ही जानता रहा है। उसका क्या करना है? इतना-इतना पूरी ज़िन्दगी किया, लेकिन आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते रहते हैं! क्या करोगे अब? बहुत धोखा खाया है। पूरी ज़िन्दगी क्रोध-मान-माया-लोभ ने लूट लिया और कुछ भी नहीं रहने दिया। अब कमी पड़ेगी तब क्या करोगे?

अनंत जन्मों से धर्म किया, पर धर्म परिणमित नहीं होता और अधर्म

बढ़ता गया। थोड़ा भी कोई छेड़े-करे कि, 'चंदूलाल में अक्कल नहीं है।' तो उससे पहले ही धमाका हो जाता है। सामायिक करते हुए या माला फेरते समय भी कोई छेड़े तो भी धमाका हो जाता है। हो जाता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो जाता है।

दादाश्री : ऐसा क्यों हो गया होगा सेठ? समता नहीं रहती है न?! वर्ना *उपाधि* में समता रहे, तब समझना कि मोक्ष के बिगुल बजे।

प्रश्नकर्ता : वह समता किस तरह रहे?

दादाश्री : क्यों किस तरह रहे? देखो, इन भाई को समता रहती है या नहीं रहती? उन्हें पूछो तो सही? *उपाधि* में समता रहनी ही चाहिए, नहीं तो धर्म ही कैसे कहलाएगा? अभी तक किया वह खरा धर्म ही नहीं कहलाता। धर्म तो वह कि अपमान करे, जेब कट जाए, तो भी हाज़िर रहे। यह धर्म तो आपकी सहायता नहीं करता है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं करता।

दादाश्री : यानी कि आप धर्म के प्रति सिन्सियर नहीं रहे। इस कलियुग में धर्म के प्रति कोई भी सिन्सियर नहीं रहता। भाई के प्रति सिन्सियर नहीं रहता, पत्नी के प्रति भी सिन्सियर नहीं रहता, तब फिर धर्म के प्रति सिन्सियर किस तरह रहे? लोग रोज़ चाँदी की डिब्बी लेकर भगवान के दर्शन करने जाते हैं। तब मैंने भगवान से कहा कि, 'भगवान! इतने सारे लोग रोज़ दर्शन करते हैं, फिर भी आप उन पर राज़ी क्यों नहीं होते?' तब भगवान ने कहा कि, 'ये लोग रोज़ आकर दर्शन तो करते हैं, पर फिर उस घड़ी उनके जूतों को भी याद करते रहते हैं कि कोई ले जाएगा, ले जाएगा, अरे दुकान को भी साथ में याद करते रहते हैं! अब बोलो, इसमें मेरा क्या दोष है? मैं उन पर किस तरह राज़ी होऊँ?' तब लोग मुझे पूछते हैं कि, 'तो हमें दर्शन किस तरह करने चाहिए?' तब मैं उन्हें समझाता हूँ कि, 'दर्शन करते समय आपको जूतों से ऐसा कहना चाहिए कि, 'दादा भगवान' की आज्ञा से तुझे कहता हूँ कि तू जल्दी से जल्दी जाना और नहीं जाना हो तो रुकना', ऐसे करके दर्शन करना। दर्शन करके आएँ और

देखें कि जूते गायब हो गए। तो समझना कि किसी और के हो गए और रह गए तो पहन लेना। दोनों मत बिगाड़ना। पचास-सौ रुपये के लिए क्या भगवान के साथ बिगाड़ेंगे?

प्रश्नकर्ता : पर यह तो हररोज़ का है न?

दादाश्री : हररोज़ गायब नहीं जाते हैं। यह तो उसे डर है।

प्रश्नकर्ता : जाएँ वैसा है!

दादाश्री : बहुत सोचे न, उसीके जाते हैं। मेरे जैसे विचार नहीं करते, उनके जूते यों ही पड़े रहते हैं! जाते ही नहीं, नियम है, धर्म रक्षण करता है।

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा रखे तो धर्म रक्षण करता है?

दादाश्री : श्रद्धा किस तरह रहे? जहाँ दानत ही खोटी हो, वहाँ पर श्रद्धा किस तरह रहे? दानत साफ़ चाहिए, क्षत्रियों के जैसी। भगवान क्षत्रिय थे न। साफ़ दानतवाले तो जूतों से कहते हैं कि, 'तुझे जाना हो तो जाना, मैं तो भगवान के दर्शन करने जा रहा हूँ।' और आपको तो यह चाहिए और वह भी चाहिए!

जन्म से पहले और मरने के बाद...

'जन्म पहेला चालतो ने मूआ पछी चालशे
अटके ना कोई दि' व्यवहार रे,
सापेक्ष संसार रे....' - नवनीत।

क्या करना बाकी रहा है अब आपको? जन्म से पहले भी (संसार) चलता था और मरने के बाद भी चलेगा। यह तो बिना बात के रुक गए हो कि मुझे चलाना है! ऐसा है न, कि यह चलता रहता है और चलता रहेगा। आप अपने खाओ-पीओ और सो जाओ। आराम से ज़रा जूहु तक घूम आओ। इस तरह हाय-हाय किसलिए करते रहते हो? यह तो पूरा दिन काम-काम, हाय-हाय करते रहते हैं, जैसे कि कभी भी चिता में जाना

ही नहीं हो ऐसा मानकर करता रहता है! हाँ, पाँच सौ, हज़ार वर्षों तक चिता में नहीं जाना हो, तब तो हम समझें कि 'हाय-हाय' भले ही करे। अभी तो बेचारे को हज़ार वर्ष निकालने हैं!' यह तो ठिकाना नहीं कि कब चिता में जाना है, कब 'फेल' हो जाए वह कह नहीं सकते! यों स्कूल में सभी पास हुए हैं, पर इसमें फेल हो जाते हैं!

सच्चे धर्म की समझ

रोज़-रोज़ धर्म करें, पर पूरे दिन हाय-हाय, हाय-हाय करते रहते हैं! भगवान ने कहा है कि धर्म वह है कि जो धर्म होकर परिणमित हो। इतना ही यदि सारे भक्त समझ गए होते, तो तुरन्त सोच में पड़ जाते कि अरे धर्म होकर परिणमित तो होता नहीं। सौ मन साबुन डालें, पर कपड़ा वैसे का वैसा रहे। तब भला वह साबुन गलत है या डालनेवाला गलत या कपड़ा गलत? उतने का उतना आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता रहे, तो नहीं समझ जाएँ कि कुछ भूल रह जाती है।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान समझ में आता है न आपको?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं समझ में आता, ज़रा समझाइए।

दादाश्री : रात को ग्यारह बजे पाँच लोग आपके घर मेहमान बनकर आए, तब अंदर कुछ असर हो जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : वह तो आनेवाले के ऊपर आधारित है। मनचाहे मेहमान हों तो कुछ भी नहीं होता और अनचाहे मेहमान आएँ तो मन में होता है कि ये अभी कहाँ से आए?

दादाश्री : मनचाहे मेहमानों को देखकर अंदर आनंद हो, वह भी आर्तध्यान है और अनचाहे मेहमानों को देखकर अंदर 'ये कहाँ से आए' ऐसा हो, वह भी आर्तध्यान कहलाता है। मेहमान आएँ तब अंदर उकताहट होती है, परन्तु मुँह पर तो कहता है कि, 'आइए-आइए।' क्योंकि इज़्ज़त जाती है न! यह इज़्ज़तदार अगला जन्म बिगाड़कर इज़्ज़त रखने गया!! इससे तो मुँह पर कह दे न कि कहाँ से आए? जिससे आनेवाला और

बीता हुआ दोनों नहीं बिगड़ें! यह तो मुँह पर 'आइए-आइए' करता है और फिर धीरे से पत्नी से पूछता है कि, 'आपको क्या कह रहे थे कि कब जाएँगे? सामान तो बड़े-बड़े लाए हैं!' तब पत्नी कहे कि, 'मैं क्या जानूँ? दोस्त तो आपके हैं। मुझे क्या लेना-देना?' यहाँ पर पत्नी नहीं सँभालती पति को कि, 'अरे, अब अभी तो आए हैं और 'कब जाएँगे, कब जाएँगे' क्या कर रहे हो? थोड़े दिन, दस दिन-पंद्रह दिन रहने तो दो।' अब यह दुःख कब मिटे? धर्म किस तरह परिणाम दे? धर्म तो, ग्यारह लोग आएँ, तो भी धीरे से कहेगा, 'आइए, पधारिए।' दूसरा कुछ बखेड़ा नहीं। मन भी नहीं बिगाड़े। मन बिगड़ा हुआ हो तो मेहमान चेहरे पर से ही पहचान जाते हैं। यह आर्तध्यान कहलाता है। आर्तध्यान का फल तिर्यंचगति है।

रौद्रध्यान अर्थात् क्या? अपमान करें तो पहले लाल-पीला हो जाता है।'चंदूलाल में अक्कल नहीं है', ऐसा किसीने कहा कि तुरन्त ही 'अक्कल का बोरा' खड़ा हो जाता है! वह रौद्रध्यान कहलाता है। भीतर गुस्सा हो जाए, वह रौद्रध्यान कहलाता है। रौद्रध्यान का फल नर्कगति है। बोलो, भगवान ने न्याय से कहा है या अन्याय से? भगवान अन्याय से नहीं बोले होंगे न? वीतराग भगवान कभी भी अन्याय करते ही नहीं न!

अब यह अपमान या नुकसान सहन क्यों नहीं होता? तब कहें कि, 'धर्म जाना नहीं, धर्म सुना नहीं, धर्म पर श्रद्धा नहीं।' धर्म सुना ही नहीं है अभी तक। धर्म सुना हो और श्रद्धा बैठी हो तो धर्म उस घड़ी मदद करता है। यह तो धर्म खड़ा ही नहीं रहता न? आपको अकेले को ऐसा है, वैसा नहीं है। सच्चा धर्म तो वह कहलाता है कि सर्व दुःखों से मुक्त करे। दुःख बढ़ाए उसे धर्म कहा ही कैसे जाए?

मोक्ष का मार्ग तो...

मोक्ष का मार्ग एक ही है, दो मार्ग मोक्ष के नहीं हैं। जब देखो तब मोक्ष का एक ही मार्ग होता है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप - ये चार स्तंभ मोक्ष के हैं। उन्हें जब भी देखो, तब वैसे के वैसे ही होते हैं। फिर रास्ते उसके लिए अलग-अलग होते हैं। कोई क्रमिक मार्ग होता है, जिसमें जप-

तप करके आगे जाना है, सीढ़ियाँ चढ़कर जाना है। और एक मार्ग-अक्रम मार्ग है, जिसमें सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते नहीं जाना है, लिफ्ट में जाना है। जो अनुकूल हो उस मार्ग से जाना। आपको लिफ्ट में जाना है या सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते जाना है?

प्रश्नकर्ता : वह तो लिफ्ट में ही जाना आसान और सरल रहेगा न?

दादाश्री : तो हमारे पास आना, एक घंटे में ही आपको नक़द दे दूँगा। फिर चिंता नहीं होगी, *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दुःख) नहीं होगी और समाधि रहेगी! तब हम जानें कि मोक्ष जाने की तैयारी हुई। बेटियों की शादी करो, बेटों की शादी करो, कोई दिक्कत नहीं आएगी। सिर्फ हमारी आज्ञा में रहना। रहा जाएगा न आज्ञा में?

प्रश्नकर्ता : क्यों नहीं? मुझे तो इसकी ही ज़रूरत है। वह तो क्षणिक सुख है।

दादाश्री : अनंत जन्मों से इस क्षणिक सुख में ही रचे-बसे हो। करोड़ों जन्मों से ऐसे ही थे और आज भी ऐसे ही हो, उल्टे अधिक बिगड़ गए हो। जब तक आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता है, तब तक भगवान के सच्चे भक्त नहीं कहलाते। यों सीधे समझदार लगते हैं, पर छेड़ें तो फन फैलाते हैं! वे सच्चे भक्त नहीं कहलाते। भगवान की मूर्ति के दर्शन किए, पर भीतर बैठे हुए भगवान को नहीं पहचाना। अनंत जन्मों से मूर्ति को ही नमस्कार किए हैं न? भगवान को पहचाना नहीं है न? लोग औपचारिकता से भगवान के दर्शन करते हैं और भोजन करते समय चबा-चबाकर देखते हैं कि अंदर जायफल है, इलाइची है! यह तो उल्टे बिगड़ता जा रहा है। अब मोक्ष में कब जाओगे सेठ?

प्रश्नकर्ता : अब उसका उपाय आप बताइए कि क्या है?

दादाश्री : उपाय में तो 'ज्ञानी पुरुष' से माँग लेना कि 'साहब मेरी मुक्ति कीजिए।' आप तो कुछ बोलते ही नहीं न? आपको मुक्ति की इच्छा ही नहीं है न! माँग तो करनी पड़ेगी न? हम जौहरी की दुकान में गए हों और सिर्फ देखते रहें और बोले नहीं, तब तक व्यापारी को किस तरह

पता चले कि आपको क्या चाहिए? इसलिए मोक्ष, दिव्यचक्षु जो-जो चाहिए, उन सबका टेन्डर भर के लाना। हम एक घंटे में ही सबकुछ दे देंगे।

स्वभावभाव, वह स्वधर्म

प्रश्नकर्ता : धर्म किसे कहें? वही समझना था।

दादाश्री : जो हमें धरकर रखे, गिरने नहीं दे, वह धर्म कहलाता है। अभी तो आप गिर रहे हो, उसका आपको पता ही नहीं। इस कलियुग के सभी मनुष्य स्लिप हो रहे हैं, धीरे-धीरे अधोगति में जा रहे हैं।

धर्म का एक ही अर्थ नहीं है। धर्म कितनी तरह के हैं? एक डिग्री से लेकर तीन सौ साठ डिग्री तक के धर्म हैं। हर एक व्यक्ति के अलग-अलग व्यूज़ (दृष्टिकोण) के अलग-अलग धर्म हैं, इसलिए मतभेद हैं। अपने देश में जो धर्म चलते हैं वे धर्म क्या हैं कि बुरे कर्म छुड़वाते हैं और अच्छे कर्म करवाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी उसे ही धर्म कहते हैं?

दादाश्री : नहीं। उसे सच्चा धर्म नहीं कहा जा सकता। इस सोने का धर्म क्या है? उसे जंग लगता है क्या? यानी खुद के स्वभाव में रहे तो धर्म कहलाता है। यानी आप आत्मा हो, तो आत्मस्वरूप में रहो, तो ही धर्म कहलाएगा। यह तो देहाध्यास है। बुरे कर्म छुड़वाता है और अच्छे कर्म करवाता है। वह सब भ्रांति ही है। अच्छे कर्म भी भ्रांति है और बुरे कर्म भी भ्रांति है, लेकिन उस कारण से मैं अच्छे कर्मों को छोड़ देने को नहीं कहता हूँ। बुरे में से अच्छे में जाते हैं, वह अच्छी बात है, लेकिन फिर भी भ्रांति नहीं जाती है। भ्रांति जाने के बाद सच्चे धर्म की शुरूआत होती है।

वस्तु स्वभाव में परिणमित हो, वह धर्म है! यानी आप आत्मा हो। खुद का क्या स्वभाव है? तो कहें, 'निरंतर परमानंद।' परमानंद में रहा, तो बाहर की वस्तु आपको असर नहीं करेगी। वही धर्म है और वह मोक्ष तक पहुँचाता है-मुक्ति देता है।

❖❖❖❖❖

(१५)
आचरण में धर्म

धर्म और आचरण

प्रश्नकर्ता : धर्म का आचरण नहीं होता है, दादा।

दादाश्री : भगवान के लिए आचरण की क़ीमत नहीं है, हेतु की क़ीमत है। आचरण को भगवान ने 'नो कर्म' कहा है, वे नहीं जैसे कर्म हैं। हेतु सहित आचार हो उसकी तो बात ही अलग! धर्म तो, एक ही पैसा दिया हो, पर सच्चे दिल से दिया हो, वह कहलाता है। जो वस्तु हमें स्थिरता करवाए वह धर्म! 'ज्ञानी पुरुष' स्थिरतावाले होते हैं, इसलिए जो कोई भी उनसे डोरी बाँध जाए, उसकी नाव स्थिर रहती है।

मनुष्यत्व की सार्थकता

प्रश्नकर्ता : यह मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं जाए, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : 'यह मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं जाए' उसका ही पूरे दिन चिंतवन करें तो वह सफल होगा। इस मनुष्य जन्म की चिंता करनी है, जबकि लोग लक्ष्मी की चिंता करते हैं! कोशिश करना आपके हाथ में नहीं है, पर भाव करना आपके हाथ में है। कोशिश करना दूसरे की सत्ता में है। भाव का फल आता है। वास्तव में तो भाव भी परसत्ता में है, परन्तु भाव करो तो उसका फल आता है।

क्लेश, वहाँ धर्म नहीं

क्लेश यानी भयंकर संसार रोग। जिससे क्लेश उत्पन्न नहीं हो उसे

धर्म कहते हैं। संसार में खाए-पीए उसमें हर्ज नहीं है, पर जो क्लेश उत्पन्न होता है, वह नहीं होना चाहिए। भगवान क्या कहते हैं कि मोक्ष नहीं मिले उसमें हर्ज नहीं है, परन्तु क्लेश नहीं हो तो संसार में रहना अच्छा है। क्लेश तो भयंकर रोग कहलाता है, टी.बी. से भी अधिक भयंकर रोग कहलाता है। 'क्लेश नहीं गया तो तू धर्म ही नहीं जानता', ऐसा भगवान ने कहा है। क्लेश हो तो जानवरगति आती है। इसलिए दो बातें सीख लेनी हैं। क्लेश नहीं होता हो तो संसार में रहना, नहीं तो मोक्ष का मार्ग ढूंढना। जहाँ थोड़ा भी क्लेश है-वहाँ धर्म नहीं है और जहाँ धर्म है-वहाँ क्लेश नहीं है। क्लेश का अर्थ तो मानसिक रोग है। उसके कारण तो अगला जन्म बिगड़ता है। देह को रोग हो जाए तो अगला जन्म नहीं बिगड़ता, फिर भी उसके लिए तो इलाज करवाते हैं। तो फिर क्लेश के रोग के इलाज की खोज नहीं करनी चाहिए? उसकी तो तुरन्त खोज करनी चाहिए, कि किस कारण से क्लेश हुआ है!

अक्रम विज्ञान : नया ही अभिगम

पूरा संसार गलतफहमी के कारण है। मैं लोगों से कहूँ कि, 'दया रखो, शांति रखो, सत्य बोलो।' तो लोग मुझे कहेंगे कि, 'आप ही दया रखिए, हमसे नहीं होता।' हज़ारों वर्षों से शास्त्र भी यही गाते रहते हैं कि 'सच बोलो, दया रखो, शांति रखो, क्रोध मत करो' तब लोग कहते हैं कि, 'हमें लाख सच बोलना है, पर सच बोला नहीं जाता। लाख क्रोध नहीं करना है, पर हो जाता है। इसलिए आपके शास्त्र काम के नहीं हैं।' ऐसा करके लोगों ने पुराणों-शास्त्रों को परछत्ती पर चढ़ा दिया है। हम जगत् को नया ही साइन्स देना चाहते हैं। दया रखनी, शांति रखनी, सत्य बोलना, वे सब इफेक्ट्स हैं। लोगों के पास 'इफेक्ट्स' का ज्ञान है, किसीके पास 'कॉज़ेज़' का ज्ञान है ही नहीं, वह अज्ञान है। हम कॉज़ेज़ का स्पष्टीकरण देना चाहते हैं। ओपन टु स्काइ कर दे, वह ज्ञान है। ज्ञान तो क्रियाकारी होना चाहिए। अनुभवजन्य ज्ञान हो तभी क्रियाकारी होता है। बाक़ी पुस्तकों के ज्ञान से तो भटके ही हैं। 'रिलेटिव' धर्म कैसा होना चाहिए कि जो परिणाम लाए।

सब धर्मों का कुदरती प्रकार से बदलाव होनेवाला है और यह

'अक्रम मार्ग' तो ऐसा सरल रास्ता निकालेगा कि धर्म सभी को एकदम आसान लगेगा और तुरन्त उसका फल मिलेगा। धर्म किसे कहा जाता है? जो परिणमित हो वह धर्म, जैसे हम खीर खाएँ उसके बाद हमारी भूख खत्म हो जाती है, वैसे ही जो 'स्वरूपज्ञान' देते हैं उससे किसी काल में किसी जन्म में नहीं हुई हो, वैसी अंतरशाता होती है। बाह्य अशाता भले हो, परन्तु अंतरशाता निरंतर रहती है। जगत् में बाह्यशाता होती है, पर अंतरशाता किसीको भी नहीं होती।

अपना साइन्स क्या कहता है कि तू चोरी करता है या तुझसे झूठ बोला जाता है, उसमें हमें हर्ज नहीं है, पर उसका तू 'इस तरह से' प्रतिक्रमण करना। हम चोर से ऐसा नहीं कहते कि तू चोरी मत कर। हम उसे कहते हैं कि तू चोरी करता है, उसका यह फल है, इसलिए समझ लेना। यह चोरी करता है, झूठ बोलता है, क्रोध करता है, वह सब अनिवार्य रूप से करना पड़ता है। उसमें हम उसे डाँटें कि ऐसा क्यों करता है तो वह ज़्यादा करेगा और मन में वापिस चोर नक्की करेगा कि 'चोरी तो करूँगा ही, तू कौन है मुझे डाँटनेवाला?' इसलिए प्रेम से समझाओ, प्रेम से सभी रोग जाते हैं। शुद्ध प्रेम 'ज्ञानी पुरुष' के पास से ही या उनके फोलोअर्स के पास से ही मिलेगा।

क्रोध के सामने क्षमा, कपट के सामने ऋजुता, मान के सामने मृदुता की आवश्यकता पड़ेगी। क्रोध हो जाए तो होने देना। मान, लोभ हों तो होने देना, पर उनका प्रतिक्रमण करके बदल देना। उससे सबसे बड़ा धर्मध्यान होता है। कुचारित्र का विचार आए तो उसमें हर्ज नहीं है, उनसे घबराना मत, लेकिन उनका प्रतिक्रमण करना। यह लिफ्टमार्ग है, इससे तेज़ गति से आगे बढ़ा जाता है। धर्मध्यान आए तब से ही व्यवहार समकित के चिन्ह दिखते हैं। कुचारित्र का विचार आए तो हम उसे कहें, 'आओ। चाय पीओ, आप आ गए! अब 'ज्ञानी पुरुष' बताते हैं वैसा मैं करूँगा।' यह चौथे दर्जे का धर्मध्यान कहलाता है।

आज्ञा ही धर्म

यानी कौन-सा धर्म करना है? 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञा पालनी वह और धर्म क्या है? तब कहें, खुद के स्वरूप में रमणता करनी वह। लौकिक धर्म अर्थात् भगवान की आज्ञा में रहना, वह।

'ज्ञानी पुरुष' को खुश रखने से अधिक उत्तम दूसरा कोई धर्म दुनिया में नहीं है और हमारा *राजीपा* (गुरजनों की खुशी) उत्पन्न करना आपके ही हाथ में है। आप जैसे-जैसे हमारी आज्ञा में रहकर ऊँचे आते जाएँगे, वैसे-वैसे आप पर हमारा *राजीपा* बढ़ेगा। भगवान ने कहा है कि 'ज्ञानी' को राज़ी करने में उनकी सर्व इच्छाओं की प्रशंसा करना सीखोगे, तब भी मोक्ष है! हमारी एक ही आज्ञा पाले, तो वह आज्ञा ही उसे ठेठ मोक्ष तक पहुँचा दे, वैसा है।

ज्ञान के अनुसार प्रवर्तन

एक दर्जी को ऐसा ज्ञान फिट हो गया कि पिंजरे में चूहे पकड़कर छोड़ने से कौए को भोजन मिलेगा, दूसरे को फायदा हो रहा है। अब उस ज्ञान के कारण चूहों को मारना उसके हिस्से में आता है। हमने उसका वह ज्ञान बदल दिया, वह श्रद्धा के कारण उसे फिट हो गया कि चूहे मारना नुकसानदेह है, उसके बाद वैसा ज्ञान क्रिया में आता जाता है। श्रद्धा ज्ञान से बदलनी चाहिए। समझपूर्वक बदली जानी चाहिए, चारित्र को फिर हमें नहीं देखना है। वह तो उसका पहले का इफेक्ट हो तब तक चारित्र नहीं बदलता। अब वह जब चूहे मारने जाएगा तब उसे होगा कि नहीं मारने चाहिए। फिर भी पूर्व के इफेक्ट के कारण मार देगा, तब उसे भीतर होता रहेगा कि यह गलत हो रहा है। फिर भी यह ज्ञान शुभाशुभ का है। शुद्ध ज्ञान में तो ऐसा कुछ भी नहीं होता है। क्रिया में आए या नहीं आए पर ज्ञान डिगना नहीं चाहिए। श्रद्धा से ज्ञान एक्ज़ेक्ट रहना चाहिए। सच्चा ज्ञान जानने की ही ज़रूरत है, फिर उस ज्ञान पर से श्रद्धा कभी भी चल-विचल नहीं होनी चाहिए। क्रियाएँ फिर भले जो भी हों वे नहीं देखी जातीं।

प्रश्नकर्ता : वचनबल से 'एक्ज़ेक्टली' रहता है न?

दादाश्री : वचनबल से क्रिया में परिवर्तन होता है। वचनबल से गलत करते हुए रुक जाता है।

सीधे के लिए शक्ति माँगनी पड़ती हैं

जिस अज्ञान पर श्रद्धा बैठ गई हो, तो वह क्रिया बहुत देर तक चलती है और थोड़ी श्रद्धा हो तो वह क्रिया वेग से खत्म हो जाती है। थोड़ा-सा अज्ञान हो तो वह जल्दी खत्म हो जाता है। अज्ञान का ज्ञान जानने में उसकी *पुद्गल* शक्तियाँ खर्च होती हैं और ज्ञान का ज्ञान जानने के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है कि मुझे ये शक्तियाँ दीजिए। अज्ञान का ज्ञान जानने के लिए तो *पुद्गल* शक्तियाँ यों ही मिलती ही रहती है। जब कि ज्ञान के लिए वैसी शक्तियाँ नहीं मिलती हैं। असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, उनमें *पुद्गल* की शक्तियाँ सरलता से मिलती ही रहती है। जब कि उससे विरुद्ध सत्य, ब्रह्मचर्य, के लिए शक्तियाँ माँगनी पड़ती हैं। वह ज्ञान-दर्शन से जानकर, श्रद्धा से शक्तियाँ माँगने से शक्तियाँ मिलती हैं। अज्ञान नीचे उतार देनेवाला है और उसमें *पुद्गल* शक्तियाँ आती ही रहती हैं। जब कि ज्ञान ऊँचा चढ़ानेवाला है, उसके *पुद्गल* विरोधी होने के कारण शक्तियाँ माँगनी पड़ती हैं, तभी ऊँचा चढ़ा जा सकता है।

प्रार्थना से शक्तियाँ प्राप्त

प्रश्नकर्ता : ऊँचा चढ़ने के लिए ये शक्तियाँ किस तरह माँगें। और किससे माँगें?

दादाश्री : खुद के शुद्धात्मा से, 'ज्ञानी पुरुष' से शक्तियाँ माँगी जा सकती हैं और जिन्हें स्वरूपज्ञान नहीं हो, वे खुद के गुरु, मूर्ति, प्रभु जिन्हें मानता हो, उनके पास से शक्तियाँ माँगनी चाहिए। जो-जो खुद में गलत दिखे उसका लिस्ट बनाना चाहिए और उसके लिए शक्तियाँ माँगें। श्रद्धा से, ज्ञान से, जो गलत है, उसे नक्की करके रखो कि यह गलत ही है। उसके प्रतिक्रमण करो, ज्ञानी के पास से शक्तियाँ माँगो कि ऐसा नहीं होना चाहिए, तब वह जाएगा। बड़ी गाँठें हों, वे सामायिक से विलय हो जाती हैं और दूसरे छोटे-छोटे दोष तो प्रार्थना से ही खत्म हो जाते हैं। बिना प्रार्थना से जो उत्पन्न हुआ है, वह प्रार्थना से खत्म हो जाता है। यह सब अज्ञान से उत्पन्न हो गया है। पौद्‌गलिक शक्तियाँ प्रार्थना से खत्म हो जाती हैं।

फिसल जाना आसान है और चढ़ना मुश्किल है। क्योंकि फिसलने में पौद्‌गलिक शक्तियाँ होती हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रार्थना मतलब क्या?

दादाश्री : प्र + अर्थना = प्रार्थना। प्र यानी विशेष अर्थ की माँग करना, वह। भगवान के पास से और अधिक अर्थ की माँग करना, वह।

प्रश्नकर्ता : जगत् में प्रार्थना करते हैं, उसका फल तो आता है न?

दादाश्री : प्रार्थना सच्ची होनी चाहिए, वैसा कोई ही होता है।

प्रश्नकर्ता : सौ में एक होता है न?

दादाश्री : होता है, कोई हृदय शुद्धिवाला हो उसकी प्रार्थना सच्ची होती है! लेकिन प्रार्थना करते समय चित्त दूसरी जगह पर हो तो वह सच्ची प्रार्थना नहीं कहलाती।

प्रश्नकर्ता : प्रार्थना करें तो किसके लिए और किसलिए करें?

दादाश्री : प्रार्थना अर्थात् स्वयं खुद की खोज करता है। भगवान खुद के भीतर ही बैठे हैं, पर उनसे पहचान नहीं हुई है इसलिए मंदिर में या जिनालय में जाकर दर्शन करते हैं वह परोक्ष दर्शन है।

प्रार्थना : सत्य का आग्रह

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति है, वह केवल सत्य के रास्ते पर चलता है और दूसरा है वह प्रार्थना करता है, तो दोनों में से कौन सच्चा है? दोनों में से किसे भगवान जल्दी मिलेंगे?

दादाश्री : प्रार्थना करे उसे।

प्रश्नकर्ता : 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा कहा जाता है न?

दादाश्री : यह सत्य ईश्वर नहीं है। यह सत्य तो बदल जाए ऐसा है। यह आप मानते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ' वह गलत ही है न? यह सत्य विनाशी है, यह खरा सत् नहीं है। खरा सत् तो जो अविनाशी है वही सत्

है। वही सत्-चित्त आनंद स्वरूप है।

इस जगत् का सत्य कैसा है? आप ऐसा कहो कि, 'इस व्यक्ति को मैंने पैसे दिए हैं, वह लुच्चा है, वापिस नहीं दे रहा।' तब दूसरा व्यक्ति आपसे कहेगा कि, 'किचकिच किसलिए कर रहे हो? घर जाकर खा-पीकर चुपचाप सो जा न शांति से, कलह किसलिए कर रहे हो?' आप उसे कहो कि, 'कलह करनी चाहिए। मेरा सत्य है।' तो आप सबसे बड़े गुनहगार हो। सत्य कैसा होना चाहिए? साधारण होना चाहिए। सत्य में नैतिकता होनी चाहिए। उसमें किसीको धोखा या नुकसान नहीं होता, लुच्चाई नहीं होती। चोरी नहीं होती। नैतिकता ही चाहिए, दूसरी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। ये सत्य को पकड़कर जो बैठे थे, वे अंत में दरिया में गिरे हैं!

सत्य का आग्रह करना, वह पोइज़न है और असत्य का आग्रह करना, वह भी पोइज़न है।

प्रश्नकर्ता : जिस तरह सत्य के आप विभाग बनाते हैं, वैसे प्रार्थना में भी विभाग होते हैं न? दंभी प्रार्थना आती है न?

दादाश्री : प्रार्थना बिल्कुल सच्ची होनी चाहिए, गप्पबाज़ी नहीं चलेगी। तोता आयाराम-गयाराम बोलता है, राम-राम बोलता है, वह समझकर बोलता है या बिना समझे? उसी प्रकार ये प्रार्थनाएँ समझकर, विचारपूर्वक, हृदय पर असर हो वैसी होनी चाहिए।

❖❖❖❖❖

(१६)
'रिलेटिव' धर्म : विज्ञान

'रिलेटिव' धर्म, डेवलप होने के लिए

'रिलेटिव' धर्म, वह स्वभाविक धर्म नहीं है, जब कि 'रियल' धर्म स्वभाविक धर्म है। वह स्वभाविक सुख उत्पन्न करता है। वह तो 'खुद कौन है' ऐसा जानता है, 'यह सब कौन चलाता है' यह जानें तब मोह टूटता है। नहीं तो 'यह' मेरी बहन है और मौसी है, उस मौसी पर से भी मोह टूटता नहीं है न! यदि जल गए हों तो कोई पूछ जाता है, वर्ना लगाव किसीको भी नहीं होता।

जगत् के सारे 'रिलेटिव' धर्म विरोधाभासवाले हैं। 'रिलेटिव' धर्म किसे कहा जाता है कि इस धोती को शुद्ध करना हो तो साबुन से धोना पड़ता है, पर फिर साबुन अपना मैल छोड़ता जाता है। साबुन का मैल निकालने के लिए टिनोपॉल डालो तो वह टिनोपॉल वापिस अपना मैल छोड़ता जाता है! वैसे ही ये लौकिक गुरु आपका मैल निकालते हैं और फिर खुद का मैल छोड़ते जाते हैं! सारे 'रिलेटिव' धर्म मैल से मैल निकालने का काम करते हैं!

वीतरागी ज्ञान सुना नहीं, जाना नहीं और श्रद्धा में नहीं। यदि वैसा हुआ होता तो काम ही हो गया होता! वीतरागी ज्ञान, वीतरागी पुरुष के बिना नहीं मिलता। परोक्ष भजना से संसार खड़ा होता है, पुण्य बंधता है। उससे संसार मीठा लगता है और उससे तो संसार में और अधिक गहरे उतरता है, इससे तो कड़वा अच्छा।

जो 'रिलेटिव' धर्म चल रहे हैं वे क्या कहते हैं कि अच्छे कार्य

कर। भले अहंकार से कर, पर उसका फल अच्छा मिलेगा, पुण्य बंधेगा। बाजरा बोया हो तो बाजरा मिलेगा और कुच (घास) बोया हो तो कुच मिलेगा। इसलिए तुझे अनुकूल हो वह उगाना। खराब विचारों को उखाड़ देना पड़ेगा। पर यह तो क्या करता है कि अच्छे बीज डालता है और बेर के भी डालता है! तो ये बेर की झाड़ियाँ उग निकली हैं! 'रिलेटिव' सारा मिक्सचर है और 'रियल' स्वतंत्र है। जिसमें परिवर्तन होता है वह 'रिलेटिव' का है, 'रिलेटिव' अर्थात् जिसमें मिलावट हो गई है वह और 'रियल' अर्थात् शुद्ध! 'रिलेटिव' की चाहे जितनी स्लाइस करें तो उनमें से एक भी 'रियल' की स्लाइस मिलेगी क्या? वीतरागों ने कहा है कि यह आप करते हो, उससे आगे तो बहुत कुछ है। फिर भी ये मार्ग हैं, ऐसे करते-करते आगे बढ़ा जाएगा। हर एक धर्मवाला अपने धर्म को अंतिम स्टेशन मानता है, फिर भी उसके लिए ठीक है, ऐसा माने तो ही डेवलप होता जाएगा।

वीतराग धर्म ही मोक्षार्थ

ज्ञान तो अपार है, लेकिन वीतरागों ने जिस ज्ञान को जीत लिया है, उससे आगे ज्ञान ही नहीं है। किसी जगह पर 'हारें' नहीं, वे ही वीतराग! शायद कभी देह हार जाए, मन हार जाए, वाणी हार जाए पर वे खुद नहीं हारते। वीतराग कैसे सयाने होते हैं! वीतरागों का धर्म तो सैद्धांतिक है, अर्थात् नक़द फल मिलता है। मोक्ष का नक़द फल मिलता है! जो मोक्षदाता भगवान हैं, वे निष्पक्षपाती हैं। वीतराग भगवान भीतर हैं, वे निष्पक्षपाती हैं। वीतराग धर्म किसे कहते हैं कि जो ३६० डिग्री का धर्म हो, संपूर्ण धर्म हो। सच्चा धर्म, रहस्यपूर्ण धर्म निष्पक्षपाती होता है। पक्षपात गलत नहीं है, वह स्टेन्डर्ड में रखता है और आउट ऑफ स्टेन्डर्ड में निष्पक्षपात है। 'यह' तो साइन्स है, धर्म नहीं। हिन्दू धर्म, जैन धर्म, क्रिश्चियन धर्म, वे सभी धर्म हैं। साइन्स एक ही होता है और धर्म अलग-अलग होते हैं।

'रिलेटिव' धर्म की मर्यादा

जगत् के धर्म 'रिलेटिव' धर्म हैं, वे 'रिलेटिव' में हेल्प करते हैं, 'रियल' की ओर लाने में हेल्प करते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जो 'रिलेटिव' कहते हैं, उसकी मर्यादा क्या है?

दादाश्री : पाँच इन्द्रियों से जो अनुभव में आता है, जो होता है, वह सारा ही 'रिलेटिव' की सीमा में होता है।

प्रश्नकर्ता : 'रिलेटिव' का 'रियल' के साथ संबंध है क्या?

दादाश्री : है ही न! 'रियल' था तभी 'रिलेटिव' खड़ा हुआ न! 'रियल' के संसर्ग से 'रिलेटिव' उत्पन्न हुआ है, अवस्था उत्पन्न हुई है और जो अवस्था है न, वह विनाशी है।

प्रश्नकर्ता : 'रियल' जब तक प्राप्त नहीं हुआ हो, तब तक 'रिलेटिव' की ज़रूरत है न?

दादाश्री : जब तक 'रियल' नहीं मिला, तब तक 'रिलेटिव' ही होता है। 'रियल' प्राप्त होने के बाद ही 'रिलेटिव' अलग होता है।

पारिणामिक धर्म का थर्मामीटर

दादाश्री : अभी क्या कर रहे हो?

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र की पुस्तकों का अध्ययन और धर्म का अध्ययन करता हूँ।

दादाश्री : पुस्तकें पढ़ने मात्र से काम नहीं हो जाता, वहाँ तो कषाय रहित होना पड़ेगा। 'चंदूभाई में अक्कल नहीं है', ऐसा आपके सुनने में आए तो आपको दु:ख होगा या नहीं होगा? असर होगा उसका?

प्रश्नकर्ता : होगा।

दादाश्री : तो उस शब्द से चोट लगी आपको। जब तक शब्दों से चोट लगती है, तब तक धर्म का आपने कुछ भी प्राप्त नहीं किया, ऐसा मानना। पत्थर लगे तो वह ठीक है, उसकी मलहम पट्टी-दवाई करनी पड़ती है। परन्तु यह शब्द की चोट लगती है, वह धर्म का फल नहीं है!

धर्म का फल वह है कि शब्द से चोट नहीं लगे। अपने पास कुछ तो होना चाहिए न कि जो बताए कि कितना बुख़ार चढ़ा और कितना उतरा?

मुख्य भावना, मोक्षमार्ग में

तीन चीज़ों की मोक्षमार्ग में ज़रूरत है:

१. आत्मा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा।

२. 'ज्ञानी पुरुष' प्राप्त करने की तीव्र इच्छा।

३. 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलें तब तक 'ज्ञानी पुरुष' प्राप्त हों, ऐसी भावना करना।

प्रथम 'ज्ञानी पुरुष' के लिए भावना करनी चाहिए, वे मिलें तो लाभ हो जाता है। बस इतना ही मूल रास्ता है, दूसरा सब व्यवहार धर्म है। और व्यवहार धर्म में निश्चय धर्म है तो बस ये तीन वाक्य ही हैं। इतना समझ में आए तो हल आ जाएगा।

'पूरे ब्रह्मांड के जीव-मात्र के रियल स्वरूप को अत्यंत भक्ति से नमस्कार करता हूँ। रियल स्वरूप, वह भगवत् स्वरूप है, इसलिए पूरे जगत् का भगवत् स्वरूप से दर्शन करता हूँ।'

यह वाक्य यदि समझ जाए, तब भी धर्म प्राप्त कर लिया कहा जाएगा।

ये सारे धर्म 'रिलेटिव' धर्म हैं। 'रिलेटिव' धर्म अर्थात् भौतिक दुःख निकालकर भौतिक सुख देनेवाले हैं, ये मोक्ष देनेवाले नहीं हैं। 'रिलेटिव' अर्थात् व्यू पोइन्ट! एक-एक व्यू पोइन्ट में लाखों लोग होते हैं।

धर्माधर्म आत्मा

अधर्म को धक्का मारता रहे वह धर्म, उसे धर्माधर्म कहा जाता है। जहाँ भी अधर्म हो वहाँ धर्म होता ही है, क्योंकि अधर्म निकालने के लिए ही धर्म है। आत्मा की तीन दशाएँ हैं:

१. धर्माधर्म आत्मा (मूढ़ात्मा)

२. ज्ञानघन आत्मा (अंतरात्मा)

३. विज्ञानघन आत्मा (परमात्मा)

ज्ञानघन आत्मा

सिद्धांत कब कहलाता है? धर्माधर्म पद में से आगे बढ़े और 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा का पात्र हो जाए, तब ज्ञानघन आत्मा में आता है। आत्मा ज्ञानघन है और अविनाशी है। ज्ञानघन अर्थात् क्या कि 'वॉट इज़ रियल एन्ड वॉट इज़ रिलेटिव?' यानी कि शाश्वती और अशाश्वती वस्तु को पहचानने लगे तब थियरी ऑफ रियालिटी में आता है और मोक्ष होता है। तब शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठता है, अलख-निरंजन का लक्ष्य बैठता है, तब काम होता है। यह संसार 'रिलेटिव' है और हम 'रियल' हैं। यानी हमें 'रियल' के पक्ष में रहना है और 'रिलेटिव' का *निकाल* करना है। चिपटे हुए भूत का *निकाल* करना पड़ेगा न? यह तो साइन्स है। साइन्स में किसीको मतभेद नहीं होता। मतभेद धर्माधर्म में होता है। जितने धर्म चलते हैं, उन सभी में मतभेद होता है, विकल्प होते हैं। विकल्प कब तक कहलाते हैं? धर्माधर्म आत्मा है, तब तक। अधर्म को धक्के मारता रहे, वह धर्म। अरे, अधर्म के साथ ठीक नहीं लगता हो तो राग-द्वेष के बिना रह न, पर किस तरह रहे? अधर्म के प्रति द्वेष और धर्म के प्रति राग!! धर्माधर्म आत्मा, वह मिथ्यात्व दशा है। 'रिलेटिव' धर्म धर्माधर्म कहलाते हैं। 'रिलेटिव' धर्म करे तो अच्छा कहलाता है, आगे जाकर अच्छा खाना-पीना मिलेगा और गाड़ी चलेगी। पर ये सब सिगड़ी के सुख कहलाते हैं। सिगड़ी कहीं कोट से चिपटाई जाती है? मोक्ष जाने के लिए तो अधर्म को या किसीको भी धक्का नहीं मारना पड़ता। मोक्ष जाने के लिए तो अधर्म का और धर्म का, दोनों का *निकाल* करना है। धर्माधर्म वह देह का, मन का, बुद्धि का, प्रकृति का स्वभाव है और आत्मा का वीतराग स्वभाव है। यदि आपको वीतराग स्वभाव में रहना हो तो धर्म के प्रति प्रेम स्थापित मत करना और अधर्म के साथ किच-किच मत करना। 'ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एन्ड रियल इज़ परमानेन्ट'।

ज्ञानी पुरुष ज्ञानघन आत्मा दे सकते हैं, जो धर्माधर्म से निकाल लेता है। धर्माधर्म आत्मा है, तब तक भटकन है। धर्म का फल भौतिक सुख और अधर्म का फल भौतिक दु:ख हैं। धर्म से संसार प्राप्त होता है। 'थियरी ऑफ रियालिटि' में आया, तब ज्ञानघन आत्मा प्राप्त होता है। उसके बाद क्या रहा? 'थियरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म!' वह विज्ञानघन आत्मा है।

विज्ञानघन आत्मा

ज्ञान अर्थात् आत्मा और विज्ञान अर्थात् परमात्मा। यह तो साइन्स है। आत्मा-परमात्मा का साइन्स अर्थात् सिद्धांत! उसमें किसी जगह पर अंश मात्र चेन्ज नहीं होता और ठेठ आरपार ले जाता है। ज्ञानघन आत्मा में आने के बाद, अविनाशी पद को प्राप्त करने के बाद विज्ञानघन को जानना चाहिए। विज्ञानघन अर्थात् सभी में 'मैं ही हूँ', ऐसा दिखे वह विज्ञानघन आत्मा कहलाता है - बंधा हुआ है, फिर भी मुक्त रहे! 'ज्ञानी पुरुष' विज्ञानघन आत्मा होते है! 'थियरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म' में ही नहीं परन्तु खुद थीयरम ऑफ एब्सोल्यूटिज़म में होते हैं। पूरे वर्ल्ड का पुण्य जागा कि यह अक्रम विज्ञान निकला, विज्ञानघन आत्मा निकला!!

पूरा वर्ल्ड सायन्स के रूप में है, फिर भी आज लोग साइन्स को जानते नहीं हैं, इसलिए धर्म के पीछे दौड़ते रहते हैं। परन्तु यदि साइन्स जान ले कि इतनी वस्तु है और यह किस तरह चलती है, तो वह मुक्त हो जाए। यही अत्यंत गहन पहेली है।

गच्छ-मत, वहाँ 'रिलेटिव' धर्म

जैन धर्म, वैष्णव धर्म, मुस्लिम धर्म, पारसी धर्म, ईसाई धर्म वगैरह सब 'रिलेटिव' धर्म कहलाते हैं। इन धर्मों को और 'इस' का कुछ लेना-देना नहीं है। यह 'रियल' वस्तु है। 'रिलेटिव' धर्म अर्थात् स्टेप बाय स्टेप आगे बढ़ाता है। उसमें भी 'रिलेटिव' धर्म सच्चे नहीं हैं। जहाँ *गच्छ* (सम्प्रदाय का एक वर्ग)-मत हों, वहाँ एक भी धर्म सच्चा नहीं होता। गच्छ और मत हो, वहाँ मोक्ष का मार्ग ही नहीं होता। मोक्षमार्ग होता ही नहीं। पक्ष और मोक्ष दोनों विरोधाभासी हैं। जहाँ गच्छ-मत है, वहाँ संसारी से

भी अधिक बंधन है। मोक्ष तो वीतराग धर्म से है। संप्रदाय अर्थात् एकांतिक कहलाता है। वीतराग धर्म एकांतिक नहीं होता, अनेकांतिक होता है। वीतराग, संप्रदाय से बाहर होता है। वीतराग धर्म अर्थात् मतभेद रहित। अपना अनेकांत मार्ग है। यहाँ पारसी हैं, जैन हैं, मुस्लिम हैं, वैष्णव हैं। यहाँ सभी को माफ़िक आए, वैसी बातें होती है। यहाँ स्यादवाद वाणी है। एकांतिक धर्म हो वहाँ एक ही प्रकार के लोग, एक मतवाले ही सब लोग आते हैं, दूसरा कोई नहीं जाता। वीतराग वाणी से सब दु:खों का क्षय होता हैं। मत और गच्छ हैं, तब तक मोक्षमार्ग तो क्या पर धर्म भी प्राप्त नहीं किया, ऐसा कहा जाएगा। 'प्राप्त कर लिया' नहीं कहा जाएगा!

प्रश्नकर्ता : 'प्राप्त कर लिया' कब कहा जाएगा?

दादाश्री : क्लेश जाए, चिंता जाए, तब 'प्राप्त कर लिया' कहा जाएगा। जिसमें गालियाँ दे तो भी क्लेश-चिंता नहीं हो, धौल मारे तो भी क्लेश नहीं हो, अभी गाड़ी में बिठाएँ तो भी क्लेश नहीं हो और गाड़ी में से तुरन्त उतार दें तो भी क्लेश नहीं हो, तो उसे 'प्राप्त कर लिया' कहा जाएगा! नहीं तो 'प्राप्त कर लिया' कहलाएगा ही कैसे?

धर्मसार अर्थात्....

दुनिया में दो प्रकार के सार हैं : धर्मसार और समयसार।

धर्म किसे कहते हैं? धर्मसार प्राप्त हुआ तो धर्म हुआ कहा जाता है। धर्मसार किसे कहते हैं? आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हों, उसे। सभी खाए, पीए, घूमे, फिरे, व्यापार करे, परन्तु रौद्रध्यान और आर्तध्यान नहीं हों, उसे धर्मसार कहा है और मर्म का सार अर्थात् मुक्ति। यह धर्म का जो मर्म है, उसका सार निकला, वही मुक्ति कहलाती है। धर्म के सार से मुक्ति नहीं होती, परन्तु धर्मसार में से मर्म उत्पन्न होगा। और मर्म सार से मुक्ति होगी।

सभी धर्मों का सार क्या हैं? आर्तध्यान और रौद्रध्यान गया? नहीं गया तो तू धर्म में नहीं है। कम हुआ? तो कहते हैं, 'हाँ।' कम हुआ हो वैसे लोगों को चलो मान लें कि यह धर्म में है। लेकिन जिन्हें कम नहीं हुआ, खूब होता है, वे धर्म में हैं ऐसा स्वीकार नहीं होता।

धर्मसार किसे कहा जाता है? आपको छेड़े-करें तो भी किसीका दोष नहीं दिखे, उसे। जगत् का सार क्या है? तो कहे, विषयसुख। धर्म का सार क्या है? तो कहे, आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हों, वह। धर्मसार, जगत् में मुख्य सार है। धर्मसार प्राप्त नहीं हुआ, वह धर्म ही गलत है। फिर जैन हो या वैष्णव हो या चाहे जो हो, वे ग्रहण की हुई सारी बातें गलत हैं!

स्वाभाविक परिणति, स्वपरिणति उत्पन्न हुई यानी समयसार उत्पन्न हुआ।

धर्म क्या? विज्ञान क्या?

धर्म और विज्ञान में फ़र्क है। विज्ञान सैद्धांतिक होता है और धर्म सभी 'रिलेटिव' होते हैं, उनका फल भी 'रिलेटिव' होता है और उनकी क्रियाएँ भी 'रिलेटिव' होती हैं। 'मैं' 'चंदूभाई हूँ', ऐसा मानकर आप जो करते हो वह धर्म है और 'जैसा है वैसा' यथार्थ जाना, वह विज्ञान कहलाता है। निःशंक होने के बाद, खुद का स्वरूप जानने के बाद 'जैसा है वैसा' जाने वह विज्ञान कहलाता है। विज्ञान अविरोधाभासी होता है, 'जैसा है वैसा' फेक्ट वस्तु ही बताता है।

प्रश्नकर्ता : इसे ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है न, 'आप चंदूभाई हो' ऐसा करके किसीको गालियाँ दो तो वह अधर्म कहलाएगा और किसीको अच्छा-अच्छा खिलाओ-पिलाओ, किसीके मन को शांति दो, वह धर्म कहलाएगा और किसीको खराब लगे, किसीके मन को अशांति दे तो वह अधर्म कहलाएगा। 'रिलेटिव' वस्तु से 'रिलेटिव' उत्पन्न होता है और 'रियल' वस्तु से 'रिलेटिव' उत्पन्न नहीं होता। 'रियल' से सारा 'रियल' ही उत्पन्न होता है, सिर्फ 'रियल' को रियलाइज़ करना बाकी है। अभी तो आपको भ्रामक मान्यताएँ हैं कि 'यह सब मेरी शक्ति से चलता है, भगवान ने किया, मेरे ग्रह खराब है।' वास्तव में कर्त्ता दूसरा ही है।

❖❖❖❖❖

(१७)
भगवान का स्वरूप, ज्ञान दृष्टि से

ईश्वर का अंश या सर्वांश?

दादाश्री : आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : मैं ईश्वर का अंश हूँ।

दादाश्री : यह अंश की बात लोगों को समझाकर उल्टे रास्ते पर चलाया है। खुद भगवान का अंश किस प्रकार से हो सकता है? भगवान के टुकड़े किस तरह किए जा सकते हैं? आत्मा असंयोगी वस्तु है। संयोगी वस्तु हो तो उसके टुकड़े करें। आत्मा स्वाभाविक वस्तु है, स्वाभाविक के टुकड़े नहीं हो सकते। वास्तव में आप सर्वांश ही हो, परन्तु आवरित हो। ईश्वर का मैं अंश हूँ' उसका अर्थ क्या कहना चाहते हैं कि मुझे अंशज्ञान प्रकट हुआ है, अंश आवरण खुला है। ये सूर्यनारायण तो पूर्ण हैं, परन्तु जितना ावरण हटा उतने अंशों में प्रकाश हुआ, परन्तु सूर्यनारायण तो सर्वांश ही हैं। वैसे ही आप खुद सर्वांश ही हो, मात्र आवरित हो। शुरूआत में एकेन्द्रिय जीव होता है, उसका अंश आवरण खुल गया है। उसे कुल्हाड़ी मारो तो दुःख होता है, परन्तु गालियाँ दो या चाय दो तो उसे कुछ भी नहीं होता। फिर दो इन्द्रिय वे सीप, फिर तीन इन्द्रिय कीट पतंगे, फिर चार इन्द्रिय और फिर पाँच इन्द्रिय होते हैं। पंचेन्द्रियवाले को पंचेन्द्रिय जितना आवरण खुला है। बाकी भगवान हर एक में सर्वांश रूप में ही हैं, मात्र आवरण सहित है। संपूर्ण निरावरण हो जाए तो आप खुद ही परमात्मा हो। जिसका विभाजन होता हो, उसके अंश होते हैं। आत्मा तो अविभाज्य है, उसके अनंत प्रदेश अविभाज्य रूपी हैं।

जागृति हुए बिना खुद का भान प्रकट नहीं होता है। संपूर्ण जागृति आए तो खुद का भान प्रकट होता है और भान प्रकट हो तब खुद सर्वांश रूप से ईश्वर है, ऐसा खुद को पता चलता है, अनुभव में आता है और उसके बाद की जो क्रिया होती है उसमें दुःख नहीं होता है कभी भी।

भगवान की सर्वव्यापकता

दादाश्री : भगवान कहाँ रहते होंगे?

प्रश्नकर्ता : भगवान तो सर्वव्यापी हैं। कण-कण में सब ओर ही भगवान हैं।

दादाश्री : तब तो फिर भगवान को कहीं भी ढूँढने को रहा ही नहीं न? यदि सभी जगह भगवान हैं तो फिर संडास कहाँ जाएँ? सभी जगह भगवान हों तो फिर जड़ और चेतन जैसा कुछ अलग रहा ही नहीं न? इसलिए ऐसा नहीं है। जड़ भी है और चेतन भी है। सभी गेहूँ हों तो बीनने को क्या रहा? गेहूँ में से गेहूँ पहचानो, तभी कँकड़ बीने जाएँगे और कँकड़ को पहचानोगे तब भी काम हो जाएगा। उसी तरह इसमें से आत्मा को जानो तो अनात्मा को जान सकोगे और अनात्मा को जानोगे तो भी आत्मा को पहचान सकोगे। जब कि ये लोग कहते हैं कि सब जगह भगवान हैं तो फिर उन्हें ढूँढने का कहाँ रहा?

संकल्पी चेतन

ये लोग कहते हैं कि कण-कण में भगवान हैं, इसमें हैं, उसमें हैं। उस कहनेवाले की भाषा में और उसका अर्थ करनेवाले की भाषा में फ़र्क होगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : फ़र्क तो होगा ही न?

दादाश्री : वह किस अपेक्षा से कहा है, वह समझाता हूँ। इस जगत् में आत्मा और अनात्मा दो विभाग हैं। इस तिपाई में चेतन नहीं है, पर यह वस्तु 'चंदूभाई' की मिल्कियत है, इसलिए उसने उतने चेतन भाव को

प्राप्त किया है। वह संकल्पी चेतन है। और आप यह वस्तु उनसे पूछे बिना ले लो, तो उतना दोष आपको लगेगा और उसकी क़ीमत देकर आप लो और फिर उसे तोड़ डालो, चूरचूर कर दो, तो भी दोष नहीं लगेगा। चेतन तत्व तो वह कि जिसमें ज्ञान है, दर्शन है।

❖❖❖❖❖

(१८)
ज्ञातपद की पहचान

आप आत्मा? पहचाने बिना?

दादाश्री : क्या नाम है?

प्रश्नकर्ता : चंदूलाल।

दादाश्री : वास्तव में 'आप चंदूलाल हो' वह बात निश्चित है? या उसमें शंका है?

प्रश्नकर्ता : वह तो शरीर का नाम है।

दादाश्री : तो आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : आत्मा।

दादाश्री : आत्मा अर्थात् क्या? आत्मा अर्थात् यह देह है वह आत्मा है या ये चूड़ियाँ हैं, वे आत्मा हैं या दिमाग़ है, वह आत्मा है? किसे आत्मा कहेंगे? उसे पहचानना पड़ेगा न? आत्मा का ज्ञान तो जानना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : अंतरात्मा।

दादाश्री : हाँ। अंतरात्मा तो है पर उसे जानना पड़ेगा न कि उसके क्या गुणधर्म हैं? वह खाता-पीता है या नहीं खाता-पीता? या फिर कोई जला दे तो वह जलता है या नहीं जलता?

आत्मा की भूल?

आत्मा का गुण क्या है? उसका चिंता करने का गुण है या कषाय

करने का गुण है?

प्रश्नकर्ता : वह आत्मा का गुण नहीं है। भूल से कषाय कर बैठता है।

दादाश्री : आत्मा से भूल हो, तो वह आत्मा ही कैसे कहलाएगा? आत्मा तो परमात्मा ही है। वह भूल करेगा ही कहाँ से? और आत्मा की भूल दिखानेवाले हम वापिस उसके *ऊपरी* कि 'भाई, आत्मा ने भूल की?' आत्मा ने भूल की यह वाक्य इटसेल्फ कहता है कि आत्मा ने भूल की है और हम शुद्ध हैं, बिना भूल के!(?) आत्मा खुद ही परमात्मा है, खुद ही वीतराग है। वह तो स्वरूप का भान नहीं हुआ है इसलिए खुद मानता है कि, 'मैं चंदूलाल हूँ।' 'मैं चंदूलाल हूँ', वह आरोपित भाव है, कल्पित भाव है, 'रिलेटिव' भाव है। तो 'रियल' में कौन होंगे आप? यह चंदूलाल, तो 'रिलेटिव' कहलाता है। 'रिलेटिव' में बहुत तरह के विकल्प होते हैं, 'मैं उनकी बेटी हूँ, मौसी हूँ, चाची हूँ' ऐसे बहुत विकल्प हैं, जब कि 'रियल' में कोई विकल्प नहीं है। 'रियल' का रियलाइज़ किया जाए तो हमें पता चल जाएगा कि स्वरूप का भान हुआ, इसलिए मोक्ष जाने की तैयारी हुई। 'रियल' का कभी भी भान ही नहीं हुआ। आत्मा का भान होना, उसे समकित अथवा सम्यक् दर्शन कहते हैं। समकित नहीं हुआ था कभी भी, यदि हुआ होता तो यहाँ बैठे नहीं होते हम। समकित के बिना घड़ीभर भी अंतरशांति नहीं रहती, मूर्छा में ही रहता है। विवाह हो तब मूर्छित हो जाता है और विवाह हो जाने के बाद, था वैसे का वैसा, उसे मोहनिद्रा कहा है।

स्वाध्याय या पराध्याय?

दादाश्री : किसका पठन करते हो?

प्रश्नकर्ता : जैन स्वाध्याय, सूत्र, व्याख्यान ऐसा सब करता हूँ।

दादाश्री : यह स्वाध्याय जो करते हैं, वे पराध्याय करते हैं। एकबार स्वरूप का स्वाध्याय करे न, तब से हल आ जाए। जगत् में चलता है वह परावलंबन है, वह अवलंबन सच्चा भी होता है। परन्तु स्वावलंबन से तो

मुक्ति प्राप्त करता है और परावलंबन से भटकता ही रहता है।

अंत में तो अहंकार विलय करना है

इन मनुष्यों का स्वभाव कैसा है कि शुभाशुभ मार्ग को ग्रहण करना, उसे धर्म मानते हैं। सभी धर्मों में शुभाशुभ ही है। जैनधर्म में यदि शुभाशुभ की बात हो तो वह निचली कोटि का माना जाएगा, वहाँ तो शुभाशुभ की बात ही नहीं होती। उसमें तो कथानुयोग अर्थात् कि जो उत्तम पुरुष हो चुके हैं, उत्तम श्रेष्ठी, उत्तम ज्ञानी हो चुके हैं, उनका वर्णन सुनते हैं। उसमें से भाव जगते हैं कि मुझे भी ऐसा होना है। जैन धर्म का सार ही यह है, जब कि आज तो शुभाशुभ में पड़ गए! जैनों में चार प्रकार के अनुयोग हैं - कथानुयोग, चरणानुयोग, करुणानुयोग और द्रव्यानुयोग हैं और वेदांत में चार योग हैं। भगवान ने कहा है कि यदि तू जैन है तो इन चार अनुयोगों का पठन करना और उस वेदांत में चार योगों का पठन करना, तो आत्मा मिलेगा। शुभाशुभ से तो अहंकार बढ़ता है और कथानुयोग से अहंकार नहीं बढ़ता। वस्तुपाल-तेजपाल की कथा सुनकर भाव होता है कि हम भी वैसे बनें। यह तो अहंकार बढ़ गए हैं। जैनों में अहंकार कितना होना चाहिए? घर के संचालन के लायक या व्यापार के लायक। यह तो निरा तूफ़ान लगा रखा है!

'ज्ञाता' को ही 'ज्ञेय' बनाया!

''अनादि से 'ज्ञेय' को ही 'ज्ञाता' समझकर बरतें लोग।'' - नवनीत।

अनादि से लोगों का लिए धर्म किसमें बरतता है? ज्ञेय को ज्ञाता मानकर धर्म करते हैं। 'आचार्य', वह 'ज्ञेय' है और 'खुद' 'ज्ञाता' है, लेकिन भ्रांति से ज्ञेय को स्वयं मानता है। 'आचार्य' को 'खुद ही है' ऐसा मानता है। 'यह व्याख्यान मैंने दिया, शास्त्र मैंने पढ़े, तप मैंने ही किया, त्याग मैंने किया।' परन्तु करनेवाला जानता नहीं और जाननेवाला करता नहीं। करनेवाले का और जाननेवाले का कभी भी मिलाप था नहीं, है नहीं और होगा नहीं। यह तो कहेगा, 'मैं ही आचार्य हूँ और मैंने ही व्याख्यान दिया।' हम तो समझ गए कि आप कौन-से स्टेशन पर बैठे हो! माटुँगा स्टेशन

पर बैठा हुआ है और कहता है कि अगला स्टेशन ही कलकत्ता है। नहीं, वह तो अगला स्टेशन तो माहिम की खाड़ी का आया! अनंत जन्मों तक भटकेगा तो भी कलकत्ता नहीं आएगा! ज्ञाता-वह ज्ञाता है और ज्ञेय-वह ज्ञेय है। 'चंदूभाई', वे ज्ञेय हैं। 'इसका भाई', वह ज्ञेय है, 'इस व्यापार का मालिक है', वह ज्ञेय है। 'इस मकान का मालिक है', वह ज्ञेय है और 'हम' ज्ञाता हैं। हम ज्ञाता और यह ज्ञेय, ऐसे देखते रहे तो फिर समाधि रहती है। 'हमारा' धर्म क्या है? क्या हुआ उसे देखना और ज्ञाता-दृष्टा-परमानंदी! धर्म किसे कहा जाता है? सोना सोने के धर्म में हो उसे। सोना पीतल के धर्म में हो, वह स्वधर्म नहीं कहलाता, वह परधर्म कहलाता है। यह तो जो चंदूलाल बनकर बैठा है, वह देह के धर्म को खुद का मानता है, अंत:करण के धर्म को खुद का धर्म मानता है। वह परधर्म है। परधर्म से कभी भी मोक्ष नहीं होगा, स्वधर्म से मोक्ष है। सोना हर समय अपने धर्म में ही है। पर यह तो 'चंदूलाल' का आरोपण करते हैं, इतना ही नहीं, साथ में वापिस कहता है कि इसका ससुर, इसका बेटा, इसका बाप, कोर्ट में जाए-तब इसका वकील, दुकान में हो-तब सेठ' यही भ्रांति है। 'स्वयं शुद्धात्मा ही है', पर ऐसे आरोप के कारण समझ में नहीं आता।

अज्ञान निवृत्ति विज्ञान से

मोक्षधर्म अर्थात् अज्ञान से निवृत्ति हो, वह। 'इस' मोक्षमार्ग में अज्ञान से निवृत्ति करवा देते हैं, इसलिए ज्ञान में हुई प्रवृत्ति! अज्ञान निवृत्त हो जाए तो विज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु ज्ञानी के बिना किसीसे अज्ञान निवृत्त नहीं होता, किसीका देहाध्यास नहीं छूटता है। देहाध्यास की निवृत्ति, ही मोक्ष है। एक ही अंश ज्ञान की प्रवृत्ति हो जाए तो सर्वांश हो जाए। एक ही अंश साइन्स हो जाए तो सर्वांश हो जाए। क्योंकि ज्ञान, वह साइन्स है, अज्ञान, वह साइन्स नहीं है। एक अंश विज्ञान कब उत्पन्न होता है? कि 'इस' रास्ते के जानकार हों, रास्ते के जानकार से पूछना पड़ता है, तब रास्ता मिलता है। वैसे ही 'इन' जानकार 'ज्ञानी पुरुष' से पूछें तो मार्ग की प्राप्ति होती है। 'यह' धर्म नहीं है, साइन्स है। यह तो 'रियल' धर्म है। यह हमेशा प्रकट नहीं रहता। यह तो चौदह लोकों के नाथ हमारे भीतर प्रकट हुए

हैं। यह देह है, वह तो बुलबुला है, यह कब फूट जाए कहा नहीं जा सकता। यह है तब तक आप अपना काम निकाल लो। वीतरागों में जैसा प्रकाश हुआ था, वैसा प्रकाश है। इन 'ज्ञानी पुरुष' के पास संपूर्ण समाधान हो जाए, वैसा है, इसलिए आपका काम निकाल लो। हम तो आपको इतना कह देते हैं। हम वीतराग हैं, इसलिए आपको फिर पत्र नहीं लिखेंगे कि आइए।

बंधन में से मुक्ति दिलवाए-वह धर्म। सच्ची आज़ादी दे, वह धर्म कहलाता है।

❖❖❖❖❖

(१९)
यथार्थ भक्तिमार्ग

श्रद्धा ही फल देती है

ऐसा है, देवता आपकी बिलीफ़ के अधीन है। मूर्ति में दर्शन करो, पर बिलीफ़ नहीं हो तो क्या फायदा? बिलीफ़ अन्अवकाश रूप से हो तो वह रात-दिन याद आया करती है। इसलिए मूर्ति में श्रद्धा रखो। मूर्ति भगवान नहीं है, आपकी श्रद्धा ही भगवान है। फिर भी भगवान के दर्शन करो तो भाव से करना। मेहनत करके दर्शन करने जाओ, पर दर्शन ठीक से भाव से नहीं करो तो मेहनत बेकार जाएगी। भगवान के मंदिर में या जिनालय में जाकर सच्चे दर्शन करने की इच्छा हो तो मैं आपको दर्शन करने का सच्चा तरीका सिखलाऊँ। बोलो, है किसीको इच्छा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, है। सिखलाइए दादा। कल से ही उस अनुसार दर्शन करने जाऊँगा।

दादाश्री : भगवान के मंदिर में जाकर कहना कि, ''हे वीतराग भगवान! आप मेरे भीतर ही बिराजे हैं, पर मुझे उसकी पहचान नहीं हुई, इसलिए आपके दर्शन करता हूँ। मुझे यह 'ज्ञानी पुरुष' दादा भगवान ने सिखलाया है, इसलिए उस अनुसार आपके दर्शन करता हूँ। तो मुझे मेरे 'खुद की' पहचान हो, ऐसी आप कृपा कीजिए।'' जहाँ जाओ वहाँ इस अनुसार दर्शन करना। ये तो अलग-अलग नाम दिए हैं। सभी भगवान रिलेटिवली अलग-अलग हैं, परन्तु रियली एक ही है।

दुकान टावर के पास हो तो दुकान के विचार यहाँ करता है! अरे, जिस स्थल पर हो उस स्थल के विचार कर। अरे, रास्ते में भी दुकान के

विचार करते-करते जाता है! और मंदिर जाने को निकले तब कोई धर्म के विचार करता ही नहीं! वहाँ तो दुकान के विचार करता है। कुछ को तो रोज़ मंदिर में जाने की आदत पड़ चुकी होती है। अरे, आदत पड़ चुकी है इसलिए तू दर्शन करता है भगवान के? भगवान के दर्शन तो रोज़ नये-नये ही लगने चाहिए और दर्शन करने जाते समय भीतर उल्लास, फ्रेश का फ्रेश ही होना चाहिए। यह तो रोज़ डिबिया लेकर दर्शन करने जाने की आदत पड़ चुकी है।

धर्म कहाँ से कर सकेंगे? पूरे दिन कर्म करें या धर्म करें? यह तो घंटे-दो घंटे ही काम करें और गाड़ी तेज़ी से चले वैसा पुण्य हो, वही धर्म प्राप्त कर सकता है और धर्म कर सकता है।

भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति

प्रश्नकर्ता : कोई भी व्यक्ति भक्ति करे तो ईश्वर मिलते हैं?

दादाश्री : इन पाँच इन्द्रियों से ईश्वर के लिए कुछ भी नहीं होता, जो होता है वह परोक्ष भक्ति है।

प्रश्नकर्ता : वह काल्पनिक भक्ति है न?

दादाश्री : वह काल्पनिक ही कहलाती है और निर्विकल्प भक्ति हो तब काम होता है। विकल्प भक्ति मन से होती है।

प्रश्नकर्ता : मुझे भक्ति सबसे अधिक पसंद है।

दादाश्री : भक्ति, वह आपकी ग्रंथि है। भक्ति का विचार आए, दर्शन का विचार आए, वह ग्रंथि है। कभी न कभी निर्ग्रंथ होना ही है। आपने सुना कि परसों डाकोर (गुजरात का एक गाँव) जाना है तो आपको फिर वहाँ जाने की गाँठ फूटती है। हालाँकि वह गलत नहीं है। खराब विचारों से तो यह अच्छा कहलाता है। भक्ति अर्थात् क्या? कि भक्ति का रंग रखे तो संसार के दूसरे रोग नहीं आएँ।

प्रश्नकर्ता : भक्तिमार्ग पढ़ूँ तो ऐसा लगता है कि वह करने जैसा है। योग का, कर्म का, ज्ञानमार्ग का पढ़ूँ तो ऐसा लगता है कि वह करने

जैसा है, यह क्या है?

दादाश्री : पूरा जगत् स्वच्छंद नाम के रोग में है, वह खुद के नाप से सबकुछ नापने जाता है।

प्रश्नकर्ता : आप ज्ञान देंगे, पर हमारी कुछ बुनियाद तो चाहिए न?

दादाश्री : ये सभी बिना बुनियाद के ही थे। बुनियादवाला कोई हुआ ही नहीं है। जिस जाने हुए से ठोकर लगे, वह अंधेरा नहीं कहलाएगा? उजाले में ठोकर नहीं लगती। विषम परिस्थिति में समता रहे वही ज्ञान कहलाता है, समता में तो सभी को समता रहती है। 'मैंने यह किया, वह किया, मैंने भक्ति की।' वह सब इगोइज़म है। ज्ञान आउट ऑफ इगोइज़म है।

रणछोड़जी गलत नहीं हैं, तेरी भक्ति गलत है। फिर भी वह परोक्ष भक्ति है, सेकन्डरी भक्ति है। परोक्ष भजना का फल अपराभक्ति और अपरोक्ष भजना का फल पराभक्ति है। पराभक्ति से मोक्ष है।

ये भक्त मंझीरों की ताल में ही मस्त रहते हैं। भगवान के ताल में मस्त हुआ वैसा कोई ही होता है। सिर्फ भगवान के नाम पर करते हैं, उससे कितना कुछ होता है!

भक्ति : परोक्ष और प्रत्यक्ष

प्रश्नकर्ता : भक्तिमार्ग में भौतिक समस्याएँ आड़े आती हैं न?

दादाश्री : भक्तिमार्ग दो प्रकार के हैं। एक परोक्ष भक्ति, उससे संसारफल मिलता है और धीरे-धीरे ऊर्ध्वगति होती रहती है। और दूसरी प्रत्यक्ष भक्ति, जहाँ भगवान प्रकट हुए हैं उनकी प्रत्यक्ष भक्ति। वहाँ हल आ जाता है। परोक्ष भक्ति में तो बहुत बाधाएँ आती हैं। खुद के ही विचार खुद के आड़े आते हैं। भक्ति का मार्ग अच्छा है पर भक्ति तो ऐसा है न कि कभी संयोग बदलें तो वह चली जाती है, पर ज्ञान तो निरंतर साथ में ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : भक्तिमार्ग में जोखिमदारी किस पर है? भगवान पर?

दादाश्री : हाँ।

नरसिंह मेहता भी कहते थे कि, 'हे भगवान, मुझे छुड़वाओ।' सभी भक्तों के भीतर आर्तता तो होती ही है। आर्तवाणी उन्होंने निकाली थी कि, 'हे भगवान, दुःख से मुझे छुड़वाइए।' फिर भी वह भक्ति अच्छी है, उस पर ही सबकुछ लुटा बैठे। सबसे अधिक ऊँची भक्ति किसकी? सच्चे भक्तों की। वे सच्चे भगवान को नहीं भजते, परन्तु परोक्ष भगवान को भजते हैं, फिर भी वह सच्ची भक्ति है, वह प्रत्यक्ष को प्राप्त करवानेवाली होती है। परन्तु सच्चा भक्त कब कहलाता है? एक भी संकल्प-विकल्प नहीं पकड़े तब। वह क्या कहता है कि संकल्प-विकल्प भगवान करते हैं, सबकुछ भगवान पर छोड़ देता है। जब कि यह तो बेटे की शादी करवाए तब खुद शादी करवाता है और जन्मे तब खुद पेड़े बाँटता है और बेटा मर जाए तब भगवान ने मारा कहेगा! सच्चा भक्त तो सबकुछ भगवान पर छोड़ देता है। वह क्या कहता है, 'भगवान, मुझे क्या? भगवान तेरी लाज जा रही है।' वैसी भक्ति मिलनी मुश्किल है।

एक 'रिलेटिव' को रियलाइज़ करता है और दूसरा 'रियल' को रियलाइज़ करता है। भक्तों को साक्षात्कार हो, वह क्या है? कि भीतर मुरलीवाले कृष्ण दिखते हैं, वैसी सिद्धि लाए होते हैं। परन्तु यदि वे मुझे मिलें तो मैं उनसे कहूँ कि, 'वह तो दृश्य है और तू दृष्टा है। तुझे यदि मुरलीवाले कृष्ण दिखते हैं, वे सच्चे कृष्ण नहीं हैं। वह तो दृश्य है और सच्चे कृष्ण तो जो उन्हें देखते हैं, वे हैं, वह तू खुद ही है। यह तो दृष्टि दृश्य में पड़ी है। दृष्टा में पड़े तो काम हो जाए।' भक्तों ने भी इस ध्येय को प्राप्त नहीं किया होता है। उन्हें भी उसकी ज़रूरत है। ध्येय हो तो खुद ध्याता होता है, परन्तु ध्येय का स्वरूप जानने के लिए गुरु चाहिए।

नरसिंह मेहता ने क्या गाया है?

'जहाँ लगी आत्मा तत्व चिह्न्यो नहीं,
त्यहाँ लगी साधना सर्व झूठी।'

(कि जब तक आत्मातत्व प्राप्त नहीं किया तब तक सारी साधना झूठी है।)

भक्ति : स्थूल से सूक्ष्मतम

प्रश्नकर्ता : हर एक धर्म के शास्त्रों में नाम का महत्व बहुत बताते हैं, नाम का जप करना होता है, उसका क्या रहस्य होगा?

दादाश्री : वह सब एकाग्रता के लिए है। 'नाम' स्थूल है, स्थूल भक्ति है। फिर 'स्थापना', वह सूक्ष्म भक्ति है, फिर 'द्रव्य', वह सूक्ष्मतर भक्ति है और अंत में 'भाव', वह सूक्ष्मतम है। ये चार प्रकार की भक्तियाँ हैं। तो सिर्फ महावीर, महावीर बोलते हों, तो भी स्थूल भक्ति हुई और यदि स्थापना यानी कि फोटो रखकर 'महावीर, महावीर' करें तो सूक्ष्म भक्ति कहलाती है। यह मेरा फोटो रखकर भक्ति करे उसकी तुलना में, मैं खुद हाज़िर होऊँ और मेरी हाज़िरी में भक्ति करे तो वह सूक्ष्मतर भक्ति कहलाती है। और फिर मेरी आज्ञा ही पाले तो वह सूक्ष्मतम भक्ति कहलाती है। मेरा कहना है, हमारी आज्ञा, उसके भाव में आ जाए तो वह भावभक्ति हो गई। वह तुरन्त फल देनेवाली है। बाकी तीनों प्रकार की भक्ति बहुत ही फल देनेवाली है। और सिर्फ 'यह' ही रियली केश है, इसलिए तो हम कहते हैं कि, 'दिस इज़ द केश बैंक इन द वर्ल्ड (इस दुनिया में सिर्फ यही नक़द बैंक है)।' इसे केश बैंक किसलिए कहते हैं कि अभी 'यहाँ' पर उच्चतम भावभक्ति होती है।

नामभक्ति भी गलत नहीं है। नाम का वैसा नियम नहीं है। नाम में तो 'राम' बोले तो भी चलेगा और कोई 'नीम' बोलता रहे तो भी चलेगा। सिर्फ बोलना चाहिए। जो बोलें उसका भीतर उपयोग रहना चाहिए, ताकि और कहीं पर उपयोग नहीं जाए। आत्मा को एक घड़ीभर भी अकेला छोड़ा जाए ऐसा नहीं है, इसलिए कुछ न कुछ उसके लिए उपयोग रखना चाहिए। अर्थात् नामस्मरण करते हैं, वह कुछ गलत नहीं है। कोई वस्तु गलत होती ही नहीं इस जगत् में। लेकिन नाम, स्थापना और द्रव्य, वे तीनों ही व्यवहार हैं और सिर्फ भाव ही निश्चय है। व्यवहार में तो अनंत जन्मों से यही का यही किया है और भटकते ही रहे हैं। आचार्य हुए, साधु हुए, साध्वीजी हुए, ऐसे ही भटकते रहे हैं, मार्ग नहीं मिला।

मोक्ष : ज्ञान से या भक्ति से?

प्रश्नकर्ता : भक्तिमार्ग से मोक्ष है या ज्ञानमार्ग से मोक्ष है?

दादाश्री : भक्तिमार्ग से आप क्या समझे? ज्ञानमार्ग शुरू होने के बाद भक्ति आती है। कोई स्टेशन का रास्ता दिखाए, फिर आप चलोगे न? रास्ते का ज्ञान होने के बाद उस रास्ते पर चलना, वह भक्ति है।

भक्ति शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है? उस शब्द के अंदर आश्रय समा जाता है। इन सभी को ज्ञान दिया है, वे सभी भक्तिमार्ग में भी हैं। जिसका आश्रय लिया उसकी भक्ति करनी है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भक्तिमार्ग भी अक्रममार्ग में है?

दादाश्री : 'यह' पराभक्ति है। अक्रममार्ग में आत्मा प्राप्त कर लेने के बाद जो भक्ति करते हैं, वे खुद अपने आप की ही भक्ति करते हैं। ये माला बनाते हैं, वे भी खुद की ही भक्ति करते हैं, फिर भले ही माला हमें चढ़ाएँ! 'ज्ञानी पुरुष' की भक्ति खुद के आत्मा की ही भक्ति है। जब तक आपका आत्मा संपूर्ण व्यक्त नहीं हुआ, तब तक 'ज्ञानी पुरुष' ही आपका आत्मा हैं। 'ज्ञानी पुरुष' शल्य रहित होते हैं। खुद प्रसन्नचित्त होने के कारण, सामनेवाले को भी उन प्रसन्नचित्त के दर्शन करने से ही आनंद प्रकट होता है। 'ज्ञानी' के दर्शन मात्र से अनेक जन्मों के पाप भस्मीभूत हो जाते हैं!

पराभक्ति : अपराभक्ति

पूरा जगत् भक्ति ढूंढ रहा है, वह अपराभक्ति है। जिस भक्ति में थोड़ा-सा भी बुद्धि का प्रवेश नहीं हो, वह मोक्ष की भक्ति कहलाती है। भक्ति मोक्ष की होनी चाहिए। बुद्धि का प्रवेश हो, तो वह अपराभक्ति होती है। बुद्धि बाहर निकल गई, तो पराभक्ति है। 'यहाँ' पर पूरे दिन जो चलती है वह पराभक्ति है। पराभक्ति का फल मोक्ष है। अपना तो यह मोक्षमार्ग है। जहाँ मोक्षमार्ग नहीं है, वहाँ संसार मार्ग है। जिस भक्ति में बुद्धि आती है, तब वह इमोशनल रखती है। 'मैं'पन का भान करवाती है, 'रिलेटिव'

स्वरूप का भान करवाती है, 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं लोहे का बड़ा व्यापारी हूँ', वैसा भान करवाती है। बुद्धि पराभक्ति नहीं होने देती। यहाँ तो ज्ञान देने के बाद फिर पराभक्ति ही होती है। पराभक्ति तो किसे कहते हैं कि जो आत्मा के लिए की जाए, शुद्धात्मा के लिए, आत्महेतु के लिए की जाए, वह। आत्महेतु के लिए जागे-वह नींद कहलाती है, आत्महेतु के लिए खाए-वह उपवास और आत्महेतु के लिए भक्ति करे वह पराभक्ति है।

❖❖❖❖❖

(२०)
गुरु और ज्ञानी
यथार्थ गुरु

प्रश्नकर्ता : मेरे पहले के गुरु हैं, तो यहाँ आपको गुरु बना सकता हूँ?

दादाश्री : दो गुरु तो चाहिए ही। संसार के गुरु शुभाशुभ का सिखलाते हैं। और यहाँ तो शुभाशुभ से छुड़वाते हैं। वास्तव में ये गुरुपद ही नहीं है। यहाँ कोई बाधक वस्तु नहीं होती, साधक वस्तु ही होती है। संसार के गुरु तो चाहिए ही। उनके आशीर्वाद हों तो भौतिक सुखों के लिए बहुत काम आएगा। और यह तो अलौकिक वस्तु है! संसारी गुरु लौकिक गुरु कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लौकिक गुरु मतलब क्या?

दादाश्री : अच्छा सिखलाएँ वे लौकिक गुरु। संसार का सिंचन इस भव में किस आधार पर होता है? जो योजना बन चुकी होती है, उस आधार पर। माँ-बाप अच्छे मिलते हैं, गढ़ाई के लिए साधन अच्छे मिलते हैं। सब लेकर ही आता है। 'ज्ञानी' की कृपा तो नि:शब्द होती है, मुँह पर नहीं कहते कि धनवान बनना या पुत्रवान बनना। परन्तु 'ज्ञानी' की कृपा से मोक्ष मिलता है!

प्रश्नकर्ता : हर एक को मोक्ष मिलने ही वाला है, तो फिर 'ज्ञानी' की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : सेन्ट्रल स्टेशन आएगा ही, परन्तु स्टेशन आने के बाद

ही ऐसा कह सकते हैं। हर एक जीव अनादि से है, परन्तु 'ज्ञानी' मिले और ज्ञान हो उसके बाद ही सादि-सांत (स-आदि, स-अंत) में आता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मोक्ष के मार्ग में गुरु की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : हाँ, कुछ कहते हैं न कि गुरु की ज़रूरत नहीं है! यह तो लाइट को बुझा देने जैसी बात है। गुरु तो प्रकाश है, परन्तु गुरु तो पहचान में आने चाहिए न? ये तो अँधेरे को प्रकाश मानते हैं तो किस तरह काम हो?

'गुरु' तो, ये सब आचार्य-महाराज हैं न, वे गुरु कहलाते हैं। 'सद्‌गुरु', कौन? कि जिन्हें सत् प्राप्त हुआ है वे। जिन्हें सत् प्राप्त हुआ हो, वे तो हमने उल्टा किया हो फिर भी चिढ़ते नहीं हैं और 'ज्ञानी पुरुष' तो स्व-पुरुषार्थ सहित होते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' तो वर्ल्ड के आश्चर्य कहलाते हैं!

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' को पहचानें किस तरह?

दादाश्री : 'ज्ञानी' से कहना चाहिए कि, 'साहब, मेरा कुछ हल ला दीजिए। तब यदि वे ऐसा कहें कि 'इतना करके लाओ।' तब आप कहना कि, 'साहब, इतने समय तक किया ही है तो भी अंत नहीं आया।' इस छोटे बच्चे को कहीं भेजें तो कुछ करेगा क्या? वह तो बड़े को ही करना पड़ेगा। वैसे ही 'ज्ञानी पुरुष' मिलें, तो उनके पास से सीधा ही माँग लेना होता है। संसार में से मुक्ति दिलवाएँ वे गुरु सच्चे! बाकी दूसरे सब गुरु तो बहुत से होते हैं, वे किस काम के? वह तो यहाँ से स्टेशन तक जाना हो तो भी रास्ते का गुरु बनाना पड़ता है।

लौकिक गुरु

लौकिक गुरु भले ही ज्ञानी नहीं हैं, परन्तु वे 'कौन हैं' वह मालूम है? वे रेल्वे के 'पोइन्टमेन' जैसे हैं। गाड़ी दिल्ली की हो उसे पोइन्ट मिलवा देता है और गाड़ी को दिल्ली की पटरी पर मोड़ देता है। आज तो दिल्ली

के बजाय सूरत की तरफ मोड़ते हैं, उससे सभी गाड़ियाँ आमने-सामने टकरा गईं! अरे, 'पोइन्टमेन' की तनख्वाह खाते हो, तो इतना तो काम करो! ये तो वाद-विवाद में हराकर गुरु बन बैठे! वह गुणवाचक नाम है या नामवाचक नाम है? न्याय देना पड़ेगा न इसका? यदि गुणवाचक नाम हो तो दूसरे प्रश्न खड़े होंगे। और नामवाचक हो तो हर्ज नहीं है! भगवान ने तो क्या कहा हुआ है कि, 'हम पूरे जगत् के शिष्य हैं।' पूरे जगत् का कोई गुरु नहीं बन सकता। यह तो सब व्यापार लगाकर बैठे हैं, कहीं भी धर्म की निष्ठा ही नहीं रही। यह तो खान-पान और मान की ही निष्ठा है। यह हमें कठोर बोलना पड़ता है, वह क्या हमें अच्छा लगता होगा? फिर भी आप सावधान रहो उसके लिए कहते हैं। सत्य कौन बोलता है कि जिसे कुछ भी नहीं चाहिए। इनमें कुछ सच्चे पुरुष होंगे ज़रूर, पर वे बहुत कम, सैंकड़ों में दो-पाँच प्रतिशत ही मिलेंगे। सीधा चलानेवाले कौन है कि जो खुद सौ प्रतिशत सीधा चलता हो, वही दूसरों को सीधा चला सकेगा। खुद में उल्टा हो तो दूसरों को किस तरह उपदेश दे सकेगा? मैं जिसमें सौ प्रतिशत करेक्ट होऊँ उसका आपको उपदेश दूँ, तो ही वचनबल चलेगा।

'रिलेटिव' धर्म, तो सफर के साथी जैसे

ये 'रिलेटिव' धर्म हैं वे सफर के साथी जैसे हैं। सफर में अच्छा व्यक्ति, ज़रा मज़बूत व्यक्ति साथ में हों तो रास्ते में अच्छा रहता है और लुटेरे जैसा कोई मिल जाए तो लूट लेगा। सफर के साथी अर्थात् जिसका बिगिनिंग होता है और जिसका एन्ड होता है। जिसका बिगिनिंग नहीं हो और अंत भी नहीं आए, वैसा साथ किस काम का? साथ अर्थात् कुदरती रूप से एक विचारवाले इकट्ठे हो जाएँ, वह। अपना तो यह साइन्स है। 'फ्रॉम ज़ीरो टू हंड्रेड' तक का है। यह तो ठेठ तक का है और आगे-पीछे के 'रिलेशन सहित' है।

धर्म तो आरपार ले जाए, वह होता है। वैसा तो कभी भी उत्पन्न होता ही नहीं न? हो तो काम ही निकल जाए। हालाँकि कुछ नहीं मिला हो, उससे तो इस 'रिलेटिव' धर्म का साथ अच्छा।

व्यापार, धर्म में तो शोभा नहीं ही देता

पूरे जगत् का जो शिष्य बने वही गुरु बनने के लायक है। एक क्षणभर भी 'यह मेरा शिष्य है' ऐसा भान नहीं रहता हो तो शिष्य बनाओ। हमने पाँच हज़ार लोगों को ज्ञान दिया है, परन्तु हमें एक क्षणभर के लिए भी 'मेरा शिष्य है' ऐसा नहीं लगता।

भगवान ने कहा है कि सबकुछ टेढ़ा करोगे तो चलेगा, परन्तु सिर्फ गुरु सीधे बनाना। अनंत जन्मों से टेढ़े गुरु मिले हैं, इसलिए ही भटका है। हिन्दुस्तान देश में धर्म के साथ व्यापार ले बैठे हैं, वह ठीक नहीं है। व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं करते। भले ही ज्ञानी नहीं हों, परन्तु उन्हें देखकर तेरा दिल ठरता हो तो वहाँ बैठना, परन्तु धर्म के व्यापारी के पास मत पड़े रहना। और यदि शुद्ध व्यक्ति नहीं मिलते हों, तो भीम ने किया था वैसा करने जैसा है। भीम को शुद्ध व्यक्ति नहीं मिले थे, तो उन्होंने एक लोटा लिया और रंग दिया और उस पर लिखा 'नमो नेमिनाथाय' और उसके दर्शन करते थे! हालाँकि उसमें किसीका दोष नहीं है। यह काल ही विचित्र आया है, तो इसमें ऐसा ही होता है। वे भी बेचारे क्या करें? वे भी फँस गए हैं उधर!

प्रश्नकर्ता : आसन पर साधु बैठे हों और जाकर उन्हें नमस्कार किया तो ऐसा कहा जाएगा कि उन्हें गुरु बना दिया?

दादाश्री : नहीं, हमें उन्हें कहना चाहिए, उनके साथ सौदा कर लेना चाहिए। यह तो सारा व्यापार है, इसलिए 'कॉन्ट्रेक्ट' करना चाहिए कि आज से मेरे हृदय में आपका गुरु की तरह स्थापन कर रहा हूँ। स्थापन करने के बाद मंडान किया कहा जाता है फिर स्थापन करने के बाद खंडन करना तो बड़ा गुनाह है, नहीं तो स्थापन करना ही नहीं। भगवान की भाषा ऐसी है कि स्थापन करना नहीं और स्थापन करो तो खंडन करना नहीं।

पूरी दुनिया में गुरु बनाना यदि किसीको आया हो तो वह इन खोजा लोगों को! आपके गुरु ने यदि विवाह कर लिया हो, अरे, विवाह नहीं किया हो परन्तु किसीको छेड़ भी दिया हो तो वहाँ आप सब उन्हें मारने

लगोगे और इन खोजा लोगों के गुरु ने तो विवाह किया एक यूरोपियन लेडी से! और उन सभी लोगों ने उत्सव मनाया कि अपने गुरु एक यूरोपियन लेडी से विवाह कर रहे हैं। उन्हें शिष्य कहते हैं। गुरु की कमियाँ नहीं निकालनी चाहिए। सब की कमियाँ निकालना परन्तु गुरु की कमियाँ नहीं निकालते, नहीं तो गुरु बनाना ही नहीं। जिसकी धर्म संबंधी भूल मिटे, वह तो भगवान कहलाता है। किसीकी भूल नहीं निकालनी चाहिए, वह तो बहुत बड़ी जोखिमदारी है।

इसलिए सहजानंद स्वामी ने क्या खोज की वह जानते हो? गुरु पाँचवी घाती है। यदि थोड़ा भी उनका उल्टा देख लिया तो मारे जाओगे। और उल्टा दिखे तो भी 'नहीं, वैसा नहीं है', ऐसा करके आँखें बंद कर देना। क्योंकि, नहीं तो इससे जीव अधोगति में चले जाएँगे सारे। सिर्फ जो सँभलकर रहे हैं तो वे आगाखान (एक संप्रदाय) के। देखो, वहाँ कभी भी आवाज़ उठाई है? और अपने लोग, यदि उनके शिष्य हों तो सभी प्रकार से उसे न्याय में तोल देते।

मैं गुरु की आराधना करने को नहीं कहता हूँ, परन्तु उनकी विराधना नहीं करना। और यदि आराधना करें तो काम ही हो जाए, परन्तु आराधना करने की इतनी अधिक शक्ति लोगों में नहीं होती है। मैं क्या कहता हूँ कि पागल गुरु बनाओ, बिल्कुल पागल को बनाओ, परन्तु पूरी ज़िन्दगी उनके प्रति सिन्सियर रहो तो आपका कल्याण हो जाएगा। बिल्कुल पागल गुरु के प्रति सिन्सियर रहने से आपके सभी कषाय खत्म हो जाएँगे! परन्तु इतना समझ में आना चाहिए न! वहाँ तक मति पहुँचनी चाहिए न! इसलिए तो आपके लिए पत्थर के देव रखे हैं कि यह प्रजा ऐसी है इसलिए पत्थर के रखो, ताकि कमियाँ तो नहीं निकालें। तब कहे, 'नहीं, पत्थर में भी कमी निकालते हैं कि 'यह श्रृंगार ठीक नहीं है!' यह प्रजा तो बहुत विचारशील! बहुत विचारशील है, वे गुरु के दोष निकालें ऐसे हैं। खुद के दोष निकालना तो कहाँ रहा, परन्तु गुरु का भी दोष निकालते हैं! उतनी अधिक तो उनकी एलर्टनेस!!

हम गारन्टी देते हैं कि कोई भी पागल गुरु बनाओ और यदि पूरी

ज़िन्दगी उसे निभाओगे तो मोक्ष तीन जन्मों में हो जाएगा, ऐसा है। लेकिन गुरु जीवित होने चाहिए। इसलिए तो इन लोगों को वह नहीं पुसाया और मूर्तियाँ रखी गई।

प्रश्नकर्ता : गुरु जो आज्ञा करें, उस आज्ञा में ही रहना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, पागलपनवाली आज्ञा करें तो भी आज्ञा में ही रहना चाहिए। आपको यदि मोक्ष में जाना हो, तो गुरु बनाओ तो गुरु के प्रति अंत तक सिन्सियर रहो। शिष्य किसे कहते हैं कि गुरु के सुख में खुद का सुख माने। गुरु को किससे आनंद होता है, वह देखे। और यदि पूरी ज़िन्दगी गुरु को निभाए तो सभी कषाय खत्म हो जाएँगे। आपके कषाय धोने का साधन पागल गुरु हैं, नहीं तो फिर 'ज्ञानी पुरुष' उसे धो देंगे। बीचवाले तो सब भटका देंगे। 'मुक्त पुरुष' की आज्ञावश रहना, वह धर्म कहलाता है।

जिन्हें एकबार हमने गुरु की तरह स्थापन करके नमस्कार किया हो, फिर वैसे कोई भी गुरु हों, चक्रम हों या पागल हों, पर एकबार नमस्कार करने के बाद उनकी निंदा में नहीं पड़ना चाहिए। गुरु की कारस्तानी बाहर निकले तब हम निंदा करें, वैसा नहीं होना चाहिए। गुरु उल्टा करे तो वह जोखिमदारी गुरु की है, दूसरे किसीकी नहीं है। ये खोजा संप्रदाय के लोग गुरु की निंदा नहीं करते। उनकी बात कितनी समझदारीवाली है! उनके इस समझदारी के गुण को स्वीकार करना चाहिए। वीतराग क्या कहते हैं कि किसी भी मनुष्य का समझदारीवाला गुण हो तो उसे स्वीकारना चाहिए। जब कि हिन्दू तो बहुत डेवलप जाति है इसलिए तुरन्त ही निंदा करती है कि ऐसा कैसे हो सकता है? तो ये लोग गुरु के भी न्यायधीश! निंदा में पड़ते हैं, उस बुद्धि को हटा न यहाँ से। इन लोगों को पूर्वविराधक जीव किसलिए कहा है कि कचरा रह गया था, तभी इस काल में आया है। चौथे *आरे* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) वाले तो सत्युग, त्रेता और द्वापर के जो 'रबिश मटिरियल्स' हैं, वही आज के जीव हैं, वे विराधनावाले ही होते हैं। जो खाने को देते हैं, उन्हीं की विराधना करते हैं, गुरु सिखलाएँ तो उनकी विराधना करते हैं। माँ-बाप खाने का देते हैं, फिर भी उनके

बारे में उल्टा बोलते हैं। वे पड़ोसी को ऐसा कहते हैं कि 'मेरे पापा, मम्मी से लड़ रहे थे, नालायक हैं!' तब फिर उस लड़के को पड़ोसी उकसाते हैं। खुद अपने ही घर की बात बाहर निकाल देता है! यानी सिन्सियारिटी रही ही नहीं इस काल में।

'ज्ञानी पुरुष' का सिद्धांत कैसा!

जिन्हें पूज्य माना हो फिर वे चाहे जितना खराब करें, परन्तु तू तेरी दृष्टि मत बदलना। मेरा तो पहले से ही सिद्धांत है कि मैंने जिस पौधे को पानी पिलाकर बड़ा किया हो तो वहाँ से मुझे रेल्वे लाइन भी ले जानी हो तो उसके पास से मोड़कर ले जाऊँ, परन्तु मेरा उगाया हुआ पौधा नहीं उखाड़ूँ! सिद्धांत होना चाहिए। एकबार स्थापित करने के बाद फिर खंडन कभी भी नहीं करते। खंडन की बात तो कहाँ रही, परन्तु आप मिले हो तब से आपके लिए जो अभिप्राय बनाया है, एक सेकन्ड के लिए भी मेरा वह अभिप्राय बदलता नहीं! आज मैं नक्की करूँ कि यह मनुष्य अच्छा है, फिर उस आदमी ने मेरी जेब में से पैसे ले लिए हों, कोई इस बात को सिद्ध कर देता हो कि मैंने खुद उसे चोरी करते हुए देखा है, फिर भी मैं कहूँ कि यह चोर नहीं है। क्योंकि हमारी समझ अलग है। वह व्यक्ति हमेशा के लिए कैसा है, वैसा हमने देख लिया है, फिर संयोगवश वह व्यक्ति चाहे जो करे, उसकी हम *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना) नहीं करते। पूरा जगत् संयोगवश की *नोंध* करता है। मूलतः पूर्वविराधक जीव हैं इसलिए विराधना का उन्हें विचार आता ही है। उसमें हम उनका दोष नहीं मानते। हम क्या कहते हैं कि विराधना का विचार तो आपको आएगा ही, परन्तु विराधना में हमें एकाकार नहीं हो जाना चाहिए, उस रूप नहीं हो जाना चाहिए।

हर एक भूल मिटाने के बाद ही मोक्ष में जाया जा सकेगा। भूल मिटाए बगैर मोक्ष में नहीं जाया जा सकेगा।

चाहे जैसे संयोग मिलें फिर भी स्थिरता नहीं टूटे, ध्येय नहीं बदले, उसे धर्म प्राप्त किया कहा जाएगा। यह तो लोग आबरू रखने के लिए

अच्छे रहते हैं या फिर उल्टे रास्ते ले जानेवाले संयोग नहीं मिले इसलिए अच्छे रहे हैं! हम सबका ध्येय 'शुद्धात्मा' और मोक्ष, ताकि दूसरा कुछ छुए ही नहीं। पर-परिणति छुए ही नहीं। अभी आप पूरा दिन पर-परिणति में रहते हो और मोक्ष ढूंढ रहे हो? मोक्ष में जाना हो तो वही एक ध्येय चाहिए।

धर्म का मर्म

धर्म तो बाहर भी है। इतने सारे लोग धर्म में जाते हैं, मंदिर में जाते हैं, उपाश्रय में जाते हैं, वहाँ सब जगह धर्म है, परन्तु मर्म नहीं रहा, वहाँ मर्म जैसा कुछ भी नहीं मिलता। इतना बड़ा हाफूज़ का आम हो, परन्तु काटें तब अंदर गुठली और छिलके दो ही निकलें, तब उसमें क्या मर्म रहा? वैसा धर्म रह गया है, परन्तु धर्म का मर्म नहीं रहा। धर्म अर्थात् सच्ची वस्तु की खोज आरोपित भाव से करनी, वह। और 'यह' तो 'साइन्स' है! धर्म तो वह कि आध्यात्मिक के साधन मिलवा दे।

...वैसा भान, वह भी बड़ी जागृति

गुरु की ही विराधना यानि कि जिसके द्वारा कुछ प्राप्त किया था, एक आना या दो आना, उसकी खुद विराधना करे अर्थात् जिससे स्थापन होनेवाला था उसका ही खंडन करे, वे पूर्वविराधक जीव। इस काल में पूर्वविराधक जीव हैं, मैं भी उनमें से था। मुझे यह ज्ञान हुआ था, वह 'मैं पूर्वविराधक हूँ' वैसा भान होने के बाद यह ज्ञान हुआ था।

गुरु को पहचानना....

प्रश्नकर्ता : नासमझी में गुरु को पहचाने बिना गुरु बना लेने के बाद समझ में आया कि ये गुरु ठीक नहीं हैं, तो क्या करें?

दादाश्री : गुरु को पहचानना नहीं होता है, गुरु के प्रति तो हमें भाव होता है, इसलिए उन्हें गुरु बना देते हैं। गुरु को पहचानना तो किसीको आता ही नहीं। वैसी जौहरीपन ही कहाँ है? ये तो काँच ले आएँ वैसे लोग हैं। इन्हें हीरे की परख है, परन्तु मनुष्य की परख कहाँ से लाएँ? यह क्या

होता है कि भाव आता है और गुरु बना देते हैं, 'साहब, कल से आप मेरे गुरु।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो उन्हें गुरु बनाया इसलिए ठेठ तक उनके साथ में ही रहना चाहिए?

दादाश्री : गुरु बनाने के बाद उनके उदयकर्म बदलें और वे कुछ पागल हो जाएँ तो भी उनका गुरुपद क्या चला गया? वे उदयकर्म के आधार पर पागलपन करते हैं, परन्तु जो शिष्य उनका गुरुपद सँभालकर रखें, उसे भगवान ने आराधक पद माना है। जिनकी आराधना की उनकी विराधना नहीं करनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी कहते हैं न कि गुरु के बिना ज्ञान किस तरह मिलेगा?

दादाश्री : गुरु तो रास्ता दिखाते हैं, मार्ग दिखाते हैं और 'ज्ञानी पुरुष' ज्ञान देते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' अर्थात् जिन्हें जानने को कुछ भी बाकी नहीं रहा, खुद तद्स्वरूप में बैठे हैं। अर्थात् 'ज्ञानी पुरुष' आपको सबकुछ दे देते हैं और गुरु तो संसार में आपको रास्ता दिखाते हैं, उनके कहे अनुसार करें तो संसार में सुखी हो जाते हैं। परन्तु वहाँ पर यह दु:ख, यह *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) जाती नहीं न? यह *उपाधि* तो हमेशा के लिए चिपटी हुई ही रहती है। ये सब लोग गुरु को भजते हैं, तब यदि बहुत हुआ तो सांसारिक सुख थोड़ा-बहुत मिलता है, परन्तु *उपाधि* नहीं जाती। आधि, व्याधि और *उपाधि* में समाधि दिलवाएँ वे 'ज्ञानी पुरुष'।

❖❖❖❖❖

(२१)
तपश्चर्या का हेतु

तप, त्याग और उपवास

प्रश्नकर्ता : व्रत, तप, नियम ज़रूरी हैं या गैरज़रूरी हैं?

दादाश्री : ऐसा है, ये केमिस्ट के यहाँ जितनी दवाइयाँ हैं वे सभी ज़रूरी हैं, पर वह लोगों के लिए ज़रूरी हैं, आपको तो जो दवाइयाँ ज़रूरी हैं उतनी ही बोतलें आपको ले जानी हैं। वैसे ही व्रत, तप, नियम, इन सभी की ज़रूरत है। इस जगत् में कुछ भी गलत नहीं है। चोरी करता है वह गलत नहीं है, ये इन्कम टैक्स वसूलते हैं वह भी गलत नहीं है। अपनी जेब कट जाती है वह तो कुदरत का टैक्स है! उस टैक्स की वसूली करनेवाले चोर लोग ही तो हैं! उसमें कुछ गलत है ही नहीं। जप, तप कुछ भी गलत नहीं है। परन्तु हर एक की दृष्टि से, हर एक की अपेक्षा से सत्य है।

प्रश्नकर्ता : तो जप-तप करना ज़रूरी है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, ड्रगिस्ट के वहाँ सभी दवाईयाँ होती हैं तो क्या सारी दवाईयाँ हमें खाने की ज़रूरत है? आपको जितना दर्द हो उतनी ही दवाई, एकाध-दो बोतलें लेनी होती हैं। सभी बोतलें ले जाएँ तो मर जाएँगे उल्टा! जप-तप का शौक़ हो तो वह करना।

प्रश्नकर्ता : जप-तप का शौक़ होता है?

दादाश्री : शौक़ के बिना तो कोई करता होगा? ऐसा है, यह स्त्रियों का शौक़, शराब का शौक़, बीड़ी का शौक़, वे सभी शौक़ अशुभ शौक़ कहलाते हैं। और ये जप-तप वे शुभ के शौक़ हैं। हमेशा ही रोज़-रोज़

करना पड़े वह सब शौक़ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जप-तप से कर्म बंधते हैं?

दादाश्री : उससे कर्म ही बंधते हैं न! हर एक चीज़ से कर्म ही बंधते हैं। रात को सो जाओ तो भी कर्म बंधते हैं। और जप-तप करते हैं उससे तो बहुत कर्म बंधते हैं। परन्तु वे पुण्य के कर्म बंधते हैं, उससे अगले जन्म में भौतिक सुख मिलते हैं।

यह पूरा वीतराग मार्ग लाभालाभ का मार्ग है। धर्म में पाँच आना भी जाने मत देना। उपवास करे तो कहता फिरता है कि, 'दो उपवास हैं और तीन उपवास हैं।' और बेटा आए उसके साथ कलह करता है, 'क्यों आज सुबह दुकान में नहीं गया?' अरे, दुकान का तुझे क्या करना है? तू अपना उपवास कर न। बेटा कहेगा कि, 'ज़रा आज मुझसे जाया नहीं जा सका।' तो पिता कलह करता है। इस तरफ माँजी इस रूम में उपवास में बैठी हों और दूसरे रूम में प्याले बजने लगें तो 'यह क्या हुआ? क्या फूटा?' करती हैं। माँजी, आपका आत्मा फूट गया! एक प्याला फूटा तो वहाँ पर चित्त चला जाता है। ये सब निरा नुकसान ही उठाते हैं।

प्राप्त तप

ऐसा है, इस काल में जीवों को जान-बूझकर तप नहीं करने हैं और अनजाने में जो तप आ जाएँ, अपने आप आ पड़ें, तो वैसे तप करने को कहा है। क्योंकि इस दूषमकाल में एक तो मनुष्य मूलत: तपा हुआ ही होता है, फिर घर में हो, बेडरूम में हो या उपाश्रय में हो। पर होता है तपा हुआ ही। तपे हुए को तपाकर क्या काम है? सिर कटवाकर पगड़ी पहनने जैसी बात है यह। प्याला फूटे तब तप करना है। बेटा दुकान पर नहीं गया, तब तप करना है। प्रतिकूलता में जब हमारी प्रकृति उछले तब भीतर घमासान मच जाता है, उस समय तप करना है। इस काल में आ चुके तप करने हैं। सत्युग में तो सेठ को पूरी ज़िन्दगीभर पता भी नहीं चलता था कि 'घर में चावल कहाँ से आते हैं और कितने के आते हैं?' अपने आप आया ही करता था! और आज तो घर के सारे ही लोगों को

पता चल जाता है कि अभी राशन के लिए गए हैं, चावल लाएँगे, चीनी लाएँगे। देखो पुण्यशाली (!) लोग ये! अरे! बड़े बारह-बारह मंज़िल के मकान बनाए फिर भी उनके पुण्य कितने कच्चे पड़ जाते हैं?

'ज्ञानी' को त्यागात्याग?

वीतराग मार्ग के मनुष्य का जीवन उपयोगमय होना चाहिए। वह उपयोग कैसा होता है कि अशुभ होता हो उसमें से शुभ को ग्रहण करते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' को 'त्यागात्याग' संभव नहीं होता, वह समझाइए।

दादाश्री : यानी क्या कि ये यहाँ पर भोजन की थाली आई हो और उसमें कढ़ी खारी आई तो 'ज्ञानी' उसका निबटारा कर देते हैं। और कढ़ी बहुत अच्छी आई, स्वादिष्ट आई तो भी उसका निबटारा कर देते हैं। वहाँ पर 'यह मैंने त्याग दिया है' ऐसा नहीं कहते। त्याग कहा अर्थात् तिरस्कार कहलाता है और अत्याग वह राग है। 'ज्ञानी' को राग या द्वेष कुछ भी नहीं होता, इसलिए 'ज्ञानी' को त्यागात्याग संभव नहीं होता, जो आया वह वीतराग भाव से स्वीकार कर लेते हैं और उसका निबटारा कर देते हैं। हमें तो *निकाल* करके हल लाना है।

भगवान ने, ये लोग जो त्याग करते हैं, उसे त्याग नहीं कहा है। भगवान ने वस्तु की मूर्छा के त्याग को त्याग कहा है। इन 'दादा' के पास चीज़ें सारी ही हैं। फलाना है, व्यापार है, उनके नाम से व्यापार चलता है, उनके नाम के चेक चलते हैं। 'दादा' ने कुछ भी त्याग नहीं दिया है। परन्तु नहीं, उन्हें मूर्छा किसी भी प्रकार की नहीं है, इसलिए उनका सर्वस्व त्याग है। और साधु महाराज कहते हैं न कि, 'मेरा जन्मस्थल इस गाँव में है', वैसा नहीं बोल सकते। त्यागी हैं फिर भी यह सारा अंदर भरा हुआ होता है, वह मूर्छा टूटी नहीं है। और हम जो कहते हैं उसमें कुछ भी त्याग करने जैसा नहीं है। किसका त्याग करने जैसा नहीं है? वस्तु का त्याग नहीं करना है, मूर्छा का त्याग करना है। मूर्छा किसे कहते हैं? मोहनीय

कर्म को। लोगों ने वस्तुएँ बहुत त्याग दी हैं, परन्तु वस्तु तो पूरी खड़ी ही रही है। क्योंकि वस्तु की मूर्छा नहीं गई। स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के बाद आपको मूर्छा नहीं रहती, क्योंकि आप शुद्धात्मा हुए हो। शुद्धात्मा हो गए इसलिए सर्व मूर्छा गई। आपके मोहनीय कर्म का संपूर्ण नाश हो गया है, नहीं तो शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठता नहीं। मोहनीय कर्म का छींटा भी हो, तब तक शुद्धात्मा का लक्ष्य नहीं बैठता है।

शुद्धात्मा का लक्ष्य

प्रश्नकर्ता : दादा, शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठे यानी वह अनुभव में आए तब लक्ष्य बैठा कहलाएगा?

दादाश्री : रात को आप सो गए हों और जागो, तब सबसे पहले अपने आप क्या लक्ष्य में आता है आपको?

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वही आता है।

दादाश्री : अपने आप 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा आए तो लक्ष्य बैठ गया है ऐसा समझना। उसे याद नहीं करना पड़ता। याद करें तो वह तो याददाश्त नहीं हो तो याद नहीं भी आए। लक्ष्य, वही जागृति है। और हम लोगों को तो अनुभव भी है। अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति - ये तीनों ही हमें हैं। आत्मा का अनुभव हो जाए, उसके बाद ही समभाव से क्रिया होती है, प्रवर्तन होता है।

'दादाई' ग्यारस

यह ग्यारस करते हैं, वह भी साइन्टिफिक है। ये 'दादा' की ग्यारस ज़िन्दगी में एक बार करे तो उसका कल्याण हो जाए ऐसा है, एक बार 'दादा' के नाम पर होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा की ग्यारस किस तरह करनी चाहिए?

दादाश्री : पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन, उन्हें निराहारी रखें। आँख, कान, मुँह, स्पर्श वे ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ-पैर, संडास

वे सभी कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन, उन्हें एक दिन खुराक नहीं देनी है, कान से सुना तो जाएगा पर हमें सुनने नहीं जाना है, आँख से दिखेगा, पर हमें उठकर देखने नहीं जाना है। पूरे दिन कुछ भी नहीं करना है, मन को बिल्कुल खुराक नहीं देनी है।

प्रश्नकर्ता : हिल-डुल सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, कुछ भी नहीं कर सकते।

प्रश्नकर्ता : सो सकते हैं?

दादाश्री : लेट सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : नींद आए तो?

दादाश्री : तो वापिस बैठ जाना। चौबीस घंटे निरंतर जागृति में निकालने हैं। ऐसी एक ही ग्यारस करो तो आत्मा जुदा ही पड़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इसका पालन करना कठिन है।

दादाश्री : आप निश्चय करोगे तो उसका पालन होगा ही। आपका निश्चय और हमारा वचनबल हो तो वह पाला ही जा सकेगा!

प्रश्नकर्ता : उपवास करना हो तो आपकी आज्ञा लेकर करना चाहिए क्या?

दादाश्री : हम किसीको ऐसी आज्ञा नहीं देते हैं कि तू उपवास कर। परन्तु आपको उपवास करना हो तो उसका निश्चय करके हमारे पास से आज्ञा ले जाना। आज्ञा से, वचनबल से आपका काम पूरा होता है।

प्रश्नकर्ता : कभी 'दादा' यहाँ मुंबई में उपस्थित नहीं हों और उपवास करने की इच्छा हो तो आपके चित्रपट के पास से आज्ञा ली जा सकती है?

दादाश्री : हाँ, आज्ञा लेकर करो तो हर्ज नहीं है। आप बुलाओ तो उपस्थित हो जाऊँ ऐसा हूँ। पर आपको बुलाना नहीं आता है न?

प्रश्नकर्ता : पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों का तो समझ में आया पर मन का क्या दादा? वह तो भ्रमण करता ही है न?

दादाश्री : भले ही भ्रमण करे। हमें उसे आहार नहीं देना है, उसे निराहारी रखना है। फिर वह उछलकूद करे या बैठा रहे, पर हमें उसे आहार नहीं देना है। हाथों को आहार नहीं देना है, आँखों को आहार नहीं देना है, उस दिन बैठे रहना है। फिर पैरों को आहार नहीं देना है, पुस्तक लेकर नहीं बैठना है और 'दादा, दादा' बोलते रहना है। वह भी मुँह से नहीं बोलना है, मन में 'दादा' का स्मरण चलता ही रहे। ऐसे यदि एक ग्यारस करें तो इकट्ठा फल मिल जाएगा। यह तो ग्यारस करे तब भी मोरैया के लड्डू, फिर घी की पूरियाँ, कढ़ी- अलग-अलग प्रकार की सब्ज़ियाँ, तो बल्कि उस दिन अधिक खा लेता है।

प्रश्नकर्ता : तप करे, उपवास करे, आयंबिल करे, उससे क्या होता है?

दादाश्री : उससे शरीर शुद्ध होता है और मन की शुद्धि होती है। ज़रा वाणी भी अच्छी होती है और कभी वाणी बिगड़ भी जाती है। अच्छा भोजन करने के बाद बोलने का कहे तो बोलेगा नहीं। और भूखे पेट हो तो जलन निकालता है!

आयंबिल : एक साइन्टिफिक प्रयोग

प्रश्नकर्ता : यह आयंबिल जो किया जाता है, वह भगवान महावीर के समय से है या कब से है?

दादाश्री : आयंबिल तो साइन्स है। वह भगवान ऋषभदेव के समय से है। वह आत्मधर्म के हेतु के लिए नहीं है, शरीरधर्म के हेतु के लिए है। वह शरीर को अच्छा रखने के लिए है। जिसके शरीर में ज़हरीले द्रव्य हों या फिर शरीर स्वस्थ नहीं हो, वह आयंबिल करे। वह पद्धतिपूर्वक होना चाहिए। एक ही वस्तु, एक ही धान खाते हैं, दूसरा धान नहीं खाते। आयंबिल बहुत ही सच कहा है। तीर्थंकर भगवान के महल में 'यह' पूरा

विभाग सच बचा है, दूसरा सभी ध्वस्त हो गया है।

प्रश्नकर्ता : आयंबिल में ये जो विधियाँ करते हैं, मालाएँ फेरते हैं, वह सब ठीक है?

दादाश्री : आयंबिल का और उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह फिर अलग चीज़ है। आयंबिल अर्थात् क्या कि एक बार में एक ही धान खाना और भगवान के मंत्र जपते रहना, वही। आयंबिल अर्थात् मंत्र नहीं जपता हो और (एक धान) एक ही समय खाए तो भी वह आयंबिल कहलाता है। वह तो कोई भी कर सकता है। एक धान खाकर रहे, वह तो शरीर का बहुत बड़ा तप है। उससे शरीर के सभी प्रकार के पोइज़न, सभी द्रव्य जलकर नष्ट हो जाते हैं, वह सबसे अच्छा है। यह तो तीर्थंकर महाराजों की साइन्टिफिक खोज है! इसलिए जैनों से कहा है कि आप इतने तो भाग्यशाली हो कि यह आयंबिल आपके यहाँ बचा है। परन्तु अभी तक एक धान खाते हैं और उसका शरीर अच्छा रहता है। आयंबिल से चमड़ी के कुछ रोग मिट जाते हैं। कोढ़ के लिए भी वह लाभदायक है।

प्रश्नकर्ता : बहुत लोग आयंबिल वर्षों तक करते हैं, उससे क्या फायदा होता है?

दादाश्री : आयंबिल कुछ समय तक करें तो ही फायदा होता है, बहुत लम्बे काल तक करें तो फिर नुकसान करता है। शरीर में दूसरे द्रव्य, विटामिनों की कमी हो जाती है। सबकुछ नोर्मेलिटी में चाहिए।

उपवास में उपयोग

प्रश्नकर्ता : उपवास तीन दिन, नौ दिन, एक महीना, तीन महीनों के किए जाते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : उपवास अच्छी वस्तु है, पर उपवास तो, जिसने बहुत पकवान खाए हों, उसके लिए उपवास होता है। ये बेचारे कंट्रोल का अनाज खाकर पड़े रहते हैं, उनके लिए कैसा उपवास? उपवास करने को गलत

नहीं कहा है भगवान ने। भगवान ने कहा है कि, 'उपवास करना, परन्तु उपवास के सार के रूप में आत्मा प्राप्त नहीं हो तो उपवास गए बेकार।' उपवास के सार के रूप में आत्मा नहीं मिला, आत्मा का कुछ समकित जैसा नहीं हुआ तो उपवास का फल संसारफल मिलेगा, उसका पुण्य मिलेगा। यह तो अनंत जन्मों से उपवास करता है, परन्तु भगवान ने उसे बिना समझे भूखों मरना कहा है। क्योंकि बिना उपयोग से किए गए सारे उपवास बेकार गए हैं!! यह तो तपवाले के साथ बैठें तो हमलोगों को भी तप करना अच्छा लगेगा ही। आत्मा तो आहारी है ही नहीं, यह देह ही आहारी है। यह तो एक बार आत्मा जानने के बाद ही स्पष्ट होता है। नहीं तो स्पष्ट होता ही नहीं।

भगवान ने कहा है कि उपयोगपूर्वक एक उपवास होगा तो काम हो जाएगा। यह आपको स्वरूपज्ञान प्राप्त हुआ है, इसलिए आपसे तो शुद्धात्मा के उपयोगपूर्वक उपवास होगा, शुद्ध उपयोगपूर्वक होगा। आपके पास तो 'वस्तु' हाथ में आ गई है, पतंग की डोर आपके हाथ में है। अब उसे गोता नहीं खाने देना, वह आपके हाथ में है। एक उपवास हो सके तो एक करके तो देखो। फिर उसका 'टेस्ट' तो देखो! रविवार का दिन हो, कहीं भी जाना नहीं हो, तब करना। उसमें सोए रहना नहीं होता। सोने से उपयोग नहीं रहता न? और यह उपवास तो शुद्ध उपयोगपूर्वक करना है। उसमें पूरा दिन ये कविराज के पद पढ़ो तो बाहर भी शुद्ध और अंदर भी शुद्ध रहता है, नहीं तो हमारी पाँच आज्ञा का अवलंबन लेना चाहिए। उस तरह से पूरा दिन शुद्ध उपयोग में निकाल दो तो आपको उपवास किया हो वैसा लगेगा भी नहीं। भूख लगी है वैसा होता रहे, तो उपयोग चूक गए हों तभी वैसा होगा। भूख लगी ऐसा जानेंगे ज़रूर पर वेदेंगे नहीं। वेदें तो उपयोग चूक गए कहलाएगा। और जानें तो उपयोगपूर्वक का कहलाएगा। कुछ को तो उपवास के दिन तो बहुत अच्छा रहता है, शाता वेदनीय लगती है। यानी बिलीफ़ पर आधारित है।

प्रश्नकर्ता : 'दादा', उपयोग कहीं भी रहा नहीं, इसलिए उपयोग की कोई बात ही नहीं करता।

दादाश्री : उपयोग कहीं भी रहा ही नहीं है। इसलिए उपयोग की कोई बात नहीं करता। उपयोग का उपयोग बंद हो गया है इसलिए उसे रख दिया है एक ओर। बाक़ी, उपयोग को समझाएँ तो वह आसान नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझाए तो आसान है!

दादाश्री : भगवान ने कहा है कि अशुभ में से शुभ करे तो वह भी उपयोगपूर्वक कर और शुद्ध में आए तब तू शुद्ध उपयोग-यानी परमात्म स्वरूप हो गया। यानी उपयोग रखने को कहा है। यों तो सबकुछ होता है, पर उसका अर्थ ही नहीं कोई। हालाँकि उसका फल मिलेगा, किसीका बेकार नहीं जानेवाला है। शुद्ध उपयोग 'हम' एक मिनिट भी नहीं चूके हैं कभी भी। केवल-शुद्ध उपयोग ही होता है हमारा। शुभ उपयोग तो हमारे काम का रहा नहीं।

'शुद्ध उपयोगी ने समताधारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी,
कर्म कलंक को दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी।'

प्रश्नकर्ता : अपने 'स्वरूपज्ञान' प्राप्त किए हुए महात्मा उपवास करें तो?

दादाश्री : बहुत फायदा होगा। एक उपवास से पूरे वर्ष का फल मिलेगा, पर बहुत जागृति रखनी पड़ती है।

भगवान ने कहा है कि एक उपवास शुद्ध उपयोगपूर्वक हो तो पूरे वर्ष का शुद्ध उपयोग एक साथ हो जाता है। उपवास के लिए एक रात पहले ताला लगा देना चाहिए। रात को निश्चय करके सो जाएँ न कि कल शुद्ध उपयोगपूर्वक उपवास करना है। हमारी आज्ञा ले, उसके बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' के लक्ष्य में पूरा दिन रहे और हमारी पाँच आज्ञा में रहे। इस अनुसार छत्तीस घंटे मुँह पर ताला लगाकर उपवास करे तो पूरे वर्ष उसे शुद्ध उपयोग प्राप्त होगा। और भगवान ने कहा है कि यदि तुझे ज्ञान नहीं हो और उपवास करेगा तो तुझे भूखे रहने का फल मिलेगा,

तुझे बुखार आया होगा तो मिट जाएगा। कुछ तो रथ पर बैठने के लिए उपवास करते हैं। अरे, तेरे शरीर की पसलियाँ तो दिख रही हैं, फिर किसलिए ऐसा करता है? वह तो कोई मोटा हो उसके काम का है। भगवान का कहा हुआ उपवास गलत नहीं है। वह तो बहुत सुंदर है, पर वह किसे करने को कहा था? ये आपको मैंने 'स्वरूपज्ञान' दिया है, इसलिए आप उपवास करो तो वह भगवान के कहे अनुसार होगा। वर्ना जिसने असली घी खाया हो, शुद्ध दूध पीया हो, भोजन करते समय शुद्ध घी हो, जब कंट्रोल का अनाज नहीं था, कंट्रोल का घी नहीं था, मिलावटवाला माल नहीं था, उन दिनों जो भोजन करते थे उन्हें भगवान ने उपवास करने को कहा था। आज के ये जीव भूखे हैं, उन्हें भला क्या उपवास करने? इन लोगों में ताकत ही कहाँ है? इनकी पसलियाँ तो दिखती हैं। दो-तीन उपवास करे तो हर्ज नहीं है।

...एक भी उपवास नहीं हुआ

प्रश्नकर्ता : आपने ज्ञानी बनने के लिए कितने उपवास किए?

दादाश्री : मुझे सौगंध खाने के लिए एक उपवास करना चाहिए, वह भी नहीं हुआ। हम निरंतर उणोदरी तप करते हैं, यह हमारी खोज है। निरंतर उणोदरी, वह निरंतर उपवास जैसा है। ये बारहों प्रकार के तप करने जाएँ तो कब अंत आएगा?

उणोदरी-जागृति का हेतु

प्रश्नकर्ता : जीवन में मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए उपवास नहीं हो सके तो यथाशक्ति क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उणोदरी करना।

प्रश्नकर्ता : उणोदरी का अर्थ क्या है?

दादाश्री : आप चार रोटियाँ खाते हों तो पहले तीन रोटियाँ खाओ, फिर दो रोटियाँ खाओ, वह उणोदरी कहलाता है। यह पेट कुछ भी डाल देने के लिए नहीं है!

प्रश्नकर्ता : आवश्यक भोजन नहीं करें तो धर्म का पुरुषार्थ किस तरह हो सकेगा?

दादाश्री : उणोदरी अर्थात् भूख लगे तो खाना, पर भूखे पेट धर्म करने को नहीं कहा है। उणोदरी से डोज़िंग नहीं होता। उणोदरी सबसे अच्छी चीज़ है। भोजन के चार भाग कर देने हैं। दो भाग रोटी-सब्ज़ी के, एक भाग पानी और एक भाग खाली रहने देना वायु संचार के लिए। नहीं तो जागृति खत्म हो जाएगी। जागृति नहीं चूकें वह उणोदरी कहलाता है। उपवास तो यहाँ बहुत बढ़ गया हो, शरीर बिगड़ गया हो तब करना। वह आवश्यक नहीं है।

'उपवास', फिर भी कषाय

प्रश्नकर्ता : जिस दिन उपवास करूँ उस दिन सुबह में उठूँ तब से 'कोई मेरा काम कर दे तो अच्छा' ऐसा होता रहता है।

दादाश्री : ऐसा भिखारीपन करने के बदले तप नहीं करना अच्छा है। भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि स्वाश्रयी बनने के बदले पराश्रयी बनो।

प्रश्नकर्ता : उपवास किया हो तब कोई चीज़ खाने का मन करता हो, तब होता है कि आज तो मेरा उपवास है, परन्तु जो वस्तु भाती हो वह 'रख देना, कल खाऊँगा' तो उसका दोष लगता होगा या नहीं?

दादाश्री : उसके बदले तो खानेवाला होता है वह खाकर मुक्त हो जाता है' और नहीं खानेवाला बंधता है, उसे बंधन नाम का दोष लगता है। खानेवाला खाता है और बंधता नहीं। वह तो खाता है और फिर उसे भूल जाता है। 'कल खाऊँगा' वाला खाता नहीं है, फिर भी उससे चिपटा रहता है, इसलिए वह बंधन में आया। अर्थात् यह झूठी बात जब उदय में आएगी, तब वह चार पैरोंवाला बन जाएगा! इसे ही, धर्म में पागलपन घुस गया है, कहा जाता है न? अरे, यह तो बड़ी जिम्मेदारी उठा ली, ऐसा कहा जाएगा। 'कल खाऊँगा' कहता है इसलिए रात को वह याद आता है, 'फ्रिज़ में रखा है इसलिए कल खाऊँगा' ऐसा ध्यान रहा करता है। अब

यह ध्यान क्या नहीं करता? दो पैरों में से चार पैर कर देता है। दो पैरों से गिर जाता हो, उसके बदले चार पैर हो जाते हैं, तब गिरा तो नहीं जाएगा न फिर?!

यह तो उपवास करता है और साथ में कषाय भी करता है। कषाय करने हों तो उपवास मत करना और उपवास करना हो तो कषाय मत करना। आर्तध्यान और रौद्रध्यान किए बिना उपवास करना चाहिए। तब जिस दिन उपवास नहीं हो उस दिन यदि खाने का दो बजे तक नहीं मिले तो शोरशराबा कर देता है, लट्टू उछलता रहता है और चिल्लाता रहता है कि यह गाँव ही ऐसा है कि यहाँ होटल ही नहीं! वास्तव में, उस समय, उस जगह पर सँभाल लेना है। अरे, आज वीतराग का कहा हुआ उपवास कर न तो मन कूदना बंद हो जाएगा। और विवाह के मौके पर अच्छा-अच्छा खाने-पीने का हो, तब 'आज मेरा उपवास है' कहकर खड़ा रहेगा! लोग ऐसे हो गए हैं!! यह तो कुछ भान ही नहीं है लोगों को कि कौन-से संयोगों में उपवास करें। जब खाने का नहीं मिले या मनभाता भोजन नहीं मिले तो तप में तपना। यह तो खाने का उसे समय पर हाज़िर हो जाए वैसा है। और जब नहीं मिले तब समझ जा न कि ऐसा नहीं लगता कि आज ठिकाना पड़ेगा इसलिए आज उपवास है। पर यह तो सेठ क्या करेगा कि भूख लगी तो जाकर लक्ष्मी लॉज देखकर ऊपर चढ़ेगा और कहेगा कि, 'यह तो गंदी है, ये लोग तो गंदे दिखते हैं।' तब सेठ नीचे उतर जाते हैं और कषाय करते हैं। खाना-पीना सब सारे मसाले आपके लिए तैयार हैं, लोग तंग आ जाएँ उतनी सामग्री है। लेकिन किसलिए नहीं मिलता है? क्योंकि अंतराय लाया है। बत्तीस-बत्तीस प्रकार के भोजन मिल जाएँ ऐसा है, पर इन्हें तो शुद्ध घी डली हुई खिचड़ी भी नहीं मिलती, क्योंकि अंतराय लेकर आए हैं।

भगवान ने कषाय करने को मना किया है। तप करते समय कषाय करे, उसके बदले तप नहीं करे तो अच्छा। कषाय की बहुत ही क़ीमत है। तप में जितना लाभ है, उससे अधिक कषाय में नुकसान है। यह वीतरागों का धर्म लाभालाभवाला है। इसलिए सौ प्रतिशत लाभ हो और

अठानवे प्रतिशत नुकसान हो तो दो प्रतिशत हमारे घर में बचा, ऐसा मानकर व्यापार करना है। परन्तु कषाय से सबकुछ जलकर भस्मीभूत हो जाता है, कषाय सबकुछ ही खा जाता है। किस प्रकार खा जाता है? यह तो उसके जैसा है कि अंधा आदमी डोरी बना रहा हो और पीछे बछड़ा चबाता रहे। अंधा समझता है कि डोरी लम्बी होती जा रही है और बछड़ा डोरी चबा जाता है। वैसा ही इन सब अज्ञानक्रियाओं का फल है। एकबार समझकर करे तो काम हो जाए। अनंत जन्मों से ऐसे के ऐसे ही किया है। जप किए, तप किए, पर फिर वह आज्ञापूर्वक नहीं किया। खुद के मत से, स्वच्छंद से किया। सिर पर समकिती गुरु हों तो उनकी आज्ञासहित करना चाहिए। गुरु समकिती होने चाहिए, मिथ्यात्वी गुरु नहीं चलेंगे। मिथ्यात्वी गुरु हमारा मिथ्यात्व नहीं निकालते फिर भी मिथ्यात्वी गुरु हों तो हमें उनकी सेवा करनी चाहिए। परन्तु गुरु तो समकिती चाहिए, जिन्हें आत्मा का भान हो वैसे गुरु बनाएँ तब अपना काम होगा। बाक़ी मिथ्यात्वी का संग करें तो अपना संघ काशी में जाएगा नहीं और रास्ते में ही भटक मरेगा!

प्रश्नकर्ता : जागृतिपूर्वक के उपवास किसे कहते हैं?

दादाश्री : कोई जागृत व्यक्ति हो, उसके निमित्त से उपवास करो तो वह जागृतिपूर्वक किया कहा जाएगा। अभी मैं जागृत पुरुष हूँ, यदि मेरे शब्द से उपवास करे तो वह जागृतिपूर्वक का उपवास कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जागृति प्राप्त करने से पहले क्राइस्ट, बुद्ध ने भी उपवास किए थे न?

दादाश्री : सिर्फ उपवास ही नहीं, परन्तु दूसरी बहुत सारी चीज़ें उन्होंने की थीं।

भोजन खुद ही मादक वस्तु है। कोई भी भोजन हो, पर वह मादक वस्तु है, इसलिए उसकी मादकता में सभी मज़े करते रहते हैं। उपवास से उसकी सारी मादकता उतर जाती है। परन्तु उस जागृति का बाद में फिर पोषण नहीं हो तो बेकार है। वह शरीर को अच्छा बनाता है, ज़रा-सा मन अच्छा करता है, उतना ही। पर फिर जागृति नहीं रहती, वह वापिस सो

जाता है। क्योंकि जब कभी भी खाए बिना तो चलेगा ही नहीं न? और एक बार संपूर्ण जागृत हो जाने के बाद खाए-पीए तो कोई हर्ज नहीं। एक बार आँख खुली फिर भले ही खाए-पीए, उसे कुछ भी बाधक नहीं होता। वह तो जिसे जो माफिक आए वह भोजन तो लेना ही पड़ता है। तुझे यदि माफिक आए तो तप की खुराक लेना और माफिक नहीं आए तो वह मत लेना। तप भी खुराक है। फिर भी तुझे अजीर्ण हो जाए तो उपवास करना। भगवान का और भोजन का कुछ लेना-देना नहीं है। आत्मा को उपवास की क्या ज़रूरत है? ये तो उपवास करते हैं और कहते हैं कि आत्मा के लिए कर रहा हूँ। आत्मा कहता है कि उसमें मुझ पर क्या उपकार किया? इसलिए आपको जब ऐसा लगे कि यह तप करना है, तब करना।

उपवास से मुक्ति?

इस शरीर को रोज़ खिलाते रहते हैं, उसे एक दिन निराहारी रखें तो शरीर अच्छा रहेगा, मन अच्छा रहेगा, सब अच्छा रहेगा - हानिकारक नहीं। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे इन सबकी ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत है, पर उपवास का अभिनिवेष नहीं होना चाहिए। मोक्ष में जाना हो तो इतना समझना चाहिए कि 'मैं बंधा हुआ हूँ या नहीं?' फिर यह जानना चाहिए कि, 'यह बंधन किस तरह टूटेगा? बंधन किस आधार पर हुआ है? यह बंधन किससे टूटेगा?' उसके उपाय जान लेने चाहिए।

बंधन तोड़ने के उपाय तो जो मुक्त हो चुके हों उनसे हमें पूछना चाहिए कि, 'साहब, आप मुक्त हो चुके हैं तो मैं आपके साथ बैठूँ, नहीं तो मुझे टाइम बिगाड़कर क्या करना है? वर्ना आप बंधे हुए हैं और मैं भी बंधा हुआ हूँ तब हमारा काम कैसे होगा?' तुझे कोई कहनेवाले नहीं मिले कि मैं मुक्त हो चुका हूँ?

प्रश्नकर्ता : यह आपका सत्संग मिला है न?

दादाश्री : बस, तो, 'हम' मुक्त हो चुके हैं, वैसा हम कहते हैं! और तुझे मुक्ति चाहिए तो आना। इसकी फ़ीस वगैरह नहीं होती और भगवान के मुक्तिमार्ग में फ़ीस जैसा कुछ होता ही नहीं। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष'

किसे कहा जाता है कि जिसे लक्ष्मी की भीख नहीं हो, कीर्ति की भीख नहीं हो, शिष्यों की, विषयों की भीख नहीं हो, किसी चीज़ की भीख नहीं हो, तब 'ज्ञानी' का पद प्राप्त होता है।

'करो' पर फल 'श्रद्धा' से ही

प्रश्नकर्ता : परन्तु ज्योतिषी ऐसा कहते हैं कि राहु और केतु बाधक हैं, इसलिए बुधवार का व्रत करो।

दादाश्री : तो आप बुधवार का व्रत करो। उसमें क्या नुकसान है? यदि ज्योतिषी के वहाँ गए तो बुधवार का व्रत करना, नहीं तो जाना मत। ज्योतिषी के घर पर पूछने गए तो वहम घुस गया न? इसलिए अब बुधवार का व्रत कर लेना। वैसे भी उपवास से शरीर को फायदा होता है।

प्रश्नकर्ता : हमारे घर पर वंश-परंपरागत सोमवार का उपवास चलता है।

दादाश्री : वह करना। आपको विश्वास है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : विश्वास तो होगा ही न?

दादाश्री : जो करो वह विश्वास से करना चाहिए और विश्वास डिग जाए तो नहीं करना चाहिए। गाड़ी में बैठते ही ऐसा लगे कि 'कल गाड़ी पटरी पर से उतर गई थी, वह आज भी उतर गई तो क्या होगा?' तब उस घड़ी गाड़ी में से उतर जाना। विश्वास नहीं आए तब उसके किस काम का? विश्वास हो तब तक करो, विश्वास नहीं हो तब छोड़ दो।

विश्वास तो कैसा होना चाहिए कि मारे, अपमान करे आपका, तो भी आपका विश्वास नहीं उठे! ऐसा विश्वास बैठ जाना चाहिए।

❖❖❖❖❖

(२२)
लौकिक धर्म

मोक्ष के लिए कौन-सा धर्म?

प्रश्नकर्ता : साधक किसी भी धर्म का ठीक से पालन करे तो वह मोक्ष तक पहुँच जाएगा न?

दादाश्री : साधक तो पक्षपाती है और भगवान कौन-से पक्ष के होंगे? निष्पक्षपाती होंगे न वे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : पक्ष में पड़े हुए का मोक्ष कभी भी नहीं होगा। हाँ, भौतिक सुख मिलेंगे। मोक्ष स्टेन्डर्डवाले को नहीं मिलता। आउट ऑफ स्टेन्डर्ड हो जाएँ तभी मोक्ष मिलेगा। यहाँ पर यह स्टेन्डर्ड से बाहर है। यहाँ सभी आते हैं, मुस्लिम, जैन, वैष्णव सभी आते हैं!

ये अलग-अलग धर्म हैं - जैनधर्म, वैष्णवधर्म, मुस्लिमधर्म - वे सभी 'रिलेटिव' धर्म हैं। इसमें से एक भी 'रियल' धर्म नहीं है। 'रिलेटिव' धर्म अर्थात् आपको डेवलप कर देता है। पर उसमें से फुल डेवलप नहीं हुआ जा सकता। और मोक्ष तो पूर्ण विकसित का ही हो सकता है। देह होने के बावजूद भी देह और आत्मा अलग रहें, उसके बाद ही मोक्ष होता है।

मोक्ष के लिए तो वीतराग वाणी के अलावा और नहीं कोई उपाय! और दूसरी सभी रागवाली वाणी होती है। वीतराग वाणी अर्थात् स्यादवाद। किसी जीव का प्रमाण नहीं *दुभे* (आहत होना)। फिर भले ही कसाई आए, पर वह भी उसके धर्म में ही है। वीतराग की दृष्टि से कोई एक घड़ी के लिए भी धर्म से बाहर नहीं जाता है। धर्म के बिना तो कोई एक क्षण भी

जी ही नहीं सकता, फिर भी अधर्म घुस जाता है। यह नास्तिक है वह भगवान में नहीं मानता, धर्म में नहीं मानता परन्तु अंत में नीति में मानता है और नीति तो सबसे बड़ा धर्म है। नैतिकता के बिना धर्म ही नहीं है। नैतिकता तो धर्म का आधारस्तंभ है। जो भगवान को नहीं मानता, वह भी धर्म में ही है। धर्म के बिना तो कोई है ही नहीं। आत्मा है तो धर्म होना ही चाहिए। हर एक मनुष्य धर्म में ही है! हाँ, परन्तु साथ में अधर्म भी होता है!!

धर्म, पक्ष में या निष्पक्षता में?

सब धर्मों के संप्रदाय-पंथ मताग्रह और कदाग्रह में ही रचे-बसे हैं। उनमें हर एक ऐसा मानता है कि उनके धर्म से ही मोक्ष होगा, ऐसा मानते हैं, पर वे सब आग्रही हैं, मताग्रही हैं। मताग्रह से कभी भी मोक्ष नहीं होता। निराग्रही का ही मोक्ष है। पक्ष में पड़ा हुआ मनुष्य उस पक्ष के शास्त्र पढ़े तो कुछ भी नहीं होगा। हर एक पक्ष का 'एसेन्स' (सार) निकाले और हर एक पक्ष के, हर एक धर्म के शास्त्र पढ़े, तब उसने धर्म को प्राप्त किया ऐसा कहा जाएगा। 'धर्म क्या है?' वह धारण किए बिना समझ में नहीं आ सकता। वर्ना, जितने बाड़े में बंद हुए वे सभी भेड़ें और जितने लोग बाड़े से बाहर निकल गए, वे सभी शेर। भगवान कहते हैं कि हमारा वीतराग मत है और आप पक्षवालों का मत वीतराग रहित है। चौबीसों तीर्थंकरों का वीतराग मत था। पक्ष में पड़े हुए हों, वहाँ वीतराग मत नहीं होता। भगवान के जाने के बाद पक्षपात हो गया, भाग हो गए। मोक्ष का मार्ग तो सच्चा नहीं रहा, पर व्यवहारिक धर्म भी सच्चा नहीं रहा। भगवान की सच्ची आज्ञा पालना और उसमें रहना, वही धर्म कहलाता है। उनकी आज्ञा कम पाली जाए तो कम और दो पाली जा सकें तो दो, परन्तु घोटाला नहीं होनी चाहिए। यह तो सामायिक करता है और घड़ी देखता है! भगवान ने कहा है कि हो सके तो सामायिक करना, बहुत नहीं हो सके तो कम करना, परन्तु सतर्कता से करना, ठीक से करना। भगवान की आज्ञा का लाख बार पालन करें तो भी पुरानी नहीं होती। परन्तु भगवान की आज्ञा समझ में नहीं आती, इसलिए सिर्फ घोटाला करते हैं। उसमें उनका दोष नहीं है। वीतराग भगवान का धर्मध्यान कब होगा कि जब किसी भी पक्ष

में नहीं पड़े तब। किसी भी पक्ष में पड़े तो धर्मध्यान नष्ट हो जाएगा। पक्ष में रहना अर्थात् 'व्यू पोइन्ट' में पड़े रहना। 'सेन्टर' मैं बैठे तो मतभेद नहीं रहेगा, तब मोक्ष होगा। किसी भी 'डिग्री' पर बैठे वहाँ हमारा-तुम्हारा रहता है, उससे मोक्ष नहीं होगा।

धर्म में भी व्यापारी वृत्ति...

संसार में जो धर्म चल रहे हैं वे व्यापार कहलाते हैं, उनमें सूक्ष्म भी इच्छा छुपी होती है। सूक्ष्म में भी इच्छा है, वहाँ वस्तु प्राप्त नहीं होती। वही डूबा हुआ हो तो हमें किस तरह तारेगा? ज्ञान के बिना इच्छा जाती नहीं। इच्छा स्वयं ही अग्नि है। इच्छा हुई अर्थात् वह प्रज्वलित होती है और फिर बुझानी पड़ती है। लोग आज उसे 'पेट्रोल' से बुझाते हैं! आप यदि घर से अच्छी तरह पेट भरकर खा-पीकर निकले हों तो किसीकी दुकान की तरफ देखोगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : वैसे ही 'ज्ञानी पुरुष' भीतर तृप्ति करवा देते हैं, इसलिए फिर बाहर इच्छा नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : सभी लोग लूटबाज़ी में पड़े हैं, तो उनका क्या होगा?

दादाश्री : जो लुट रहे हैं, वे सब कमाई कर रहे हैं! 'रिलेटिव' में लुटे, तब 'रियल' में कमाई करेगा, ऐसा माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : महामोहनीय कर्म यानी क्या?

दादाश्री : धर्म के नाम पर दुरुपयोग करना, वह महामोहनीय कर्म कहलाता है, वह भयंकर अवतार बाँध देता है। धर्म में व्यापार करे, पैसे संबंधी का व्यापार बहुत खराब नहीं कहलाता, परन्तु दुराचारी हो वह भयंकर कर्म बाँधता है। जब संसार में दुरुपयोग करे वह मोहनीय कर्म और धर्म में दुरुपयोग करे वह महामोहनीय कर्म।

...तो रिर्टन टिकिट तिर्यंच की!

लौकिक धर्म में 'गुरुजी हमारा यह कीजिए' इतना करो तो गुरुजी

खुश हो जाते हैं। पर वह चलता है। क्योंकि अहंकार के बिना तो जीया ही कैसे जाए? परन्तु लक्ष्मी या विषय धर्म में नहीं घुसने चाहिए। मैं लक्ष्मी लूँ, लोग भी भिखारी और मैं भी भिखारी, तो फिर 'ज्ञानी पुरुष' में और लोगों में फर्क क्या रहा? इसलिए 'ज्ञानी पुरुष' तो किसी भी चीज़ के भिखारी नहीं होते। उन्हें किसी चीज़ की इच्छा नहीं होती। यहाँ तो मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, विषयों की भीख, कीर्ति की भीख, शिष्यों की भीख-किसी भी प्रकार की भीख नहीं होती। जहाँ किसी भी प्रकार की भीख है वहाँ भगवान और भक्त अलग हैं। और किसी भी प्रकार की भीख नहीं है, वहाँ भगवान और भक्त एक हो गए, अभेद हो गए! सभी लोग धर्म में झगड़े नहीं करते। वह तो जिसे रिटर्न टिकिट मिली हुई हो, उतने ही करते हैं। संसार में झगड़े करे उसमें हर्ज नहीं है, पर धर्म में झगड़े करना तो रिटर्न टिकिटवालों का काम है।

प्रश्नकर्ता : 'रिटर्न टिकिट' मतलब क्या?

दादाश्री : ये जानवर में से यहाँ पर आया और वापिस वहाँ से रिटर्न टिकिट लेकर आया है, वह वापिस वहीं जानेवाला है। धर्म में झगड़े नहीं होने चाहिए कि हमारा मुस्लिम धर्म, हमारा हिन्दूधर्म। धर्म पर हाथ नहीं डालना चाहिए किसीको। जो रिटर्न टिकिट लेकर आया हो, वही धर्म में हाथ डालता है। किसी धर्म की तरफ नफरत रखनी, वे सभी धर्म के झगड़े कहलाते हैं। सच्ची, सीधी लाइनवाले ऐसा नहीं करते। वैसे मानवतावाले लोग बहुत कम होते हैं।

'आत्मा' की पहचान 'ज्ञानी' ही करवाएँ

वीतरागों की बात इतनी झूठी निकलती है क्या? क्या सास-बहू जैसी लगती है? नहाने की आदत पड़ी है इसलिए कीचड़ चुपड़ता है। अब यह बुरी आदत जाती नहीं, तब तक कीचड़ चुपड़े बिना रहेगा नहीं। इससे तो भगवान को पहचानो, आत्मा को जानो। आत्मा जाना उसने सबकुछ जान लिया और आत्मा नहीं जाना तो जंगल में जाकर चिल्लाकर रो, ताकि अच्छी तरह जी भरकर रोने को मिले! यहाँ तो जी भरकर रोने को भी नहीं मिलता।

वीतराग के मार्ग में तो एक शब्द में निरा सुख ही बरतता है। इन 'दादा' ने किसे त्याग करने के लिए कहा है? न तो पच्चखाण दिए, न ही त्याग का उपदेश दिया है। देखो, यों ही कैसा सुख बरतता है सभी को! और वापिस कभी कम नहीं पड़े वैसा सुख!! अस्त ही नहीं हो वैसा उजाला दिया है, अनंत उजाला!!!

लौकिक धर्म, द्वंद्व में ही रखें

'रिलेटिव' धर्म द्वंद्व उत्पन्न करनेवाले हैं और 'यह' तो 'रियल' मार्ग है। यह द्वंद्व से परे करनेवाला है। यदि धर्म की सच्ची दुकान होती तो भी ठीक था, पर ये तो भटका देंगे, वहाँ क्या फायदा? वहाँ कहेगा कि, 'आत्मा को पहचानो।' तब हम कहें कि, 'वह तो मेरे पिताजी भी कहते थे, इसलिए तो मैं आपके पास आया हूँ, ताकि आप पहचान करवा दें।' पर यह तो जहाँ और तहाँ सर्दी में ठंडे पानी से नहलाते हैं! जहाँ आत्मज्ञान का एक अक्षर भी नहीं देखा और बन बैठे हैं ज्ञानी। क्रोध-मान-माया-लोभ जहाँ साबुत हों, उसे ज्ञानी कहा ही कैसे जाए? ज्ञानी किन्हें कहते हैं कि जिनमें संसारी प्रवृत्ति नहीं हो, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हों। वीतराग हो गए हों वे 'ज्ञानी' कहलाते हैं। यह तो चमड़े की आँख के कारण भेदबुद्धि उत्पन्न हुई है! दो भाई हों, फिर भी तू-मैं के भेद डालती है। पति-पत्नी हों, फिर भी भेदबुद्धि, झगड़ते हैं तब तू और मैं! यह 'रिलेटिव' ऐसा है, वह ठेठ तक कुचल-कुचलकर ज़ीरो तक नहीं ले आए, तब तक अंत नहीं आएगा। 'रिलेटिव' धर्म भेद डलवाते हैं और 'रियल' धर्म ठेठ तक जुदाई नहीं लाता, भेद नहीं डालता, अभेद रखता है!

सभी 'रिलेटिव' धर्म लौकिक धर्म कहलाते हैं, वे मोक्ष में तो नहीं ले जा सकते। इसलिए कुछ करने को कहें कि, 'ऐसा करो, वैसा करो' ऐसा करवाते हैं। उसमें आप कर्त्ता नहीं हैं। फिर भी आपको कर्त्ताभाव में ही रखते हैं और हम आपको कुछ भी करने को नहीं कहते, इसलिए यह अलौकिक कहलाता है। यहाँ पर जो आ गया, तब फिर उसका मोक्ष होना ही चाहिए। इसलिए हम उसे पहले ही पूछ लेते हैं कि 'तुझे मोक्ष में जाना है? तेरा रोग निकालना है?' और फिर उसकी इच्छा हो तो 'ओपरेशन' कर देते हैं। और

यदि उसकी मोक्ष की इच्छा नहीं हो और संसार के सुख चाहिए हों, तो वह एडजस्टमेन्ट भी करवा देते हैं। घरवालों के साथ झगड़ा हो तो वह भी निकाल देते हैं और घर में 'एडजस्टमेन्ट' करवा देते हैं। एडजस्टमेन्ट ही मुख्य धर्म है। कोई आपके पास से पैसा ले गया हो और आपका उसके साथ का एडजस्टमेन्ट टूटे, तो उसे मुख्य धर्म चूक गए, ऐसा कहा जाएगा।

तुरन्त ही फल दे वह धर्म

धर्म तो किसे कहते हैं? जो तुरन्त फल दे। तुरन्त फल देनेवाला हो तो ही धर्म है, नहीं तो अधर्म। यह क्रोध, तुरन्त ही फल देता है न? जैसे अधर्म तुरन्त फल देता है, वैसे ही धर्म का फल भी तुरन्त ही मिलना चाहिए। जब तक स्वरूप का अज्ञान नहीं गया तब तक यदि सच्चा धर्म करे तो भी उसके घर में क्लेश नहीं होगा। जहाँ कषाय है, वहाँ धर्म ही नहीं है। कषाय है वहाँ लोग धर्म ढूंढते हैं, वही आश्चर्य है! लोगों में परीक्षा करने का साहस ही नहीं है। सम्यक् दर्शन प्राप्त होने के बाद उसे संसार अच्छा ही नहीं लगता। इसलिए ही सम्यक् दर्शन क्या कहता है कि, 'मुझे प्राप्त करने के बाद तुझे मोक्ष में जाना ही पड़ेगा! इसलिए मुझे प्राप्त करने से पहले विचार करना।' इसलिए तो कवि ने गाया है न कि,

'जेनी रे संतो, कोटि जन्मोनी पुण्यै जागे,
तेने रे संतो, दादानां दर्शन थाये रे,
घटमां एने खटकारो खट खट वागे रे।' - नवनीत

खटकारो यानी क्या कि एकबार 'दादा' से मिला तो यहाँ पर बार-बार दर्शन करने का मन होता रहता है। इसलिए हम कहते हैं कि, 'यदि तुझे वापिस जाना हो तो मुझसे मिलना मत और मिलना हो तो फिर तुझे मोक्ष में जाना पड़ेगा! यदि तुझे चार गतियों में जाना हो तो वह भी दूँ। यहाँ तो मोक्ष का सिक्का लग जाता है, इसलिए मोक्ष में जाना ही पड़ता है।' हम तो आपसे कहते हैं कि यहाँ पर फँसना नहीं और फँसने के बाद निकल नहीं सकोगे।

❖❖❖❖❖

(२३)
मोक्ष प्राप्ति, ध्येय

मोक्ष, वह क्या है?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष या मुक्ति किसे कहते हैं?

दादाश्री : मोक्ष और मुक्ति नज़दीक के ही शब्द हैं। एक ही माँ के दो बच्चे हैं।

यदि सर्व कर्मों से मुक्ति चाहिए, पूरा मोक्ष चाहिए तो पहले अज्ञान से मुक्ति होनी चाहिए। यानी आप अज्ञान से ही बंधे हुए हो। यदि अज्ञान जाए तो सबकुछ सरल हो जाएगा, शांति हो जाएगी, दिनोंदिन आनंद बढ़ता जाएगा और कर्म से मुक्ति होती जाएगी।

मोक्ष अर्थात् हमें मुक्तता का भान होना चाहिए। 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा भान जीते जी ही रहना चाहिए। मर जाने के बाद मोक्ष काम का नहीं है, वह तो धोखा देने की बात है। मोक्ष तो नक़द होना चाहिए, उधार नहीं चलेगा। सब्ज़ी लेने किसीको भेजें तो भी अंदर से कमिशन निकाल ले, वैसा यह ज़माना है, उसमें तो भला मोक्ष उधार लिया जाता होगा? वैसा उधार मोक्ष कोई दे तो हमें कह देना चाहिए कि 'अगले जन्म में मोक्ष', वैसा उधार मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। इस समय में उधार धंधा करना ही मत। आज तो धर्म में भी मिलावट हो गई है। शुद्ध घी में वेजिटेबल घी की मिलावट का ज़माना गया, अब तो वेजिटेबल घी के अंदर भी मिलावट होती है! कोई कहे कि, 'आपके क्रोध-मान-माया-लोभ निकाल दो।' तब हम कहें, 'साहब, वह तो मैं भी जानता हूँ, पर ऐसा कुछ कहिए कि जिससे मेरे क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाएँ।' ऐसे ही चलाते रहें तो उसका क्या

अर्थ है? वचनबलवाले पुरुष के पास जाएँ, चारित्रबलवाले पुरुष के पास जाएँ तो क्रोध-मान-माया-लोभ को चले जाना पड़ेगा। कमज़ोर व्यक्ति की कमज़ोरियाँ उससे अपने आप से निकल सकती हों, तो फिर मज़बूत व्यक्ति का क्या काम है?

लोग धर्म का सुनने जाते हैं उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। परन्तु श्रुतज्ञान तो वह कहलाता है कि उसे सुनने के बाद अपना रोग अपने आप ही निकल जाए।

मोक्षप्राप्ति का मार्ग

प्रश्नकर्ता : मोक्ष किस तरह मिलता है?

दादाश्री : उसका तरीका नहीं होता। आर्तध्यान और रौद्रध्यान चले जाएँ तो मोक्ष मिलता है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी मोक्ष प्राप्त करने का रास्ता क्या होता होगा? किसके पास से मोक्ष मिल सकेगा?

दादाश्री : मोक्ष तो सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' के पास से ही मिलता है। जो मुक्त हो गए हों वे ही आपको मुक्त कर सकते हैं। खुद बंधा हुआ दूसरे को किस तरह छुड़वा सकेगा? यानी हमें जिस दुकान पर जाना हो उस दुकान पर जाने की छूट है, परन्तु वहाँ पर पूछना कि, 'साहब, मुझे मोक्ष देंगे?' तब वह कहे कि, 'नहीं, हमारी मोक्ष देने की तैयारी नहीं है।' तो हम दूसरी दुकान, तीसरी दुकान पर जाएँ। किसी जगह पर हमें ज़रूरत का माल मिल जाएगा, पर एक ही दुकान पर बैठे रहें तो? तो फिर टकराकर मर जाएँगे। अनंत जन्मों से ऐसे ही भटकते रहने का कारण ही यह है कि हम एक ही दुकान पर बैठे रहे हैं, खोजबीन भी नहीं की। 'यहाँ बैठने से हमें मुक्ति का अनुभव होता है या नहीं? अपने क्रोध-मान-माया-लोभ कम हुए?' वह भी नहीं देखा।

विवाह करना हो तो पता लगाता है कि कौन-सा कुल है, ननिहाल कहाँ है? सब 'रियलाइज़' करता है। पर इसमें 'रियलाइज़' नहीं करता।

कितना बड़ा 'ब्लंडर' (मूलभूत भूल) कहलाएगा यह?

प्रश्नकर्ता : वीतराग दशा प्राप्त करने के लिए सबसे प्रथम सीढ़ी कौन-सी है?

दादाश्री : सच्चा तो मोक्ष में ले जाए वह है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष तो फिर मिलेगा न?

दादाश्री : अभी देह का मोक्ष नहीं है, पर आत्मा का मोक्ष तो है न? इस काल के कारण इस क्षेत्र से देह का मोक्ष रुका हुआ है, पर आत्मा का मोक्ष तो हो सकता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो सकता है।

दादाश्री : तब तो इतना हो जाए तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करने के लिए क्या करें? आप उपाय बताइए।

दादाश्री : उपाय मैं आपको बताता हूँ, पर वह आपसे होगा नहीं। घर जाकर भूल जाओगे। इस काल में लोगों की उतनी स्थिरता नहीं होती। इसके बदले तो हमारे पास आना, एक ही घंटे में आपको नक़द मोक्ष दे दूँगा। फिर आपको कुछ भी नहीं करना होगा। सिर्फ हमारी आज्ञा में रहना होगा।

मोक्ष अर्थात् सनातन सुख...

प्रश्नकर्ता : मनुष्य ने मोक्ष के बारे में यों तो कुछ अनुभव नहीं किया होता है, फिर भी मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है।

दादाश्री : इस जगत् में जो सुख-दु:ख का अनुभव होता है, वह तो संपूर्ण दु:ख ही है। जो सुख लगता है, वह तो कल्पना से ही है। जो वस्तु आपको पसंद हो, वह वस्तु किसी और को दे दे, तब आपको दु:खदायी लगता है। ऐसा होता है या नहीं होता? सुख तो किसे कहते हैं कि जो सभी को सुख ही लगे। हर एक का अभिप्राय सच्चे सुख के लिए

एक ही होता है।

अब, जीव-मात्र सुख को ढूंढता है, दु:ख से दूर भागता है। दु:ख पसंद नहीं है किसीको। अब फिर ये सुख तो टेम्परेरी हैं, वे उसे पसंद नहीं है सुख आने के बाद दु:ख आता है। लोगों को कौन-सा सुख पसंद है? सनातन सुख, कि जिसके आने के बाद कभी भी दु:ख नहीं आए। सनातन सुख किसे कहेंगे? मोक्ष को, मुक्ति को! मोक्ष हो तभी सनातन सुख उत्पन्न होता है। बंधन से दु:ख है।

संसारी दु:ख का अभाव, वह मुक्ति का प्रथम अनुभव कहलाता है। वह हम आपको 'ज्ञान' देते हैं, तब वैसा आपको दूसरे ही दिन से हो जाता है। फिर यह शरीर का बोझ, कर्मों का बोझ वे सब टूट जाते हैं, वह दूसरा अनुभव। फिर आनंद ही इतना अधिक होता है कि जिसका वर्णन ही नहीं हो सकता।

सिद्धगति, स्थिति कैसी?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष मिलने के बाद हमारी स्थिति क्या रहती होगी?

दादाश्री : परमात्म स्वरूप।

प्रश्नकर्ता : फिर उसे कुछ कार्य करना रहता है क्या?

दादाश्री : कोई कार्य होता ही नहीं वहाँ पर। अभी भी आपका आत्मा कुछ भी कार्य नहीं कर रहा है। यह जो कार्य कर रहा है, वह अज्ञान भाव है, मिकेनिकल भाव है। आत्मा क्रियाकारी है ही नहीं, स्वयं ज्ञायक स्वभाव का है। वहाँ सिद्धगति में सिर्फ ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद होता है। वहाँ सिद्धगति में इतना अधिक सुख है कि वहाँ के निरंतर सुख में से एक मिनिट का सुख यदि यहाँ पृथ्वी पर पड़े तो इस दुनिया में एक वर्ष तक तो आनंद-आनंद की सीमा न रहे!

मोक्ष का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्त करने के बाद फिर कभी भी जन्म नहीं लेते?

दादाश्री : इस बखेड़े में कौन आए? यह तो बहुत त्रासदायक वस्तु है। इस संसार में तो कितनी अधिक परवशता है? यह तो शराब पीकर खुद अपने आप को सुखी मानना, उसके जैसा है। यह संसार तो भूत चिपट गया हो, वैसा है। ये मन-वचन-काया के तीन भूत चिपटे हुए हैं! वह तो दाढ़ दु:खे तब पता चलेगा। राजा को भी दाढ़ दु:खे तब राज्य प्यारा लगता है या रानियाँ प्यारी लगती हैं?

प्रश्नकर्ता : कोई प्यारा नहीं लगता।

दादाश्री : यह तो भयंकर आफत है! और मोक्ष तो स्वाभाविक सुख है।

प्रश्नकर्ता : संसार के व्यवहार में रहने के बावजूद मनुष्य को मोक्ष का अनुभव हो सकता है?

दादाश्री : अँधे मनुष्य को एक खंभे से कसकर खूब लपेटकर बाँध दिया हो, फिर उसे छुए बिना पीछे से धीरे से एक डोरी ब्लेड से काट लें तो उसे पता चलेगा या नहीं चलेगा?

प्रश्नकर्ता : चलेगा।

दादाश्री : इस भाग में से बंधन टूट गया है ऐसा उसे पता चल जाता है। उसी प्रकार मोक्ष का अनुभव होता है!

मोक्ष अर्थात् मुक्तभाव, बंधन नहीं लगता। पुलिसवाला पकड़े तब भी बंधन नहीं लगता।

स्वर्ग, फिर भी बंधन

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं न, मोक्ष अर्थात् स्वर्ग मिलता है, वैकुंठ मिलता है या भगवान में मिल जाना, वह क्या है?

दादाश्री : स्वर्ग-वर्ग कुछ भी नहीं होता वहाँ तो। स्वर्ग यानी कि भौतिक सुख भोगने का स्थान और नर्क में भौतिक दु:ख भोगने पड़ते हैं। और इस मध्यलोक में सुख और दु:ख दोनों का मिक्सचर होता है। स्वर्ग

में भी बंधन है, वहाँ भी पसंद नहीं हो तो भी रहना पड़ता है। वहाँ पर पत्नी के साथ में अच्छा नहीं लगता हो फिर भी जीना पड़ता है। क्योंकि उनका आयुष्य कम नहीं हो सकता।

लाखों जन्मों से इसमें से छूटने की कामना हर एक के बुद्धि के आशय में होती ही है पर छूटा नहीं जा सकता। धक्के बहुत खाता है, छटपटाता है, फिर भी नहीं मिलता। पत्नी और बच्चों के बिना रहकर देखता है, वहाँ भी कुछ नहीं होता, इसलिए वापिस दूसरे जन्म में संसारी बनता है। सभी प्रकार के विकल्प करके देख लिए। निर्विकल्प प्राप्त करने के लिए जो कुछ करते हैं, वे सभी विकल्प के विकल्प हैं। ये जंजाल छूट सके वैसा नहीं है। गृहस्थी का जंजाल छूटे तो त्यागी का जंजाल चिपटता है, वहाँ भी संसार तो है ही न!

विनाशी चीज़ नहीं चाहिए

मुक्ति के लिए क्या करना चाहिए?

'ज्ञानी' के अलावा हमें दूसरा कुछ भी नहीं चाहिए, वह भाव रखना। 'इस जगत् की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए।' ऐसा पाँच बार सुबह में बोलकर उठे और उसे सिन्सियर रहे उसे कोई कर्म नहीं बंधता। परन्तु 'मुझे' अर्थात् कौन? वह निश्चित करके बोलना चाहिए। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और जो चाहिए वह इस देह को चाहिए, 'चंदूलाल' को चाहिए। और वह तो अधिक होता ही नहीं न? 'व्यवस्थित' में जो हो वह ठीक और नहीं हो तो वह नहीं, परन्तु 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए', वह भाव पक्का होना चाहिए। और उसके प्रति सिन्सियर रहें तो कुछ भी दख़ल हो वैसा नहीं है। 'व्यवस्थित' में जो मिलनेवाला हो उतना ही मिलनेवाला है, उसमें कुछ बदलाव नहीं होता। बल्कि लाभ यह है कि चिंता और बेचैनी कम हो जाती है। ये दोनों द्रव्य अलग हैं। उनका अलग अनुभव ही करना है। दूसरा कुछ भी करना नहीं है। भीतर बुद्धि दख़ल करे या विचार में एकाकार होकर उलझे तो भी वह 'हम' नहीं करते हैं। 'आप' 'आपका' भाग अलग रखो। 'आप' और 'चंदूलाल' पड़ोसी की तरह रहो तो कुछ भी असर नहीं

करेगा! यानी 'आप' यदि 'अपने आप' के प्रति सिन्सियर रहो तो यह ऐसा विज्ञान है कि आपको निर्लेप ही रखे!

आप कारखाने में नौकरी करते हो, वहाँ सिन्सियर रहते हो या नहीं रहते?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसमें सिन्सियर रहना सिरदर्दी है। और इसमें इतनी अधिक सिरदर्दी नहीं है। और किसीको ऐसा रहता हो कि किसी रुचि में उसे स्वाद नहीं जाता हो, उसे सिन्सियारीटी नहीं रहती हो तो उस अनुसार मुझे कह देना, तो हम उसका रास्ता निकाल देंगे। परन्तु अंदर गड़बड़ करे और मन में उलझता रहे कि 'कर्म बंधेगा या क्या', तो उस तरह से हल नहीं आएगा। कर्म बंधन की थियरी अलग ही है। वह हमारे पास से समझ लेना है।

जगत् की सत्ता कहाँ पर झुके?

इस जगत् में जिसकी सर्वस्व प्रकार की भीख चली गई हो, उसे इस जगत् में तमाम सूत्र हाथ में दे दिए जाते हैं।

भीख कितने प्रकार की होती होगी? मान की भीख, लक्ष्मी की भीख, विषयों की भीख, शिष्यों की भीख, मंदिर बनवाने की भीख, अपमान की भीख। सभी प्रकार की भीख, भीख और भीख! वहाँ अपना दारिद्र्य कैसे जाए?

जिसकी तमाम प्रकार की भीख छूट जाए, उसके हाथ में इस जगत् की सत्ता आ जाती है। अभी मेरे हाथ में आ चुकी है, क्योंकि मेरी सर्वस्व भीख छूट गई है। जब तक निर्वासनिक पुरुष नहीं मिलेंगे, तब तक सच्चा धर्म प्राप्त नहीं होगा। निर्वासनिक पुरुष तो जगत् में कभी ही मिलते हैं। तब अपना मोक्ष का काम हो जाता है। वे नहीं मिलें तो कब तक चला सकते हैं? मान के भूखे हों तो चला सकते हैं, परन्तु लक्ष्मी की भीखवाले, कीर्ति की, विषय की भीखवाले को नहीं चला सकते।

भूल रहित बन

आत्मा में आत्मबुद्धि - वह मोक्ष और देह में आत्मबुद्धि - वह संसार।

यह दृष्टि दृश्य पर पड़ती रहती है, पर कभी भी दृष्टा पर नहीं पड़ती।

प्रश्नकर्ता : परन्तु चर्मचक्षु से जितना दिखे उतना ही दिखेगा न?

दादाश्री : चर्मचक्षु से दृष्टि दृष्टा में पड़ती ही नहीं। वह तो दिव्यचक्षु उत्पन्न हों तब दृष्टि दृष्टा में पड़ती है।

आत्मा जानने के लिए तो सिर्फ बात को समझना है। करना कुछ भी नहीं है। एक व्यक्ति ने भगवान से पूछा कि, 'मेरा मोक्ष कब होगा?' तब भगवान ने कहा कि, 'आपकी समझ भूल रहित होगी तब आपका मोक्ष होगा।' बोलो अब भगवान ने इसमें क्या गलत कहा है?

प्रश्नकर्ता : ठीक कहा है।

दादाश्री : फिर वापिस उसने भगवान से पूछा कि, 'जप-तप करते हैं, उसका क्या?' तब भगवान ने कहा कि, 'वह तो तुझे जिस दिन अजीर्ण हो गया हो, उस दिन उपवास करना। जप-तप की हमारी शर्त नहीं है। तेरा ज्ञान और समझ किसी भी तरह से भूल रहित कर, उतना ही हमें चाहिए।' अभी आपकी कितनी सारी भूलें हैं? 'मैं चंदूलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इस बच्चे का बाप हूँ।' कितनी सारी भूलें.... भूलों की परंपरा ही है! मूल में ही भूल है, वहाँ क्या हो? एक संख्या विनाशी है और एक संख्या अविनाशी है। अब इन दोनों को गुणा करने जाएँ, तब तो विनाशी रकम नष्ट हो जाएगी। यानी गुणाकार कभी भी होगा नहीं और जवाब आएगा नहीं। शुक्रवार बदलेगा नहीं और शनिवार होगा नहीं। 'एवरी डे फ्रायडे' और 'फ्रायडे' ही रहता है! लोग भूलभूलैया में चले गए हैं! भूल से तो संसार भी अच्छा नहीं होता तो मोक्ष तो किस तरह होगा? वास्तव में तो तू स्वयं ही मोक्षस्वरूप है। तू ही परमात्मा है, मात्र भूल रहित ज्ञान और भूल रहित समझ का ही भान होना चाहिए। आप शुद्धात्मा तो हो ही, परन्तु

उसका भान होना चाहिए।

मात्र मोक्ष का ही *नियाणां*

प्रश्नकर्ता : आप वह समझाइए। वह भान करने की इच्छा जागृत हुई है, इसलिए यहाँ पर आएँ हैं।

दादाश्री : वह ज्ञान प्राप्त करने की जन्मोंजन्म से इच्छा होती है, पर उसके लिए सच्चा *नियाणां* (अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक वस्तु की कामना करना) नहीं किया। यदि सच्चा *नियाणां* किया होगा तो सारा ही पुण्य उसमें ही खर्च हो जाएगा और वह वस्तु मिलेगी ही। *नियाणां* का स्वभाव क्या है कि आपका जितना पुण्य हो, वह *नियाणां* के लिए खर्च हो जाता है। तो आपका कितना पुण्य घर में खर्च हुआ, देह में खर्च हुआ, मोटर-बंगला, पत्नी-बच्चों के सुख में खर्च हो गया है। हम मात्र मोक्ष का ही *नियाणां* लेकर आए हैं, इसलिए सब सीधा चल रहा है। हमें कोई अड़चन नहीं आती। *नियाणां* का अर्थ क्या कि एक ही ध्येय हो कि ऐसा ही चाहिए, दूसरा कुछ नहीं! *नियाणां* तो मोक्ष में जाने के लिए ही करने जैसा है। ध्येय तो शुद्धात्मा का और *नियाणां* सिर्फ मोक्ष का। बस और कुछ भी नहीं होना चाहिए। अब तो बीड़ा उठाना है, दृढ़ निश्चय रखना है कि मोक्ष में ही जाना है। वह एक ही *नियाणां* करना, ताकि अधिक जन्म नहीं हों। एक-दो जन्मों में छूटा जा सके। यह संसार तो जंजाल है सारा!

मोक्ष, स्थान या स्थिति?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे यह जानना था कि मोक्ष, जाने की वस्तु है, प्राप्त करने की वस्तु है या मोक्ष कोई स्थिति है?

दादाश्री : मोक्ष तो स्वभाव ही है खुद का। आपका स्वभाव ही मोक्ष है, परन्तु स्वभाव प्राप्त करने के लिए कुछ उपाय करना पड़ेगा न? आप हो मोक्ष स्वरूप, परन्तु अभी आप मोक्षसुख नहीं भोग सकते हो, क्योंकि उसका आपको भान नहीं है। मोक्ष के लिए आपको कहीं किसी

जगह पर नहीं जाना है। सर्वदु:खों से मुक्ति, वह पहला मोक्ष है और फिर संसार से मुक्ति, वह दूसरा मोक्ष! पहला मोक्ष हो जाए, तब दूसरा मोक्ष सामने आएगा। पहली मुक्ति 'कॉज़ेज़' के रूप में है और दूसरी 'इफेक्ट' के रूप में है। कॉज़ेज़ से मुक्ति हो जाने के बाद फिर बच्चों की शादी करवा सकते हैं, सबकुछ हो सकता है, उसमें भी मुक्तभाव होता है और इफेक्ट-मोक्ष अभी हो सके वैसा नहीं है। कॉज़ेज़ मोक्ष में मैं खुद रहता हूँ और सभी कार्य होते हैं।

जिस देह से मुक्तता का भान हो जाए, उसके बाद एकाध देह धारण करना बाकी रहता है।

कठिन, मोक्षमार्ग या संसारमार्ग?

मोक्षमार्ग कठिन नहीं होता, संसारमार्ग कठिन होता है। एक बड़ा टेन्क भरकर पानी उबालना हो तो उसमें कितनी-कितनी वस्तुओं की ज़रूरत पड़ेगी? उसे उबालने में कितनी मेहनत लगेगी? और उसे वापिस ठंडा करना हो तो क्या करना चाहिए? अब वहाँ विकल्प करे कि, 'किस तरह ठंडा होगा' तो? हम ज्ञानी हों तब उससे कहें कि, 'आँच बुझाकर आराम से सो जा।' वह सोचे कि पानी को गरम करने में इतना समय लगा, वह किस तरह जल्दी से ठंडा होगा? परन्तु पानी का स्वभाव ही ठंडा है, इसलिए अपने आप ठंडा हो जाएगा। पानी को गरम करना अर्थात् उसे संसार स्वभाव में लाना। 'स्वयं' खुद के स्वभाव में आना, वह मोक्ष कहलाता है और विभाव में जाना वह संसार कहलाता है। यह भेदज्ञान करवाने के लिए ज्ञानी मिलने चाहिए, तभी काम होगा। नहीं तो करोड़ों जन्मों तक भी ठिकाना पड़े ऐसा नहीं है।

सच्चा मुमुक्षु कैसा होता है?

शास्त्रकारों ने साफ-साफ कहा है कि मुमुक्षु महात्मा तुरन्त 'ज्ञानी पुरुष' को पहचान ले, तभी वह सच्चा मुमुक्षु है। जिसे केवल मोक्ष की ही इच्छा है, उसे तो तुरन्त मोक्षदाता 'ज्ञानी पुरुष' की पहचान हो जाती है। परन्तु जिसे और कुछ इच्छाएँ हैं, मान की, कीर्ति की, शिष्यों की, उससे

'ज्ञानी पुरुष' पहचाने नहीं जाते। क्योंकि बीच में भीतर आवरण होते हैं उसे! 'ज्ञानी पुरुष' तो बहुत सरल होते हैं। आसानी से पहचाने जा सकते हैं। यदि देखो कि 'कपड़े इस तरह क्यों पहनते होंगे?' वहीं से फिर उल्टा चला!

आत्मा अबंध, किस अपेक्षा से?

प्रश्नकर्ता : आत्मा को अबंध (बंधन रहित) कहते हैं, तो मोक्ष किसका?

दादाश्री : आत्मा के बारे में तो 'ज्ञानियों' की भाषा समझी जाए तो हल आए। लोगों की भाषा में अबंध अलग है और 'ज्ञानियों' की भाषा में वह अलग है। यदि सर्वज्ञ की भाषा में अबंध समझ जाए तो वह पद प्राप्त हो जाए ऐसा है। सर्वज्ञ की भाषा में तो आत्मा अबंध ही है, निरंतर मोक्ष स्वरूप ही है। यह कभी भी बंधा ही नहीं। यह सर्वज्ञ की भाषा है। 'जैसा है वैसा' 'फेक्ट' है। यदि ज़रा-सी भी शंका रहे कि खुद अभी तक बंधा हुआ है, तब उसे तुरन्त ही चिपटेगा। खुद निर्बंध ही है, वह बात नि:शंक है।

मोक्ष किसका?

प्रश्नकर्ता : मृत्यु, मुक्ति और मोक्ष, इन तीनों में किस प्रकार भेद किया जाए?

दादाश्री : 'आप' यदि वास्तव में चंदूभाई हो तो मृत्यु प्राप्त करनेवाले हो और 'आप' यदि शिव हो तो मुक्ति हो चुकी है और मुक्ति हुई तो उसका फल मोक्ष आएगा। यहीं पर मुक्ति हो जानी चाहिए। मेरी मुक्ति हो चुकी है।

❖❖❖❖❖

(२४)
मोक्षमार्ग की प्रतीति

मोक्षप्राप्ति-मार्गदर्शन

प्रश्नकर्ता : मुमुक्षु-आत्मा को मोक्ष प्राप्त करने के लिए कौन-से धर्म की ज़रूरत पड़ती है?

दादाश्री : आत्मधर्म की ज़रूरत पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : कौन-से वेष में मोक्ष मिलता है?

दादाश्री : वेष और मोक्ष का कोई लेना-देना नहीं है। नंगा घूमता हो या कपड़े पहनकर घूमता हो, उसमें कोई हर्ज नहीं है। किसी भी वेष में मोक्ष मिल सकता है।

प्रश्नकर्ता : कौन-से स्थानक में मोक्ष मिलता है?

दादाश्री : वीतराग धर्म से मोक्ष मिलता है। वीतराग स्थानक में मोक्ष मिलता है।

प्रश्नकर्ता : कौन-सी दशा में मोक्ष मिलता है?

दादाश्री : वीतराग दशा में मोक्ष मिलता है।

प्रश्नकर्ता : कौन-से संप्रदाय में, संघ में, फिरके में सच्चा धर्म है? संप्रदाय है, वह क्या है? उसकी ज़रूरत है?

दादाश्री : सभी संप्रदाय अंश धर्म है, 'रिलेटिव' धर्म है। जहाँ पक्ष है वहाँ मोक्ष नहीं है, वहाँ 'रियल' धर्म नहीं है। सम्प्रदायों में सच्चा धर्म नहीं है, क्योंकि वे एकांतिक हैं।

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु की पहचान क्या है?

दादाश्री : सद्गुरु वही हैं कि जिन्हें रात-दिन आत्मा का उपयोग हो, शास्त्र में पढ़ी नहीं हो, कहीं भी सुनी नहीं हो, फिर भी अनुभव में आए, वैसी जिनकी अपूर्व वाणी हो!

प्रश्नकर्ता : ये ही सद्गुरु हैं, वह किस तरह कह सकेंगे?

दादाश्री : यहाँ पर ठंडक लगे तो समझना कि ये सद्गुरु हैं।

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु के लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : कषाय - क्रोध-मान-माया-लोभ रहित परिणाम!

प्रश्नकर्ता : इस काल में सद्गुरु कहाँ-कहाँ बिराजे हुए हैं?

दादाश्री : ये आपके समक्ष बिराजे हुए हैं।

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु को प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : परम विनय।

प्रश्नकर्ता : सम्यकत्व, बीजज्ञान अथवा बोधबीज, वे धर्म का मूल माने जाते हैं, तो उनकी प्राप्ति किसके माध्यम से होगी?

दादाश्री : कषाय रहित सद्गुरु से!

प्रश्नकर्ता : धर्म की उत्पत्ति यानी कि धर्म किससे होता है?

दादाश्री : कषाय रहित सद्गुरु से!

प्रश्नकर्ता : कौन-सी क्रिया से अथवा क्या करने से धर्म होता है?

दादाश्री : ज्ञानक्रिया से या दर्शनक्रिया से धर्म होता है।

प्रश्नकर्ता : धर्म का साधन क्या? धर्म किसे कहते हैं?

दादाश्री : धर्म का साधन, उपादान जागृत होना चाहिए और धर्म किसे कहते हैं? खुद के कषाय कम हो जाएँ तो समझना कि धर्म उत्पन्न

हुआ। कषाय कम हों तो समझना कि धर्म हुआ।

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार धर्म में स्थिर हुआ जाए?

दादाश्री : उपादान जागृत करने से स्थिर हुआ जाता है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष का सरल उपाय क्या है?

दादाश्री : कषाय रहित 'ज्ञानी पुरुष' की सेवा से मोक्षमार्ग सरल हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : कौन-कौन से साधनों से मोक्ष होता है?

दादाश्री : ज्ञान से मोक्ष होता है। सद्ज्ञान से, आत्मज्ञान से मोक्ष होता है।

मोक्ष - खुद अपना भान होने से

प्रश्नकर्ता : जब तक अंतर में से, अंदर से आत्मा की प्रतीति नहीं हो, तब तक आत्मा के लिए उपकारी क्या है? आत्मा को समझ में आया कि ये मन-वचन-काया और सर्व पदार्थों से आत्मा भिन्न है, वैसे ही संसारी कार्यों का कर्त्ता-भोक्तापन छूटे नहीं, तब तक धर्म में प्रवृति के लिए क्या कार्य करने योग्य है?

दादाश्री : 'ज्ञानी' की यदि प्रतीति हो गई तो आत्मा की प्रतीति हुए बगैर रहेगी ही नहीं। आत्मा की प्रतीति होने के बाद, उसका लक्ष्य बैठ जाने के बाद संसारी कार्यों का कर्त्ता-भोक्तापन छूट ही जाता है। संसारी कार्य तो अपने आप होते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में रहना और मोक्षमार्ग में जाना, वे दोनों बातें वर्तमान परिस्थिति में एक साथ हो सकें, वैसा संभव नहीं लगता है।

दादाश्री : संभव नहीं है परन्तु अनुभव में आए वैसी बात है। जब आपको अनुभव में आएगा तब समझ में आएगा। ऐसे संभव नहीं लगता, परन्तु अनुभव में आए वैसी बात है। क्योंकि दोनों वस्तुएँ अलग हैं और जो वस्तुएँ अलग हों उनका भेद बरतता है। लोगों को तो ऐसा ही लगता

है कि आत्मा, वही 'मैं हूँ'। इसे आत्मा कहना गलत है। अभी 'मैं हूँ' कहता है वह 'मिकेनिकल' आत्मा है। जो दरअसल आत्मा है, वह तो इससे अलग है। वह तो हम जब 'दरअसल आत्मा' का भान करवाते हैं, तब उसका 'आपको' भान होता है। तब 'मैं' दरअसल आत्मा में 'फिट' हो जाता है। वस्तुत्व का भान होने के बाद 'मैं' मूल अस्तित्व में फिट हो जाता है। आत्मा का अस्तित्व, वस्तुत्व और पूर्णत्व है। अस्तित्व का भान तो सभी को है, परन्तु वस्तुत्व का भान नहीं है, हम वस्तुत्व का भान करवा देते हैं तब वह 'खुद' 'खुद' में फिट हो जाता है, फिर पूर्णत्व होता रहता है। अर्थात् 'स्वयं' 'अपने' स्वभाव में और *पुद्गल* उसके स्वभाव में रहता है, प्रकृति, प्रकृति के स्वभाव में और पुरुष, पुरुष के स्वभाव में रहता है! दोनों अलग बातें हैं, इसलिए फिर बिल्कुल अलग ही बरतता है!

'ज्ञानी पुरुष' में अनंत प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं, इसलिए ऐसा हो सकता है। उनमें तो बहुत प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं, गज़ब की सिद्धियाँ होती हैं। क्योंकि जिन्हें कोई अपेक्षा नहीं हो, उनमें बहुत प्रकार की सिद्धियाँ होती हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग में व्यवहार बाधा तो डालता है न?

दादाश्री : वास्तव में ऐसा कहना चाहते हैं कि यदि व्यवहार बाधक होता तो इन साधुओं, संन्यासियों, आचार्यों ने व्यवहार छोड़ दिया है, तो अब उनके लिए हल आ जाना चाहिए, ऐसा अर्थ हुआ। परन्तु ऐसा होता नहीं है। वास्तव में मोक्ष के लिए व्यवहार बाधक नहीं है। मोक्ष में व्यवहार बाधा नहीं डालता, सिर्फ अज्ञान ही बाधक है। 'ज्ञानी पुरुष' ऐसा अचूक ज्ञान देते हैं कि तुरन्त ही वर्तन में आ जाता है। जो ज्ञान क्रियाकारी हो, वही ज्ञान कहलाता है, बाकी सब ज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग मुक्ति का मार्ग है, उसमें कुछ भी अपेक्षा नहीं हो सकती। तो फिर इसमें शासन देव-देवियों को राज़ी रखने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : इन शासन देव-देवियों को राज़ी इसलिए रखना है कि

इस काल के मनुष्य पूर्वविराधक हैं। पूर्वविराधक अर्थात् किसीको परेशान करके आए हैं! इसलिए तो अभी तक भटके हैं। हमें देव-देवियों का आराधन इसलिए करना है कि उनकी तरफ से कोई क्लेम नहीं रहे। अपने मार्ग में बीच में वे अंतराय नहीं डालें और हमें निकल जाने दें और हैल्प करें। हमारा इस गाँव के साथ पहले झगड़ा हुआ हो और इस गाँव के लोगों की आराधना के भाव रखें तो झगड़ा मिट जाता है और बल्कि काम अच्छा होता है। उसी तरह पूरे जगत् की आराधना से शासन देव-देवियाँ ही नहीं, परन्तु जीव-मात्र की आराधना से अच्छा होता है। शासन देव-देवियाँ निरंतर शासन पर, धर्म पर कोई भी अड़चन आए, तब वे हेल्प करते हैं! और यह मोक्षमार्ग ऐसा है कि यहाँ से डायरेक्ट मोक्ष में नहीं जाया जा सकता, एक-दो जन्म बाकी रहते हैं, ऐसा यह मार्ग है। इस काल में यहाँ से डायरेक्ट मोक्ष नहीं होता है। इस काल की विचित्रता इतनी अधिक है कि सारे कर्म कम्प्रेस करके लाए हैं, वे पूरे दिन प्लेन में घूमें तो भी काम पूरे नहीं होते, साइकिल लेकर घूमें, पूरा दिन भटकते रहें, पर काम पूरे नहीं होते। यानी एक-दो जन्म जितने कर्म बाकी रहते हैं। यानी यह मोक्ष ही कहलाएगा न? परन्तु मोक्ष का यहाँ पर ही अनुभव हो जाता है और जुदापन का भान होता है, 'मैं जुदा हो चुका हूँ' ऐसा भान होता है।

प्रश्नकर्ता : आपकी मान्यता से इन जैनों की चौथ-पाँचम के लिए कौन-सी तिथि सच्ची है? चौथ या पाँचम?

दादाश्री : जो तुझे अनुकूल आए वह सच्ची, जिससे तेरे द्वारा धर्म हो वह सच्ची और अधर्म हो वह गलत।

प्रश्नकर्ता : जैन किसे कहते हैं?

दादाश्री : जिन अर्थात् आत्मज्ञानी और जिनेश्वर अर्थात् तीर्थंकर, जिसने जिन या जिनेश्वर की वाणी सुनी हो वह जैन। जिसने सुना, श्रद्धा में लिया और जितने अंशों का पालन किया, वह श्रावक और जिसने संपूर्ण पालन किया वह साधु।

❖❖❖❖❖

(२५)
I & My

'मैं' किस तरह अलग हो?

हम लोनावाला गए थे तब एक जर्मन 'कपल' मिले थे। क्या नाम था उनका?

प्रश्नकर्ता : सुसान और लोइड।

दादाश्री : उनसे मैंने पूछा कि, 'आपको' 'I' में डूबना है या 'My' में डूबना है? ये 'I' और 'My' के तालाब हैं। उनमें से 'I' में डूबा हुआ कभी भी मरा नहीं और 'My' में डूबा हुआ कभी भी जीवित नहीं रहा। तब उन्होंने कहा कि, 'हमें तो फिर कभी भी नहीं मरें, वैसा होना है।' तब उन्हें हमने ऐसा समझाया कि, 'देयर इज़ नो वरी इन आइ, डोन्ट वरी फोर माइ। आइ इज़ इम्मोर्टल, माइ इज़ मोर्टल। इसलिए सेपरेट आइ एन्ड माइ!' ('मैं' में कोई चिंता नहीं है और 'मेरा' की चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। मैं अमर है, मेरा नाशवंत है। इसलिए आइ और माइ को अलग कर दो।)

आधे घंटे में तो वे समझ गए और खुश हो गए।

प्रश्नकर्ता : परन्तु 'मैं' किस तरह अलग समझ में आएगा?

दादाश्री : आपका नाम क्या है?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : 'आइ एम चंदूभाई' और 'माइ नेम इज़ चंदूभाई', यानी इन दोनों में विरोधाभास नहीं लगता? 'यह चंदूभाई तो मैं ही हूँ।' ऐसा बोलते हो तब यह हाथ भी आप ही हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं, हाथ तो मेरा है।

दादाश्री : देखो, यह आप जिसे 'I' मानकर बैठे हो, उसमें से पहले नाम निकाल दो। फिर बाहर की जो-जो वस्तुएँ अलग ही दिखती हैं, वे निकाल दो। यह नाम हमसे अलग है, वह अनुभव में आता है? जहाँ-जहाँ 'My' आए वे सभी चीज़ें निकाल देने जैसी हैं। 'I' और 'My' दो अलग ही हैं, वे कभी भी एकाकार होते नहीं। 'नाम' निकाल देने के बाद This is my hand, This is my body, My eyes, My ears, ये सभी अवयव निकालते जाओ। स्थूल सारा कम करने के बाद My mind, My intellect, My Chit, My egoism (मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरा चित्त, मेरा अहंकार), सब निकाल दो। My-My सब निकाल दो तो बाकी जो बचता है, वही चेतन है। उस चेतन के अलावा कुछ भी नहीं रहना चाहिए। My भी पूरा *पुद्गल* है, पराया है। 'I' & 'My' complete अलग ही है। My is temporary adjustment and 'I' is permenant adjustment.

प्रश्नकर्ता : 'My' को निकालने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपको मैं करने का रास्ता बताऊँ, पर आपसे होगा नहीं। यह complex है और काल विचित्र है। इसलिए आपको मेरी हेल्प लेनी पड़ेगी। 'I' और 'My' में से आप सारा ही नहीं निकाल सकोगे। दृष्टिगम्य निकाल सकोगे। फिर बुद्धिगम्य निकाल सकोगे, परन्तु बुद्धिगम्य से आगे जो है, वह नहीं निकाल सकोगे। वहाँ ज्ञानी का ही काम है। अंतिम सूक्ष्मतम अहंकार आपसे नहीं निकल सकेगा। वहाँ हमारी ज़रूरत पड़ेगी। मैं आपको वह सब अलग करके दूँगा। फिर आपको मैं शुद्धात्मा हूँ वैसा Experience होता रहेगा। अनुभव होना चाहिए। और साथ-साथ दिव्यचक्षु भी देता हूँ,

ताकि आत्मवत् सर्वभूतेषु दिखे।

'ज्ञानी' ही मौलिक स्पष्टीकरण दें

'I' और 'My' के बीच में Demarcation line (भेदरेखा) तो डालनी पड़ेगी न? एक Spiritual adjustment (आध्यात्मिक एडजस्टमेन्ट) और दूसरा Mechanical adjustment (भौतिक एडजस्टमेन्ट), ऐसे दोनों अलग-अलग करने पड़ेंगे। नहीं तो अपना देश कौन-सा और विदेश कौन-सा उसका किस तरह पता चलेगा? यह Line of demarcation नहीं डाली, इसीलिए तो रोज़ के झगड़े होते रहते हैं।

'My' is complete mechanical. 'I' is not mechanical. 'I' is absolute. ('मेरा' पूर्णतः भौतिक है। 'मैं' भौतिक नहीं है। 'मैं' केवलज्ञान स्थिति है।)

'My' को कुदरत सभी मदद देती है। इसलिए 'My' में हाथ मत डालना। सिर्फ देखते ही रहना। मशीन को तेल, पानी, वायु, मिलती ही रहेगी। और फिर टेस्टफुल मिलेगा, 'फ्री ऑफ कॉस्ट' मिलेगा।

संसार में अपने 'I' का वजन 'My' खा जाता है, 'I' का पाँच पाउन्ड और 'My' का लाख पाउन्ड हो गया है। 'My' का वजन यदि कम हो तब 'I' का वजन बढ़ेगा।

'I' भगवान है और 'My' माया है। 'My' वह माया है। 'My' is relative to 'I'. 'I' is real. आत्मा के गुणों का इस 'I' में आरोपण करो, तब भी आपकी शक्तियाँ बहुत बढ़ जाएँगी। मूल आत्मा ज्ञानी के बिना नहीं मिल सकता। परन्तु ये 'I' and 'My' are complete seperate. ऐसा सभी को, फ़ॉरेन के लोगों को भी यदि समझ में आ जाए तो उनकी परेशानियाँ बहुत कम हो जाएँगी। यह बात फ़ॉरेन के साइन्टिस्टों को जल्दी समझ में आ जाएगी। यह साइन्स है। अक्रम विज्ञान की यह आध्यात्मिक research का बिल्कुल नया ही तरीका है। 'I' and 'My' बिल्कुल अलग ही है। 'I' वह स्वायत्त भाव है और 'My' वह

मालिकीभाव है।

फ़ॉरेन के लोग पुनर्जन्म ढूंढते फिरते हैं। उन्हें मैं कहता हूँ कि इसके बदले में 'I' और 'My' seperate हैं ऐसा ढूंढ निकालो न! My birth और My death कहते हैं न? और ट्रेन में भी My berth (मेरी जगह) कहते हैं न?(!)

व्यवहार में 'My' बोला जाता है, परन्तु वह ड्रामेटिक होना चाहिए। 'I' को निकालकर बोलना चाहिए। 'My' भोगने के लिए है, परन्तु reinvite (वापिस बुलाने) के लिए नहीं है। Complete happiness belongs to 'I' without 'My'. (संपूर्ण सुख बगैर 'मेरे'वाले 'मैं' में है।)

❖❖❖❖❖

(२६)
स्मृति - राग-द्वेषाधीन

तीव्र स्मृति, वहाँ तीव्र राग-द्वेष

कल कौन-सा वार है, हमें वह भी याद नहीं होता, फिर भी जगत् चलता है। किसीसे पूछें तब तो तीन लोग बोल उठते हैं कि रविवार है। याद रखनेवाले बहुत सारे लोग हैं।

वीतराग किसे कहा जाएगा? आत्मा के अलावा दूसरा कुछ भी याद ही नहीं आए, आत्मा और आत्मा के साधन के अलावा दूसरा कुछ भी याद ही नहीं रहे।

जितनी स्मृति गई, उतने वीतराग हुए। वीतराग को किसी भी प्रकार की स्मृति नहीं होती। जगत् की विस्मृति को ही मोक्ष कहा है।

स्मरणशक्ति के लिए पूरा जगत् प्रयत्न करता है, परन्तु स्मरणशक्ति नाम की कोई शक्ति नहीं है। स्मरणशक्ति, वह राग-द्वेष के कारण है। मुझे राग-द्वेष नहीं है इसीलिए मुझे स्मरणशक्ति नहीं है। अभी हमें हमारी स्मृति पर से पता चलता है कि इस जगह पर राग है और इस जगह पर द्वेष है। इसलिए ही तो लोगों ने जगत् विस्मृत करने के लिए खोज की है।

प्रश्नकर्ता : पहले नंबर से पास हो उसे राग-द्वेष बहुत हैं, ऐसा कहा जाता है?

दादाश्री : उसे जिसमें इन्टरेस्ट अधिक हो, उसमें अधिक मार्क्स आते हैं। इतिहास में राग हो तो उसमें अधिक मार्क्स आते हैं। कितने ही बच्चों को पढ़ाई में कुछ भी याद नहीं रहता। वह हम जानते हैं कि उसे

पढ़ाई में इन्टरेस्ट नहीं है और दूसरा सब बहुत याद रहता है, उसे जिसमें बहुत इन्टरेस्ट हो वह। जिसे जिसमें राग अधिक उसका वह एक्सपर्ट हो जाता है। मुझे अध्यात्म पर राग था, इसलिए मैं अध्यात्म में एक्सपर्ट हो गया!

कुछ को शास्त्रों पर बहुत राग होता है, इसलिए उन्हें शास्त्रों की ज़बरदस्त स्मृति होती है। इसमें आत्मा पर राग हो जाए तो दूसरी सब जगह, संसार में विस्मृति कहलाती है।

स्मृति-विस्मृति, करना मुश्किल

प्रश्नकर्ता : पंद्रह वर्षों तक कुछ भी मुझे याद नहीं आया और आज आ गया, वह क्या कहलाता है? वह कौन-सा राग-द्वेष कहलाता है?

दादाश्री : वह राग-द्वेष पर आधारित है। कुछ बातों में ऐसा होता है कि वह सतत याद आती ही रहती है और कुछ ऐसी होती है कि उनका काल परिपक्व हो तब फल देते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : कुछ भी याद रखना आसान है, परन्तु विस्मृत करना मुश्किल है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : याद रखना भी सरल नहीं है और विस्मृत करना भी सरल नहीं है, दोनों कठिन हैं। जिसे याद नहीं रहता हो उसे याद करना बहुत मुश्किल लगता है। तब उस चीज़ को उसे विस्मृत करना बहुत आसान ही होता है न! और जिसकी याद बहुत आती हो, उसकी विस्मृति लानी बहुत मुश्किल हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : जगत् किस तरह विस्मृत करें? भूलें कैसे? वह एक प्रश्न है।

दादाश्री : जगत् एक घंटा भी विस्मृत हो सके ऐसा नहीं है। एक घंटे जगत् विस्मृत करने के लिए हज़ारों रुपया खर्च करे तो भी वह विस्मृत हो, ऐसा नहीं है। तरह-तरह का याद आता है। भोजन करते समय जो

बीमार हो वही प्रियजन याद आते हैं, अरे, तू किसलिए याद आया? अर्थात् स्मृति ही दु:ख देती है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु फिर ऐसी शंका होती है कि जगत् विस्मृत रहे तो सेल्सटैक्स, इन्कमटैक्स के केस का *निकाल* किस तरह करेंगे? उसमें मुसीबत पड़ेगी न?

दादाश्री : वैसा नहीं है। जगत् विस्मृत रहे और संसार के काम हों, ऐसा है। बल्कि बहुत अच्छी तरह, सहज रूप से हों, वैसा है।

ज्ञानी की स्मृति

यह स्मृति ही पीड़ा उत्पन्न करती है। यह ज्ञान होने से पहले मुझे बहुत ही स्मृति थी, ज़बरदस्त स्मृति थी, वह मुझे बहुत पीड़ा देती थी, रात को सोने भी नहीं देती थी। उसका हिसाब निकाला कि किस जगह पर दु:ख है? परन्तु ऐसे देखो तो हर प्रकार से हम सुखी थे, परन्तु इस स्मृति का अपार दु:ख था। हमें याद बहुत रहता था, एट ए टाइम सबकुछ याद रहता था, परन्तु स्मृति पौद्गलिक वस्तु है, चेतन नहीं है। फिर ज्ञान होने के बाद 'दिखने' लगा। स्मृतिवाला दर्शन नहीं, परन्तु यथार्थ दर्शन हुआ।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि आपको स्मृति नहीं है, परन्तु आज से दस वर्ष पहले आपने किसी घटना या उदाहरण दिया हो, वह आज फिर से आपके मुख से सुनते हैं तब एक्ज़ेक्टली उसी प्रकार से, उसी लिंक में, एक-एक शब्द क्रमबद्ध टेप की तरह निकलता है, वह क्या होगा? वह कौन-सी शक्ति है?

दादाश्री : राग-द्वेष के अधीन स्मृति है। इसलिए उसमें एक्ज़ेक्ट नहीं होता। हमारे मुख से जो निकलता है वह दर्शन के आधार पर निकलता है, इसलिए एक्ज़ेक्ट होता है। हमें सब दिखता है। बचपन में चार वर्ष का था तब से अभी तक का सारा ही देख सकता हूँ, हमें याद नहीं करना पड़ता। इस तरह चौदह साल की उम्र का देखूँ तो वह दिखता है, बीस साल की उम्र का देखूँ तो वह दिखता है।

हमारे पास पूछने आनेवालों की फाइल जाँच करके जवाब देने पड़ते हैं। इससे पहले क्या बात की थी, अभी क्या है, उन सभी कनेक्शन में जवाब होता है। हर एक की फाइल अलग-अलग है। इसलिए जवाब अलग-अलग होता है। जवाब उसकी फाइल के अधीन होता है। अब कोई कहेगा कि, 'दादा, आप एक ही प्रकार का जवाब सबको क्यों नहीं देते?' अरे, ऐसा नहीं है। हर एक की फाइल अलग-अलग है, हर एक के रोग अलग-अलग है। इसलिए हमारे पास शीशियाँ अलग-अलग और दवाई भी अलग-अलग होती है। हर एक के क्षयोपशम अलग-अलग होते हैं। हमारी सैद्धांतिक बात में कहीं भी परिवर्तन नहीं होता। उसे तो तीनों काल में कोई भी काट नहीं सकता, वैसी होती हैं। इन व्यवहारिक प्रश्नों का हल हर एक निमित्त के अधीन होता है।

आप मुझे जो याद करवाते हो न, वह सबकुछ मुझे दिखता है। व्यापार का भी हमें हमारे कनुभाई कुछ पूछें, तब सबकुछ ही दिखता है। पुल दिखता है, उसके सारे खंभे दिखते हैं, कहाँ क्या है और क्या नहीं, वह सबकुछ दिखता है। याद करवाओ तब उपयोग केन्द्रित करते हैं और उससे सबकुछ क्रमबद्ध दिखता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उपयोग से दिखता है न?

दादाश्री : याद करवाए तब उपयोग वहीं जाता है। क्योंकि वह उपयोग उधर नहीं जाए तो व्यवहार सारा टूट जाएगा।

प्रशस्त राग, मोक्ष का कारण

समय आए उस घड़ी सबकुछ ही याद आ जाता है। अभी हमें सत्संग के ऊपर राग है, इसलिए सत्संग का समय हो तब जाने का याद आता है। महात्माओं पर राग रहता है। इन सभी रागों को प्रशस्त राग कहा जाता है। ये बंधन नहीं करवाते, परन्तु महाविदेह क्षेत्र के लिए बंधन करवाते हैं। महाविदेह क्षेत्र में श्री सीमंधर स्वामी के पास जाना है सभी को। इसलिए अभी से उन्हें पहचान लेना हो तो पहचान लेना। इसलिए तो हम उनके भजन गवाते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें ये 'दादा' याद आते हैं, वह?

दादाश्री : वह प्रशस्त राग है। प्रशस्त राग वीतराग बनानेवाला है। उसीमें राग करने जैसा है! सब जगह से राग उठा-उठाकर इसमें ही राग करना है। आत्महेतु के लिए राग और देहाध्यास के लिए राग इन दोनों में बहुत फर्क है। आत्महेतु के प्रति ममता और आत्मा की ममता है। अंत में वह मुक्ति दिलवाती है।

कुछ जड़ जैसे होते हैं, उन्हें भी स्मृति नहीं होती। समकित रहित विस्मृति जड़ता कहलाती है। भोजन अधिक हो, सोता रहे, प्रमादी रहे, उससे दिमाग़ डल रहता है। वह अधोगति में ले जाता है।

याद? कितना बड़ा परिग्रह!

परिग्रह किसे कहते हैं? जो याद आता रहे उसे। अंगूठी ऊँगली में है या नहीं, गिर गई है या नहीं, वह भी याद नहीं आए तो उसका नाम अपरिग्रही। त्याग करने से अपरिग्रही नहीं बनते। त्याग करने जाएँ तो अधिक याद आता रहता है।

❖❖❖❖❖

(२७)
निखालिस

निखालिसता निर्भय बनाए

तू पुस्तक नहीं पढ़ेगा और कुछ नहीं समझेगा तो भी मुझे आपत्ति नहीं है, परन्तु तू निखालिस बन, सच्चा निखालिस बन। फिर निखालिस को शोभा दे, वैसा सारा ज्ञान अपने आप ही उद्भव हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में निखालिस हों तो बहुत तकलीफ होती है।

दादाश्री : निखालिस कोई हो ही नहीं सकता न! आत्मज्ञान होने के बाद ही निखालिस बनते हैं।

प्रश्नकर्ता : निखालिस हों तो व्यवहार में बुद्धू माने जाते हैं।

दादाश्री : बुद्धू निखालिस होते ही नहीं। लोग बुद्धू को ही निखालिस कहते हैं। निखालिस तो अलग ही होता है। हर एक विषय में वह निखालिस होता है, एक-दो में नहीं।

प्रश्नकर्ता : निखालिस के बारे में ज़रा स्पष्ट समझाइए।

दादाश्री : निखालिस यानी एकदम प्योर मनुष्य होता है। वह मनुष्य, मनुष्य नहीं होता, सुपरह्युमन हो तभी निखालिस हो सकता है। निखालिस तो एकदम प्योर, ट्रान्सपेरेन्ट जैसा होता है। उसे एक भी विचार इम्प्योर नहीं आता। वैसा तो होता ही नहीं न कहीं भी। स्वरूपज्ञान मिलने के बाद धीरे-धीरे वैसा बनता जाता है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में निखालिस मनुष्य का लोग गलत फायदा उठाते हैं न?

दादाश्री : नहीं। जो गलत फायदा लेने आया होगा, वह सौ फुट दूर से ही अंदर नहीं आ सकेगा। उसकी शक्ति ही टूट जाएगी, फ्रेक्चर हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : निखालिस अर्थात् स्व-स्वरूप में रहे वह?

दादाश्री : स्व-स्वरूप में तो हम ज्ञान दें तो आप भी रहते हो, परन्तु वह निखालिसता नहीं कहलाती। निखालिस को संसार का एक भी विचार नहीं आता, हृदय एकदम प्योर होता है। आपको अभी भी विचार आते हैं, उनमें तन्मयाकार हो जाते हो। घर के विचार आएँ, व्यापार के आएँ, विषयों के आएँ, दूसरे सभी प्रकार के विचार आएँ, तब तक मनुष्य ट्रान्सपेरेन्ट नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : निखालिस मनुष्य को किसके विचार आते हैं?

दादाश्री : उन्हें विचार ही नहीं होते। उनका मन घूमता ही रहता है। समय-समय अर्थात् समयवर्ती हो चुका होता है। निखालिस पुरुष की सिद्धियाँ असीम होती हैं। परन्तु वे उनका उपयोग नहीं करते। अंत में आपको भी ऐसा ही निखालिस होना पड़ेगा न?

एक निबंध लिखकर लाना कि किसलिए जीवन जीना है! उसके पोज़िटिव-नेगेटिव सभी साइड लिखकर लाना। हमें प्रगति तो करनी पड़ेगी न? ऐसे सामान्य व्यक्ति की तरह कब तक बैठे रहेंगे? मुझे तेरहवें वर्ष में असामान्य होने का विचार आया था। सामान्य अर्थात् सब्ज़ीभाजी, वैसा मुझे लगा था। सामान्य व्यक्ति को जो तकलीफ पड़ती है, वैसी कोई तकलीफ असामान्य मनुष्य को नहीं पड़ती। सामान्य मनुष्य किसीको हेल्प नहीं कर सकता। जब कि असामान्य मनुष्य हेल्प के लिए ही होता है। इसलिए ही उसे जगत् एक्सेप्ट करता है।

प्रश्नकर्ता : असामान्य मनुष्य की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : असामान्य अर्थात् खुद जगत् के सभी लोगों को, हर एक जीव-मात्र के लिए हेल्पफुल हो जाए। खुद स्वतंत्र हो जाए, प्रकृति से पर

हो जाए, तब असामान्य बनता है। सामान्य मनुष्य लाचारी भी अनुभव करता है, तीन दिनों तक भूखा रखे तो लाचारी अनुभव करता है। इसलिए असामान्य बनें। फिर तो खुद के सुख की सीमा नहीं रहेगी।

अभी कोई बड़ा व्यक्ति आपको दिखे तो आपको लघुताग्रंथि उत्पन्न होती है, आप एकदम प्रभावित हो जाते हो। अरे! वो सामान्य व्यक्ति ही है, फिर उससे क्या प्रभावित होना?

निखालिस हो गए अर्थात् दुनिया का कोई भी डर रखने की ज़रूरत ही नहीं होती। उसका तो ओटोमेटिकली रक्षण होता रहता है, उसका कोई भक्षण कर ही नहीं सकता। स्वरूपज्ञान मिलने के बाद उसकी पूर्ण दशा उत्पन्न होगी, तब कोई भी भक्षण नहीं कर सकेगा, कोई नाम भी नहीं दे सकेगा।

❖❖❖❖❖

(२८)
मुक्त हास्य
जितनी सरलता उतना मुक्त हास्य

दादाश्री : आपकी उम्र कितनी हुई?

प्रश्नकर्ता : सत्तर।

दादाश्री : देखो न, इस उम्र में मेरे सामने देखकर हँस रहे हैं कि जैसे बालक हँस रहा हो। यह सरलता कहलाती है। क्या सबके पास से हास्य छीन लिया है? हँसा क्यों नहीं जाता? तब कहे, असरलता है। इसलिए हम उसे क्या कहते हैं, कि 'भाई, यहाँ सत्संग में रोज़ बैठे रहना', ऐसा करते-करते असरलता चली जाएगी, ऐसा करते-करते हास्य खुल जाएगा। इस आरती में हास्य खुलता है इसलिए मैं रास्ता करवाता हूँ। हास्य तो नाभि में से फूटना चाहिए। यह तो यहाँ पर गले में से ही हँसते हैं, उसका क्या कारण है? अंदर मल भरा हुआ है इसलिए। आरती में सारे मल निकल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मुक्त हास्य किसे कहेंगे?

दादाश्री : आपने मुक्त हास्य देखा है?

प्रश्नकर्ता : आपका हास्य देखा है न?

दादाश्री : यह आपको मुक्त लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बिल्कुल वीतराग हास्य लगता है।

दादाश्री : यही मुक्त हास्य कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : हमारा हास्य मुक्तहास्य हो वैसे संयोग हैं, फिर वह किसलिए रुका हुआ है?

दादाश्री : आपके भीतर सारे भूत भरे हुए हैं, इसलिए वह रुका हुआ है। मुक्त पुरुष के सिवाय कोई वह नहीं निकलवा सकता। मुक्त पुरुष अपने मुक्त हास्य से आपको मुक्त हास्य में ले आते हैं। भीतर तरह-तरह के आग्रह रहे हुए होते हैं, इसलिए रोने के टाइम पर रोता नहीं और हँसने के टाइम पर हँसता नहीं है।

हास्य किसलिए आता है? ये बूढ़े चाचा अधिक क्यों हँसते हैं? निर्दोषता है इसलिए, सरल हैं इसलिए। सरल अर्थात् जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाएँ, सोने की तरह। उन्हें एक ही घंटे में जैसा आकार देना हो वैसा हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : यानी निर्दोषता बढ़े तब हास्य बढ़ता है?

दादाश्री : हाँ, वह निर्दोषता का ही गुण है। आज के एटिकेटवाले (शिष्टाचारवाले) लोग जो टेबल पर हँसकर खाना खाते हैं, वह सब पोलिश्ड कहलाता है। वह फिर नई ही प्रकार का, तृतियम कहलाता है। ऐसा बनावटी हँसे, उसके बदले तो मुँह लटकाकर बैठना अच्छा। बनावटी बोले उसके बदले तो कम बोले तो अच्छा।

ये चाचा जब से आए हैं, तब से ही उनके भीतर नई ही प्रकार का अनोखा आनंद हो रहा है। वह मैं अकेला ही जानता हूँ और वे जानते हैं। क्योंकि सरल हैं, इसलिए हमारे दर्शन से ही उन्हें आनंद हो गया।

मुक्त हास्य, मुक्त पुरुष का

'ज्ञानी पुरुष' निरंतर मुक्त अवस्था में होते हैं, इसलिए सामनेवाले का भी अंतर खुल जाता है! हमारा मन मुक्त रहता है, किसी अवस्था में एक क्षण भी वह बंधता नहीं। 'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन से ही सब उल्लास में आ जाते हैं। और उससे तो कितने ही कर्म नष्ट हो जाते हैं।

संपूर्ण वीतराग भगवान के अलावा और किसीका भी कर्म रहित

हास्य नहीं होता है। वह इस काल में प्रकट हुआ है, अक्रम विज्ञान के 'ज्ञानी पुरुष' के पास प्रकट हुआ है - काम निकाल दे ऐसा है, सर्वस्व कर्म भस्मीभूत कर दे ऐसा है! 'ज्ञानी पुरुष' को जब देखो, रात के दो बजे देखो, तब भी एक ही प्रकार का मुक्त हास्य होता है! जब कि दूसरों के हास्य कषायों से स्तंभित हो चुके होते हैं।

प्रश्नकर्ता : वैराग आ जाए तो उससे मुक्त हास्य रुक जाता है?

दादाश्री : वैराग में तो उदासीनता आती है। उदासीनता अधूरी कहलाती है, मुक्त हास्य पूर्ण कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : आपके साथ बात करते-करते हमें कभी मुक्त रूप से हँसना आ जाता है, वह मुक्त हास्य कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, उस समय मुक्त हो जाता है। ऐसे करके प्रेक्टिस हो जाती है, नहीं तो ये 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' वैसा हमें किसलिए करने की ज़रूरत है? उस समय भीतर का कचरा निकलता है और मुक्त होते हो।

❖❖❖❖❖

(२९)
चिंता : समता

भूतकाल, अभी कौन याद करता है?

प्रश्नकर्ता : कल की चिंता नहीं करें तो कैसे चलेगा?

दादाश्री : कल होता ही नहीं है। कल तो किसीने देखा ही नहीं दुनिया में। जब देखो तब आज ही होता है। कल तो मुश्किलों के साधन की तरह है। बीते हुए कल का अर्थ जो काल जा चुका है, वह है। भूतकाल का मतलब बीता हुआ कल। यानी आनेवाले कल की चिंता करनी ज़रूरी ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो पहले से ही टिकिट किसलिए खरीदते हैं?

दादाश्री : वह तो एविडेन्स है। वह सच न भी हो कभी। यह आप प्रोग्राम नहीं बनाते कि पच्चीसवीं तारीख को मुंबई जाना है, अट्ठाइसवीं तारीख को बड़ौदा जाना है? उन सबका आपको विज़न है ही। उस विज़न के कारण ही आप यथार्थ रूप से नहीं देखते हो। आप इस तरह के हकबकाए हुए विज़न से ही देखते हो। यथार्थ विज़न में आप स्थिरता में रहकर देख सकते हो। नियम ऐसा है कि एक बाउन्ड्री तक आप देखो तो आपको यथार्थ विज़न मिलेगा और उस बाउन्ड्री से आगे आज देखोगे तो अभी ठोकर खा जाओगे। जिसकी ज़रूरत नहीं है उसे देखना मत। हम घड़ी के सामने देखते ही रहें तो बल्कि यहाँ पर ठोकर लगेगी। इसलिए इस विज़न में कुछ हद तक का ही देख-देखकर चलना चाहिए।

जहाँ कल नाम की कोई वस्तु ही नहीं उसका अर्थ ही क्या? जो काल चल रहा है, वह आज है और बीते हुए काल को कल कहते हैं,

वह भूतकाल है। भूतकाल को तो कोई मूर्ख भी याद नहीं करता और आनेवाला कल तो 'व्यवस्थित' के हाथ में है। इसलिए वर्तमान में रहो, सिर्फ वर्तमानकाल में ही रहो।

परसत्ता अधिकार, चिंता को जन्म दे

जिस घर में चिंता होती है, वहाँ पर सभी मुश्किलें आती ही रहती है। चिंता अहंकार है। यह सब चलाने की आपके हाथ में सत्ता है कुछ? जिसकी सत्ता है उसकी सत्ता यदि हम ले लें तो फिर वह हाथ नहीं डालेगा। इसलिए आप उस सत्ता पर छोड़ दो।

प्रश्नकर्ता : चिंता नहीं हो उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वापिस लौटना चाहिए, या फिर इगोइज़म खत्म करना चाहिए। यह तो 'ज्ञानी पुरुष' हो और ज्ञान दें तो चिंता रहे ही नहीं। यह चिंता करने का फल क्या है?

प्रश्नकर्ता : वह मालूम नहीं।

दादाश्री : चिंता का फल जानवरगति है। चिंता, एबोव नोर्मल इगोइज़म है।

प्रश्नकर्ता : मुझे चिंता तो बहुत रहती है।

दादाश्री : आपको थोड़ी चिंता है, इसलिए तो आपको यहाँ आने का समय भी मिला। इन सेठ लोगों को तो संडास जाने का भी समय नहीं मिलता। इतनी सारी चिंताएँ हो गई हैं। दो मिलें हो गई, अब तीसरी बनानी है! लोभ, लोभ और लोभ। आपने कब तक इकट्ठा करने का नक्की किया है? दस लाख रुपये?

प्रश्नकर्ता : जितना अधिक मिले उतना अच्छा।

दादाश्री : अभी तक आपका पूरा ही नहीं हुआ? ये काले बाल बदलकर सफेद हो गए, फिर भी पूरा नहीं होता? इसलिए यह दग़ा है। अब चुपचाप उसका पीछा छोड़ दो और चैन से चाय-नाश्ता करो, भोजन

करो और फिर कामधंधा करो!

चिंता, सफलता का अवरोधक

यह चिंता करने से हर एक काम देर से होता है। यहाँ बाहर निकलकर सुबह कब होगी, कब होगी ऐसे चिंता करते हुए पूरी रात बैठे रहो तो सुबह जल्दी हो जाएगी? बल्कि देर से होगी। उसके बदले तो ओढ़कर सो जा न। चिंता से काम आगे खिसक जाता है। सब्ज़ी मिलेगी या नहीं मिलेगी, उसकी चिंता करे तो वह भी नहीं मिलेगी।

जिसका उपाय नहीं उसकी चिंता क्या? मरण का उपाय नहीं है, इसलिए उसकी कोई चिंता करता है?

चिंता हो तब आप क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : ईश्वर स्मरण।

दादाश्री : आपका कोई मित्र आपकी बिना पहचानवाला है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, परन्तु पहचान के बिना तो मित्रता किस तरह होगी?

दादाश्री : वैसे ही बिना पहचाने भगवान का स्मरण किस तरह हो सकता है?

चिंता होने लगे तो समझ लो कि कार्य बिगड़नेवाला है और चिंता नहीं हो तो समझना कि कार्य बिगड़नेवाला नहीं है। चिंता कार्य में अवरोधक है। चिंता से व्यापार बिगड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह चिंता किसलिए होती है?

दादाश्री : आरोपित भाव है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', इसलिए। 'रियल' स्वरूप को नहीं जानते हैं, इसलिए। चिंता कब होती है? मन में विचार आएँ और उनमें तन्मयाकार हो जाए तब। विचार जड़ हैं और खुद चेतन है। जड़-चेतन का मिक्सचर हो जाए, तब चिंता होती है। चिंता मन का

परिषह है। परिषह अर्थात् वेदना खड़ी होती है। चिंता नहीं हो उसके लिए नक्की कर कि मन के विचार सूक्ष्म संयोग हैं, वे 'ज्ञेय हैं' और 'मैं ज्ञाता हूँ'। विचार तो आएँगे परन्तु उनका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। या फिर उन्हें निर्माल्य कर देना पड़ेगा। जिसे विचार आते हैं, वह निर्जीव भाग है। विचार किए कि अंतराय पड़े। जो शक्ति हमारी नहीं है, वहाँ हाथ क्यों डालें?

यह 'अक्रमज्ञान' हम दें, फिर चिंता हो तो हमारे ऊपर कोर्ट में वकील रखकर दावा करना, ऐसी गारन्टी देते हैं। संसार की चिंताएँ गईं यानी प्रथम मोक्ष हुआ। फिर पहले के जो हिसाब हैं वे चुक जाएँ, वह दूसरा मोक्ष। दूसरा मोक्ष अर्थात् पूर्णाहुति।

भ्रांति में शांति रहती है?

इस जगत् में शांति किस तरह रहे? करोड़ रुपये हों तो भी नहीं रहे। जहाँ भ्रांति है, वहाँ शांति कैसी?

प्रश्नकर्ता : यह शांति हमेशा क्यों नहीं रहती, इतना-इतना धर्म करने के उपरांत भी?

दादाश्री : क्योंकि आप निरंतर अचेतन में रहते हो। चेतन में रहो तभी निरंतर सुख रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : शांति प्राप्त करने के लिए कौन-से प्रयत्न करने चाहिए?

दादाश्री : जिसमें प्रयत्न करना पड़े उसमें शांति होती ही नहीं, वह तो उठापटक है।

जगत् में अनेक प्रकार की शांति होती है, परन्तु वे सब मूर्छित शांति और आत्मशांति तो किसी भी प्रकार की मूर्छा से रहित शांति होती है। आत्मशांति से तृप्ति होती है और मूर्छित शांति से तृप्ति नहीं होती।

अशांति गई और शांति आई तब से ही समझना कि कर्म बंधने रुक गए हैं, उसके बाद ही अंत आएगा।

'ज्ञानी' के सांनिध्य में कैसी निराकुलता!

एकबार हम 'विहार लेक' पर घूमने गए थे। वहाँ शयदा साहब, उनके एक मुसलमान मित्र कि जो कोर्पोरेटर थे, उन्हें दर्शन करवाने ले आए। उनकी बीवी-बच्चे सब आए थे, वे व्यक्ति बहुत विचारशील और औलिया जैसे व्यक्ति थे। वे नीचे मिट्टी में बैठते थे तो किसीने कहा, ''नीचे चींटियाँ काटेंगी, इसलिए 'दादा' के पास में बैठिए।' तब उन्होंने कहा, 'दादा की हाज़िरी में चींटियाँ कैसे काटेंगी?' फिर उन्हें हमने हमारे पास बैठाया। दस मिनिट बाद बोले, 'मैं धर्म की इतनी सारी जगहों पर घूमा हूँ, परन्तु मुझे इन दस मिनिटों में जो शांति हो गई, वैसी कहीं भी नहीं हुई। तो इसका क्या कारण होगा?' तब मैंने उनसे कहा, ''इसका दूसरा कोई कारण नहीं है। आप अभी अल्लाह के खूब नज़दीक बैठे हो। अल्लाह के नज़दीक जाएँ तो सुख-शांति नहीं होगी? अल्लाह 'मेरे' एकदम नज़दीक सटकर ही बैठे हुए हैं और आप मेरे पास बैठे हो। यानी बिल्कुल नज़दीक आ गए न? फिर कैसी शांति बरतेगी!''

'ज्ञानी पुरुष' के पास तो केश डिपार्टमेन्ट है। 'दिस इज़ द केश बैंक ऑफ डिवाइन सोल्युशन (यह तो अलौकिक समाधानों का नक़द बैंक है)।' जिसका पुण्य जागे वह मुझे मिल जाता है और उसका काम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आनंद, शांति किसे कहते हैं?

दादाश्री : शांति 'रिलेटिव' में होती है और परमानंद पूर्णत्व में होता है। परमानंद अर्थात् परमतृप्ति। इस देह के हिसाब भी चुक जाते हैं तब तृप्ति, परमानंद रहता है। देह का बोझ है, तब तक तृप्ति नहीं रहती।

समता, वहाँ राग-द्वेष नहीं

समता बहुत बड़ी चीज़ है। घर पर पत्नी बोली हो और सुन ले, उसे लोग समता कहते हैं। परन्तु वह समता नहीं कहलाती। भीतर *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) होता रहता है उसे समता कैसे कहा जाए?

समता किसे कहते हैं कि फूल चढ़ाए तो उस पर राग नहीं या फिर गालियाँ दे उस पर द्वेष नहीं, उसे समता कहते हैं। शुभ हो या अशुभ हो, दोनों को समान माने। शुभाशुभ में राग-द्वेष नहीं हो, वह समता है। इस प्रकार से समान तो वीतराग ही मान सकते हैं।

समभाव-समता, फर्क क्या?

प्रश्नकर्ता : समता और समभाव में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। समभाव मतलब क्या? यह तराजू इस तरफ झुका तो दूसरी तरफ कुछ डालकर बराबर करें, तो वह मेंढकों का तोल (मेंढक रखकर तोल बराबर करने का प्रयत्न करना) कितनी देर तक टिकेगा? फिर भी समभाव को उत्तम भाव माना गया है। बैलेन्स रखने का प्रयत्न करते हैं न? और समता यानी फूल चढ़ाए उस पर राग नहीं और पत्थर मारे तो उस पर द्वेष नहीं, ऊपर से उसे आशीर्वाद देते हैं!

'समभाव से निकाल' नक्की होने पर हल

इस 'अक्रम' का 'समभाव से फाइलों का निकाल' - वह तो एक ग़ज़ब की चीज़ है! यह हमारी आज्ञा पालने का आप निश्चय करो कि 'फाइलों का समभाव से निकाल' करना ही है, तो वह आपको तुरन्त हाज़िर हो जाएगा। हमारा निश्चय चाहिए कि '*निकाल* (निपटारा) करना है', ये शब्द ही ज्ञानस्वरूप हैं। फिर बाहर का सब 'व्यवस्थित' के अधीन है। आपकी दृढ़ भावना चाहिए कि यह आज्ञा पालनी ही है।

समभाव से *निकाल* करना अर्थात् संयोगों का अनुसरण करके काम लेना। समता में ऐसा नहीं होता।

अनचाहा व्यक्ति आए तब अंदर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सभी उछलकूद करते हैं। उस घड़ी हम कहें कि समभाव से *निकाल* करना है, तब सब चुप हो जाते हैं। समभाव से *निकाल* करने का नक्की किया, तब से ही सामनेवाले व्यक्ति पर उसका असर पड़ता है और सामनेवाला भी ठंडा हो जाता है। कभी बहुत गाढ़ हिसाब हो तो ठंडा नहीं भी होता! वह

हमें नहीं देखना है, हमें तो दृढ़ निश्चय करना है कि समभाव से *निकाल* करना ही है। कभी न कभी वह नरम पड़े बगैर रहेगा ही नहीं। सबकुछ 'व्यवस्थित' के ही अनुसार होता है।

समताभाव : ज्ञाता-दृष्टाभाव

प्रश्नकर्ता : समता और ज्ञाता-दृष्टाभाव, इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : समता के 'स्टेज' में तो झोंका आ जाता है, इसलिए ऐसे चपत मारकर जागृत करना पड़ता है। जब कि ज्ञाता-दृष्टा तो कायम जागृत ही कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : समता क्या मन की स्थिति है?

दादाश्री : मन की स्थिति है, परन्तु मन की ऐसी स्थिति कब रहेगी? भीतर जागृति हो, ज्ञान हो, तभी वह रहेगी। नहीं तो मन हमेशा ही इस ओर या उस ओर झुका हुआ ही रहता है। समता कब रहती है? आत्मा प्राप्त हो जाए तब।

जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ', तब तक विषमता हुए बगैर रहेगी ही नहीं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका भान हुआ तो काम हो गया।

तृष्णा, तृप्ति और संतोष

संसार का खाएँ, पीएँ, भोगें उससे संतोष होता है, परन्तु तृप्ति नहीं होती। संतोष में से नये बीज डलते हैं। परन्तु तृप्ति हुई तो तृष्णा खड़ी नहीं रहती, तृष्णा टूट जाती है। तृप्ति और संतोष में बहुत फर्क है। संतोष तो सभी को होता है, परन्तु तृप्ति तो किसीको ही होती है। संतोष में फिर से विचार आते हैं। खीर खाने के बाद उसका संतोष होता है, परन्तु उसकी इच्छा फिर से होती है। इसे संतोष कहा जाता है। जब कि तृप्ति में तो फिर से इच्छा ही नहीं होती, उसका विचार ही नहीं आता। तृप्तिवाले को तो विषय का एक भी विचार ही नहीं आता। यह तो चाहे जैसे समझदार हों, परन्तु तृप्ति नहीं होने से विषयों में फँस गए हैं! वीतराग भगवान का

विज्ञान, वह तृप्ति ही लानेवाला है।

लोग कहते हैं, 'मैं खाता हूँ।' अरे, भूख लगी है उसे बुझा रहा है न? यह पानी की प्यास अच्छी परन्तु लक्ष्मी की प्यास भयंकर कहलाती है! उसकी तृष्णा किसी भी पानी से नहीं बुझती।

यह इच्छा पूरी होती ही नहीं। संतोष होता है, परन्तु तृप्ति नहीं होती। संतोष साइकोलोजिकल परिणाम है, वह टिकता नहीं है।

साधनों में तृप्ति माननी, वह मनोविज्ञान है और साध्य में तृप्ति माननी, वह आत्मविज्ञान है।

❖❖❖❖❖

(३०)
संयम परिणाम

यथार्थ संयम किसे कहते हैं?

बाह्य संयम को भगवान ने संयम नहीं कहा है। वह तो उदयाधीन है। उदयाधीन संयम को 'मैंने संयम रखा' कहें, वह भ्रांति है।

प्रश्नकर्ता : सच्चे अर्थ में संयम परिणाम किसे कहा जाता है?

दादाश्री : पर-परिणति उत्पन्न ही नहीं हो, वह संपूर्ण संयम कहा जाता है। और वृत्तियाँ अपने घर की तरफ वापिस मुड़ने लगीं। अंशरूप में शुरूआत हुई उसे संयम कहते है। संयम परिणाम समकित के बाद होता है।

विषयों के संयम को संयम नहीं कहते। क्रोध-मान-माया-लोभ के संयम को संयम परिणाम कहते हैं। बाकी यह त्याग है, वह तो वस्तुओं का त्याग है, लक्ष्मी का त्याग है, विषयों का त्याग है, उसमें तो ना नहीं कह सकते। परन्तु उसे त्याग कह सकते हैं, भगवान की भाषा का संयम नहीं कह सकते। देह के संयम को संयम नहीं कह सकते, वह उदयाधीन है। पूर्वप्रारब्धाधीन है। जब कि संयमित मन पुरुषार्थ के अधीन है।

भयंकर विषम परिस्थितियों में संयम रहना चाहिए।

एक बहन आए थी। उन्होंने मुझे कहा, 'दादा, रात को मेरे पति ने मुझे एक तमाचा मारा।' तब मैंने उसे पूछा, 'तूने फिर क्या कहा?' तब वह बोली, 'मैंने दूसरा गाल आगे किया।' मैंने पूछा, 'उस समय तेरे भीतर परिणाम कैसे थे?' तब वे बोलीं, 'बिल्कुल शांत, कोई खराब विचार नहीं आया था। आपका ज्ञान हाज़िर हो गया।'

इसे संयम कहते हैं। जगत् रोकर मार खाता है और ज्ञानी हँसकर मार खाते हैं। भोगना तो पड़ेगा ही न?

संयम से ही आत्मशक्ति प्रकट

ऐसे एकबार संयम पालन करे तो उसे दो बार संयम पालन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। फिर दो से चार और चार से सोलह गुना शक्ति उत्पन्न होती है, मल्टीप्लिकेशन का नियम है। इसमें आत्मा अनंत शक्तिवाला है। संयम में आ गए कि शक्तियाँ प्रकट होती जाती हैं।

स्वानुभव पद अर्थात् क्या? आत्मा प्राप्त करने के बाद जितना संयम में रहा उतना स्वानुभव पद कहलाता है। जिसे एक अंश हुआ, उसे फिर सर्वांश हो जाता है।

संयमधारी को तो भगवान ने भी सराहा है। संयमधारी के तो दर्शन करने चाहिए, जिन्होंने यमराज को वश में किया है!

प्रश्नकर्ता : यमराज को वश में किया, वह किस तरह?

दादाश्री : यमराज वश में हो गए कब कहलाते हैं कि जिसे मृत्यु का भय नहीं रहे।

संयम के स्कोप का लाभ उठाओ!

किसीने कहा हो कि, 'चंदूभाई ने यह सब बिगाड़ दिया।' उस घड़ी भीतर अपने परिणाम बदल जाते हैं। परन्तु 'यह गलत हो रहा है', ऐसा 'जानना' उसे अर्धसंयम कहा है और ऐसे परिणाम भीतर खड़े ही नहीं हों उसे पूरा संयम कहा है।

प्रश्नकर्ता : मुझे कोई टोके, डाँटे या गाली दे, तब मैं उस तरफ की खिड़की ही बंद कर देता हूँ, हम सुनें ही नहीं। भले ही वह बोलता रहे।

दादाश्री : यह तो ऐसा कहा जाएगा कि संयम का 'स्कोप' मिला, उसका आपने लाभ नहीं उठाया। आप किसीसे कहो कि, 'आप मुझे डाँटो

और मैं संयम रखूँ' वैसा होगा ही नहीं न! यह तो कुदरती कभी प्राप्त हो जाए तब हमें कान बंद करके 'हट, वह तो बोलता है, उसे तो ऐसी बुरी आदत है', यदि ऐसा करे तो क्या लाभ? दुर्गंध आती हो और नाक दबाकर रखें, उसमें आपने क्या संयम किया?

हमने तो पहले इनाम निकाला था कि जिस किसीको रुपये की तंगी हो वह हमें एक धौल मारकर पाँच सौ रुपये ले जाए। आपको मुफ्त में मारने को तैयार है? अरे, इनाम घोषित किया तो भी मुझे कोई मारने नहीं आया। लोग कहने लगे कि, 'आपको मारकर हम कहाँ जाएँगे? ऐसा है। इसलिए कुदरती स्कोप मिले, उसे तो चूकना मत।

हमारी शक्ति संयम के गुणाकार से बढ़ी है। ज्ञान होने के बाद तो हमें अनंत संयम परिणाम रहते हैं। इसलिए जो मिला वह सभी फायदेमंद, बाहर के उपसर्ग में तो आत्मा का संयम ज़बरदस्त रहता है।

संयम ही पुरुषार्थ

सच्चा संयम आत्मा की हाज़िरी में उत्पन्न होता है। खुद के स्वरूप की प्रतीति बैठे, तब से ही सच्चे संयम में आता है। उसके बाद ही खुद के दोष दिखते हैं और उनके प्रतिक्रमण करे वह सच्चा संयम है। संयम को ही पुरुषार्थ कहा है। पुरुष होने के बाद, आत्मा जानने के बाद पुरुषार्थ हो सकता है। संयम पुरुष के लिए ही लागू होता है, वर्ना प्रकृति के लिए लागू नहीं होता। प्रकृति उदयकर्म के अधीन है, वहाँ संयम कैसा? आत्मा प्रकट हुआ उसके बाद ही कहा जाता है कि वास्तविक संयम स्वरूप में आ गया। बाकी इस लौकिक संयम में तो व्यवहार की प्रेक्टिस करने जैसा है!

सिर्फ संयमी ही जागृत होते हैं। संयमी पुरुष तो एक नुकसान में से दूसरा नुकसान उत्पन्न नहीं होने देते। कोई जा रहा हो और उससे अपने ऊपर अंगारे गिर गए और अंदर *कढ़ापा-अजंपा* (कुढ़न, क्लेश - बेचैनी, अशांति, घबराहट) हुआ, वह एक नुकसान तो हुआ था और दूसरा भयंकर नुकसान उत्पन्न हुआ। ऐसे दिवालिया ही निकालते हैं। एक नुकसान में

से अनंत नुकसान उत्पन्न करते हैं। जब कि ज्ञान उसे झाड़ देता है और उससे जो संयम सुख उत्पन्न होता है, उसका तो वर्णन नहीं हो सके वैसा होता है।

व्यवहार कब से अच्छा माना जाता है? जब से संयमित हो तब से, असंयमी का व्यवहार पूर्ण नहीं माना जाता। 'ज्ञानी पुरुष' के तो वाणी, वर्तन, सबकुछ संयमित होता है, मनोहर होता है।

लोभ के सामने संयम, किस तरह?

प्रश्नकर्ता : मान का संयम, लोभ का संयम, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है, कुछ लोगों में मान का संयम कुछ अंशों तक आ गया होता है। कोई गालियाँ दे, अपमान करे, तो वह अर्धसंयम पालन कर सकता है। जब कि लोभ के विषय में बेसुध हो जाता है। वहाँ पर असंयम अधिक उत्पन्न होता है। फिर देर से जागृति आए, वह वन फोर्थ संयम होता है। वणिक की लोभ की ग्रंथि बड़ी होती है और क्षत्रिय की मान की ग्रंथि बड़ी होती है। जिसकी जो ग्रंथि बड़ी हो, उसमें संयम को नहीं सँभाल पाता। वहाँ पुरुषार्थ धर्म में और पराक्रम में आना पड़ेगा।

परिषह या उपसर्ग आएँ फिर भी भीतर असर नहीं होने दे और असर हो तो उसे 'जाने' वह संयम हैं। वेदन को 'जाने' वह संयम है। भगवान महावीर जानते ही थे, वेदन नहीं करते थे 'ड्रामेटिकली' ही वेदन करते थे।

❖❖❖❖❖

(३१)
इच्छापूर्ति का नियम

कुदरत, कितनी नियमबद्ध

जगत् में वस्तुएँ संख्य हैं और मनुष्यों की इच्छाएँ असंख्य हैं, अनंत हैं। दुनिया के लोगों की इच्छाओं की सूची बनाएँ और जगत् की तमाम लक्ष्मी की सूची बनाएँ तो मेल खाएगा?

प्रश्नकर्ता : इच्छाएँ पूरी हों उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन का स्वभाव कैसा है कि नया ढूंढता है। घर में नया सोफा ढूंढता है, नया फ्लेट ढूंढता है। तबियत अच्छी हो तो फ्लेट की बात करता है और तबियत बिगड़ी तब कहेगा, 'अब फ्लेट नहीं चाहिए।' तबियत सुधरे ऐसी मानताएँ मानता है! मन तो बंदर की तरह छलाँगें लगाता है और वह भी बिना पूँछ के! कुदरत क्या कहती है कि, ''मैं तुझे जो देता हूँ उसे करेक्ट मान, 'व्यवस्थित' है ऐसा मान।'' तेरी सभी इच्छाएँ मैं धीरे-धीरे, मेरी सुविधानुसार पूरी कर दूँगी। तेरे मरने से पहले तेरी इच्छाएँ पूरी कर दूँगी।

इच्छा मर जाए तब वस्तुएँ मिलती हैं। एक व्यक्ति पचपन वर्ष का था, तब तक विवाह का विचार करता था और लोगों से कहता रहता था कि कोई कन्या ढूंढ दो। और फिर अट्ठावन वर्ष का हुआ तो कोई कहने आया कि, 'हमारी एक बेटी है, यदि तुझे विवाह करना हो तो।' तब उसने कहा, 'नहीं, अब मेरी इच्छा मर गई है।'

माँजी सत्तर वर्ष के हो जाएँ, तब हीरे के टॉप्स लाएँ, उसका क्या अर्थ है?

परन्तु ये कुदरत के नियम अलग प्रकार के हैं। ऊर्ध्वगति में ले जाना हो उसके नियम अलग और अधोगति में घसीटकर ले जाने के नियम अलग। इच्छाएँ तो सभी की पूरी होंगी ही।

कुदरत का नियम ऐसा है कि इच्छा हो और वस्तु मिले तब वे फिसल रहे हैं, अधोगति में जा रहे हैं। और इच्छा हो तो वस्तु का ठिकाना नहीं पड़ता और ठिकाना पड़े तब वस्तु की इच्छा नहीं रहती, वह ऊर्ध्वगति में ले जानेवाला कहलाता है। अच्छा है वह।

प्रश्नकर्ता : बहुत लोगों को तो इच्छा होने के साथ ही वस्तु हाज़िर हो जाती है, वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : इच्छा तुरन्त पूरी हो जाए तो फिर वह ऐसे रंग में चढ़ता है, ऐसे रंग में चढ़ता है कि फिर मार खा-खाकर मर जाता है और अधोगति में जाता है। क्योंकि मन का स्वभाव कैसा है कि एकबार कूदने की जगह मिली तो वह उछलकूद करके रख देता है!

यह कलियुग है, इसलिए इच्छा हो और उसकी प्राप्ति हो जाए तो फिर अहंकार बढ़ जाता है और गाड़ी चलती है उल्टी। इसलिए इस काल में तो ठोकरें लगें, वही अच्छा कहलाता है। पुण्य के आधार पर इच्छा पूरी हुई तो लोगों ने देखो तूफ़ान मचाए, इच्छा के अनुसार हुआ तब तो यह दशा हुई! पुण्य था वह खर्च हो गया और यह फँसाव खड़ा हुआ। पागल अहंकार है इसलिए ही न? इसलिए ठोकरें खा-खाकर प्राप्ति हो उसमें ही फायदा है इस काल में तो।

कुदरत ने कितना सुंदर प्रबंध किया है! जिसे ऊर्ध्वगति में जाना है उसके लिए सबकुछ ही इच्छा के अनुसार सब पूर्ति कर देती है, परन्तु उस इच्छा के खत्म हो जाने के बाद। और अधोगति में जाना है उसे तुरन्त ही चीज़ें दे देती है। इसलिए कुदरत की इस बात को समझो।

इच्छा, वहाँ अंतराय

प्रश्नकर्ता : इच्छा का उद्भवस्थान क्या है?

दादाश्री : इच्छा संयोगों के दबाव से उत्पन्न होती है। अभी यह सभी को ओढ़ने की इच्छा नहीं होती, परन्तु ठंड एकदम पड़े तो सभी को उसकी इच्छा होगी। वह संयोगों के दबाव के कारण है।

प्रश्नकर्ता : इच्छा परतंत्रता है, इसलिए इच्छा क्या रखनी किसी चीज़ की?

दादाश्री : इच्छा नहीं रखनी हो तो भी छूटे वैसा नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : परब्रह्म में तो इच्छा और मन कुछ भी नहीं रहता।

दादाश्री : परब्रह्म में इच्छा होती ही नहीं। इच्छा वह परवशता है। जगत् में निरीच्छक पुरुष हो तो वह सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही होते हैं। निरीच्छक अर्थात् जिन्हें किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं होती। पूरे जगत् का सोना दे तो उन्हें वह काम का नहीं होता, विषयों का जिन्हें विचार ही नहीं आता, मान-अपमान की जिन्हें कुछ पड़ी नहीं होती, कीर्ति के, शिष्यों के, मंदिर बनाने के भिखारी नहीं होते, इस देह के भी भिखारी नहीं होते। देह का स्वामित्व छूट चुका होता है। ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' हमें निरीच्छक बनाते हैं।

स्वयं के उपयोग में कब रहा जा सकता है? जब सभी इच्छाएँ मंद हो जाएँ तब। कभी न कभी तो मंद करनी ही पड़ेंगी न? किंचित् मात्र भी इच्छा, वह भीख है। हम संपूर्ण निरीच्छक हो चुके हैं, तभी यह ज्ञानीपद प्राप्त हुआ है!

इच्छाएँ पूरी हों, तब अंतराय नहीं रहते। इच्छा करें तो उससे अंतराय होता है।

जिसे जो इच्छा हो वह उसे दिखती नहीं है। क्योंकि इच्छा का आवरण घेर लेता है न?

प्रश्नकर्ता : तीव्र इच्छा पूरी करने का उपाय क्या है?

दादाश्री : जिसकी तीव्र इच्छा हुई वह चीज़ मिले बगैर रहेगी ही

नहीं। दो वर्षों, पाँच वर्षों में भी मिलेगी। तीव्र इच्छा स्वयं कहती है कि वह पूरी होने ही वाली है। मोक्ष जानेवाले की सभी इच्छाएँ पूरी हों, तभी मोक्ष में जाया जा सकता है।

इच्छा, उसके प्रत्याख्यान

आप सभी को अंदर जाँच करनी है कि कौन-कौन सी इच्छाएँ रह गई हैं? पहले पूछना कि, 'सिनेमा देखने की इच्छा है?' तो 'नहीं' कहेगा। फिर दूसरा पूछना, तीसरा पूछना, अंदर से जवाब मिलेगा। सुबह उठते ही पाँच बार सच्चे दिल से बोलना, 'इस जगत् की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए।' इतना बोलकर चलना चाहिए, उसके उपरांत भी इच्छा हो तो तुरन्त ही प्रत्याख्यान कर लेना। इच्छा नहीं, फिर भी इच्छा हो जाए, प्लस हो जाए तो इस तरह माइनस कर देना चाहिए। फिर जोखिमदारी नहीं रहेगी।

प्रश्नकर्ता : अंदर आशा-निराशा क्यों आती है?

दादाश्री : आशा-निराशा, इच्छाएँ देह का धर्म हैं। वह उसका धर्म पालन करती ही रहती है। आत्मा को कोई इच्छा है? आत्मा को इच्छा हो तब तो आत्मा भिखारी हो गया कहलाएगा। आत्मा प्राप्त होने के बाद जो-जो इच्छाएँ होती हुई लगती हैं, वे सभी डिस्चार्ज इच्छाएँ हैं, वे निकाली इच्छाएँ हैं। 'चार्ज' इच्छा वह बंधन है।

प्रश्नकर्ता : इच्छा चार्ज हुई कब कहलाती है?

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ' वह पक्का है आपको?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो फिर कर्त्ता के बिना किस तरह कर्म बंधेंगे? 'मैं चंदूलाल हूँ' वह अज्ञान है और अज्ञान से कर्त्तापद है। अज्ञान गया कि कर्त्तापद खत्म हुआ। फिर 'चार्ज' नहीं होता। सिर्फ डिस्चार्ज ही रहता है।

❖❖❖❖❖

(३२)
टी.वी. की आदतें

...फिर महत्व किसका?

दादाश्री : रविवार को आपके नज़दीक ही सत्संग होता है तो क्यों नहीं आते हो?

प्रश्नकर्ता : रविवार को टी.वी. देखना होता है न दादा!

दादाश्री : टी.वी. का और आपका क्या संबंध? ये चश्मे लग गए हैं तो भी टी.वी. देखते हो? हमारा देश ऐसा है कि टी.वी. नहीं देखना पड़े, नाटक नहीं देखना पड़े, इधर सबकुछ यहीं के यहीं रास्ते पर ही होता रहता है न?

प्रश्नकर्ता : उस रास्ते पर पहुँचूँगा तब बंद होगा न?

दादाश्री : कृष्ण भगवान गीता में यही कह गए हैं कि मनुष्य अनर्थ टाइम बिगाड़ रहे हैं। खाने के लिए, नौकरी पर जाते हैं, वह तो कोई अनर्थपूर्वक नहीं कहलाता। जब तक आत्मिक दृष्टि नहीं मिलती, तब तक यह दृष्टि छूटती नहीं है न?

लोग शरीर पर बदबूवाला कीचड़ कब चुपड़ते हैं? उन्हें जलन होती है तब। वैसे ही यह टी.वी., सिनेमा, सबकुछ बदबूदार कीचड़ कहलाता है। उसमें से कोई सार नहीं निकलता। हमें टी.वी. से कोई परेशानी नहीं है। हर एक चीज़ देखने की छूट होती है, परन्तु एक ओर पाँच बजकर दस मिनिट पर टी.वी. (प्रोग्राम) हो और एक ओर पाँच बजकर दस मिनिट पर सत्संग हो, तो क्या पसंद आएगा? ग्यारह बजे परीक्षा हो और ग्यारह

बजे भोजन करना हो तो क्या करोगे? वैसी समझ होनी चाहिए न!

टाइम पास या जीवन व्यर्थ गँवाया?

इस हिन्दुस्तान देश में तो आठ आने खो गए हों, उसके लिए आठ घंटे तक ढूंढते रहें, वैसे भी लोग हैं! इसलिए हरकोई अपनी समझ के अनुसार समय का उपयोग करता है। यह मनुष्य देह बहुत मुश्किल से मिला है। बहुत क़ीमती है यह देह, परन्तु जैसी समझ होती है, वैसे उसका उपयोग करते हैं। समझ के अनुसार उपयोग करते हैं न? यह जो करते हो उसे हम 'गलत है' ऐसा नहीं कहते। गलत तो इस दुनिया में कुछ होता ही नहीं। परन्तु उसमें टाइम बिगड़ता है न? वेस्ट ऑफ टाइम है। समझ के अभाव के कारण किसी समय मनुष्यत्व प्राप्त हुआ हो, वह भी छिन जाता है और चार पैर, छह पैर, आठ पैरोंवाला हो जाता है। भटकता रहता है और सारा समय मिट्टी में मिल जाता है, व्यर्थ चला जाता है।

❖❖❖❖❖

(३३)
लोभ की अटकण

परसत्ता, वहाँ लोभ क्या?

प्रश्नकर्ता : मुझे लोभ की गाँठ है, तो क्या करूँ?

दादाश्री : आप बोलना कि, 'व्यवस्थित' में जो हो वह भले हो और न हो तो भले हो।

लोभ से प्राप्ति या नुकसान?

प्रश्नकर्ता : लोभ की गाँठ कब फूटती है?

दादाश्री : निन्यानवे इकट्ठे हो जाएँ तब। करोड़पति सेठ हों, फिर भी उन्हें लोभ नहीं हो ऐसा होता है कभी! लोभी एकांगी होता है। उसे मान की बहुत उठापटक नहीं होती। मानी को तो अपमान करे तो परेशान हो जाए। और लोभी तो कहता है, 'आज हमें तो दो सौ मिले, भले ही वह गालियाँ देकर गया!' मान और क्रोध हो तब तक लोभी नहीं कहलाता। यह लोभ की तो बुरी आदत पड़ चुकी होती है। लोभी को शुरूआत में पाँच-दस वर्ष तक धन बढ़ा हुआ लगता है, परन्तु फिर नुकसान ही होता है। और जिनका गठन प्रामाण्य सहित है उसे तो कोई कमी नहीं पड़ती। परन्तु जब कुदरत पलटे तब तो सभी का टूट जाता है। परन्तु इतना ज़रूर है कि जो प्रामाण्य सहित है उसे ज़रा भय कम लगता है।

तृप्ति, आत्मज्ञान के बिना नहीं है

लोभ का प्रतिपक्षी शब्द संतोष है। पूर्वजन्म में कुछ किया हुआ हो, उससे उसे संतोष रहता है। इस दुनिया का ज्ञान भी थोड़ा-बहुत समझ गया

हो उसे संतोष रहता है और आत्मज्ञान हो वहाँ तो तृप्ति ही रहती है। जिसने अनंत जन्मों से भोगा हुआ हो उसे संतोष रहता है, उसे कोई चीज़ नहीं चाहिए। और जिसने नहीं भोगा हुआ होता उसके अंदर किसी-किसी तरह का भाव आ जाता है, 'यह भोग लूँ, वह भोग लूँ' ऐसा रहता है। राजसी सुख पूर्वजन्म में भोगा हुआ हो तो अभी आपको राज्य दें तो भी आपको पसंद नहीं आएगा, ऊब होगी!

प्रश्नकर्ता : कुछ लोगों को तो लोकसंज्ञा के कारण सबकुछ चाहिए। किसीकी गाड़ी देखे तो उसे खुद को भी चाहिए।

दादाश्री : वह लोकसंज्ञा कब उत्पन्न होती है? खुद भीतर तृप्त नहीं हो तब। मुझे अभी तक कोई सुख देनेवाला नहीं मिला! बचपन से ही मुझे रेडियो लाने तक की ज़रूरत नहीं पड़ी। ये सब जीते-जागते रेडियो ही फिरते रहते हैं न!

ोभी - हरएक बात का लोभ

प्रश्नकर्ता : लोभी थोड़ा कंजूस होता है न?

दादाश्री : नहीं, कंजूस तो फिर अलग होते हैं। वह तो पैसे नहीं हों, इसलिए कंजूस बनता है और लोभी के घर पर तो पच्चीस हज़ार रुपये पड़े हों, फिर भी किस तरह घी सस्ता मिलेगा वैसा चित्त में घूमता रहता है, जहाँ-तहाँ लोभ में ही चित्त होता है। मार्केट में जाए तो भी किस जगह पर सस्ता ढेर मिल रहा है, वही ढूंढता रहता है!

लोभी किसे कहते हैं कि जो प्रत्येक लोभ के बारे में जागृत हो। खुद के पास वस्तु की कमी है और पड़ोस में से ले आए उसे लोभी नहीं कहते। परन्तु खुद के पास सबकुछ ही है फिर भी ढूंढे, वह लोभी।

❖❖❖❖❖

(३४)
लगाम छोड़ दो

तो कर्त्तापद का अध्यास छूटे

अपने यहाँ अक्रम में सामायिक, ध्यान या कोई क्रिया नहीं होती है। वह तो बाहर व्यवहार में होता है। व्यवहारिक ध्यान या सामायिक अर्थात् क्या कि बाहर से खुद का बाउन्ड्री नक्की हो और उसके अंदर बाहर से किसीको घुसने नहीं देना, जो आए उसे निकालते रहना और घेरे में किसीको घुसने नहीं देना। वे भगाएँ तो भी घुस जाते हैं उसमें। और अपने यहाँ तो जो घुस जाते हैं, जो अंदर होता है, उसे देखते ही रहना है। अपना सामायिक कैसा है कि जो भी विचार आएँ वे खराब आएँ या अच्छे आएँ, सभी को 'देखना' है, सिर्फ देखते ही रहना है। जैसे सिनेमा में देखते हैं कि अंदर लोग मारामारी कर रहे हैं, झगड़ा कर रहे हैं, परन्तु हम उसमें इमोशनल नहीं होते हैं न? जैसा सिनेमा में है, वैसा। अंदर का पूरा सिनेमा देखना, वह सामायिक है। अड़तालीस मिनिट किया जाए तो वह बहुत काम हो जाए।

यह लगाम छोड़ देने का प्रयोग हफ्ते में एक दिन आप करके तो देखो! रविवार हो उस दिन सुबह से ही लगाम छोड़ दो और कहना कि, 'दादा, यह लगाम आपको सौंपी। ये पाँचों ही इन्द्रियोंरूपी घोड़ों की लगाम हमें सौंप दो और आपको तो सिर्फ देखते ही रहना है कि किस तरह चल रहा है वह।' यह गाड़ी को खड्डे में नहीं पड़ने देगा और कुछ भी नहीं होना देगा। यह तो आपको लगाम पकड़ना नहीं आता और ढलान आए तब लगाम ढीली रख देते हो और चढ़ाई आए तब लगाम खींचते रहते हो, तो घोड़े भी बेचारे हाँफ-हाँफकर थक गए हैं। और उनके मुँह लहूलुहान

हो गए हैं! इसलिए ही तो श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा कि तू अंदर बैठ और रथ चलाने का काम मुझे सौंप दे। श्री कृष्ण ने लगाम पकड़ी तब कहीं जाकर अर्जुन की गाड़ी सीधी चली! हम आपको हफ्ते में एक दिन लगाम छोड़ देने को कहते हैं। शायद कभी भूलचूक हो जाए तो 'दादा, यह फिर से लगाम पकड़ ली, उसके लिए माफ़ी माँगता हूँ और अब नहीं पकडूँगा', ऐसा कहकर फिर लगाम फिर से छोड़ देना। शुरूआत में भूल होगी, प्रेक्टिस होने में ज़रा देर लगेगी, फिर दूसरी, तीसरी बार करेक्टनेस आ जाएगी। परन्तु उससे आगे बढ़ने के लिए, उससे आगे का प्रोग्राम देखना हो तो 'चंदूभाई क्या बोलते हैं, उसे देखते रहना है कि यह करेक्ट है या नहीं?'

'ज्ञानी' का कैसा प्रयोग!

हम 'ज्ञानियों' का प्रयोग कैसा होता है कि हरएक क्रिया 'हम' देखते हैं। इसलिए इस वाणी को मैं रिकॉर्ड कहता हूँ न! यह रिकॉर्ड बोल रही है उसे देखता रहता हूँ कि क्या रिकॉर्ड बज रही है और क्या नहीं! और जगत् तन्मयाकार हो जाता है। संपूर्ण निर्तन्मयाकार रहे उसे केवलज्ञान कहा है।

जगत् देखता है वैसे ये अज्ञानी भी देखते हैं परन्तु उनका देखा हुआ काम में नहीं आएगा। क्योंकि उनका बेसमेन्ट (आधार) अहंकार है। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह उसका बेसमेन्ट है। और 'अपना' बेसमेन्ट 'मैं शुद्धात्मा हूँ' है। इसलिए अपना देखा हुआ केवलज्ञान के अंश में जाता है। जितने अंश तक हमने देखा, उतने अंश तक हमने अपने आप को अलग देखा, वाणी को अलग देखा, ये चंदूभाई क्या कर रहे हैं वह देखा, उतने अंश तक केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। हमें कोई गालियाँ दे तो वह भी हमारे ज्ञान में ही होता है, यह रिकॉर्ड क्या बोल रही है, वह मेरे ज्ञान में ही होता है। रिकॉर्ड गलत बोली हो तो मेरे ज्ञान में ही होता है। हमें बिल्कुल जागृति रहती है और संपूर्ण जागृति - वह केवलज्ञान है। व्यवहार में लोगों को व्यवहारिक जागृति रहती है, वह तो अहंकार के मारे रहती है। परन्तु यह तो शुद्धात्मा होने के बाद की जागृति कहलाती है। यह अंश केवलज्ञान की

जागृति है और तब से ही कल्याणकारी है।

अंदर मशीनरी को ढीली नहीं छोड़ना है। हमें उस पर देखरेख रखनी है कि कहाँ-कहाँ घिस रहा है, क्या हुआ है, किसके साथ वाणी कठोर निकली। बोले, उसमें हर्ज नहीं है, हमें 'देखते' रहना है कि ओहोहो! चंदूभाई कठोरता से बोले।

प्रश्नकर्ता : परन्तु जब तक नहीं बोला जाए तब तक अच्छा है न?

दादाश्री : 'बोलना, नहीं बोलना' वह अपने हाथ में नहीं रहा अब। आप तो बड़े जनरल मेनेजर हो, इसलिए आपको समझाऊँ तो आप तुरन्त समझ जाते हो।

'चार्ज-डिस्चार्ज' का साइन्स

यह डिस्चार्ज किसे कहते हैं? एक मोटर है, वह चाबी लगाने से चलती है, वह चाबी लगाते समय उसे चार्ज कहा जाता है। फिर उसे डिस्चार्ज की तरह रखें, तब वह फिर अपनी सत्ता में रहेगी क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : फिर वह अपनी सत्ता में नहीं रहती। जितनी चाबी घुमाई होगी उतनी ही चलेगी। आधी घुमाई होगी तो आधी चलेगी और एक चौथाई भाग घुमाई होगी तो उतनी ही चलेगी। और पूरी चाबी घुमाई होगी तो पूरी जाएगी। उसे हम रोक नहीं सकते। इसे डिस्चार्ज कहा जाता है। वैसे ही यह सारी वाणी डिस्चार्ज हो रही है। तीन बेटरियाँ डिस्चार्ज हो रही हैं। वाणी की, वर्तन की और मन की। आपकी इच्छा नहीं हो तो भी विचार निरंतर डिस्चार्ज होते ही रहते हैं। पसंद हों या पसंद नहीं हों, परन्तु विचार तो निरंतर डिस्चार्ज होते ही रहेंगे। एक तरफ ये तीन बेटरियाँ डिस्चार्ज होती हैं और नई तीन बेटरियाँ चार्ज होती ही रहती हैं, नया मन तैयार होता रहता है, नई वाणी रिकॉर्ड होती ही रहती है। जब तक खुद को स्वरूप का ज्ञान नहीं है, कोई बेसमेन्ट नहीं है, तब तक फिर नई बेटरियाँ चार्ज होती रहती हैं। और फिर वे डिस्चार्ज होती रहती हैं। अर्थात्

ये सब बेटरियाँ ही हैं। ये तीनों बेटरियाँ खत्म होती जाती हैं और नई बेटरियाँ बनती जाती हैं। 'मैं चंदूलाल हूँ', वैसा आरोपित भाव है, तब तक अज्ञान के कारण बेटरियाँ बनती रहती हैं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भान है इसलिए हमें नई बेटरियाँ चार्ज नहीं होतीं। पुरानी तो डिस्चार्ज होती ही रहेंगी हर एक की, अज्ञानी की, ज्ञानी की, जानवरों की – सभी की डिस्चार्ज होती ही रहेंगी। उस डिस्चार्ज में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती। डिस्चार्ज स्वभाव अर्थात् अपने आप डिस्चार्ज होता ही रहता है सारा। आप कहो, नक्की करो कि हाथ नहीं हिलाना है परन्तु हाथ हिल जाता है, क्योंकि ये सब मशीनरियाँ डिस्चार्ज हो रही हैं। अब ये लोग डिस्चार्ज को बदलने जाते हैं, वह किस तरह से होगा? शायद चार्ज होते समय चार्ज को बदला जा सकता है। यह डिस्चार्ज हमारी इच्छा के अनुसार होता है, तब लोगों का अहंकार चढ़ जाता है कि मेरी इच्छानुसार ही सबकुछ होता है और फिर खुद की इच्छा के विरुद्ध हो तब फिर कहता है कि 'भगवान ने मुझे ऐसा किया, मेरे कर्म खराब हैं।' सबकुछ उल्टा-सीधा बोलता रहता है। इच्छा के अनुसार हो जाए वह भी डिस्चार्ज है, इच्छा नहीं हो वह भी डिस्चार्ज है। उसका स्वभाव, वह डिस्चार्ज को बताता है। इसमें दो प्रकार से होता है – एक पसंद हो वैसा और एक पसंद नहीं हो वैसा होता है। इसमें से दुनिया को राग-द्वेष खड़े होते हैं। अच्छा लगे उस पर राग और अच्छा नहीं लगे उस पर द्वेष! इसलिए राग, द्वेष और 'मैं चंदूलाल हूँ' – वह अज्ञान, इतने से ही यह पूरी दुनिया चल रही है। जिसे जैन लोग राग-द्वेष और अज्ञान कहते हैं और वेदांती मल, विक्षेप और अज्ञान कहते हैं।

डिस्चार्ज स्वरूपों को, निर्दोष देखें

बाहर का तो आप देखोगे वह अलग बात है, परन्तु आपके ही अंदर का आप सबकुछ देखने लगोगे, उस समय आप केवलज्ञान सत्ता में होंगे। परन्तु अंश केवलज्ञान होगा, सर्वांश नहीं। अंदर खराब विचार आएँ उन्हें देखना है, अच्छे विचार आएँ उन्हें देखना है। अच्छे के ऊपर राग नहीं और खराब के ऊपर द्वेष नहीं। अच्छा-बुरा देखने की हमें ज़रूरत नहीं है। क्योंकि मूल सत्ता ही हमारे क़ाबू में नहीं है। इसलिए ज्ञानी क्या देखते हैं? पूरे जगत् को निर्दोष देखते हैं। क्योंकि यह सबकुछ डिस्चार्ज में है, उसमें उन बेचारों का क्या दोष? आपको कोई गालियाँ दे वह डिस्चार्ज, बॉस आपको परेशान करे तो भी डिस्चार्ज ही है। बॉस तो निमित्त है। दुनिया में किसीका दोष नहीं है। जो दोष दिखते हैं वह खुद की ही भूल है और वे ही ब्लंडर्स हैं और उनसे ही यह जगत् खड़ा रहा है। दोष देखने से, उल्टा देखने से ही बैर बंधता है।

ड्रामेटिक में कर्त्तापद नहीं

यथार्थ दर्शन नहीं हुआ और जैसे इस दुनिया के लोग देखते हैं, लौकिक दर्शन से कि, 'ये मेरे साले लगते हैं, ये मेरे मामा लगते हैं, ये मेरे चाचा लगते हैं' इस तरह 'मेरे' बोलने से ही राग होता है और 'यह' स्वरूपज्ञान मिलने के बाद 'मेरा' बोलना है, परन्तु वह 'ड्रामेटिक' होता है। उसमें ड्रामेटिक भाव होता है। बात छोटी और सीधी है, सिर्फ बात को समझना ही है!

ये मन, वाणी और वर्तन जो डिस्चार्ज होते रहते हैं, उन्हें खाली देखते ही रहना है। डिस्चार्ज अपनी सत्ता में नहीं है। वहाँ पर आप यदि दख़ल करने जाओगे तो उससे कुछ भी फायदा नहीं होगा। 'आपको' तो 'चंदूभाई' क्या करते हैं, उसे ही देखते रहना है। भगवान महावीर सिर्फ यही करते थे। जो खुद का *पुद्गल* था, उसमें क्या चल रहा है उसे ही देखते थे। एक *पुद्गल* को ही देखते थे, दूसरा कुछ भी नहीं देखते थे। कैसे सयाने थे वे! जिनकी बात करते ही आनंद होता है!!!

प्रश्नकर्ता : परन्तु संसार में ड्रामेटिक में भी खुद को करना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : ड्रामेटिक में तो करना नहीं पड़ता, सबकुछ होता ही रहता है। और कुछ भी करने जैसा है भी नहीं, अपने आप होता ही रहता है! नींद के समय पर नींद आ जाती है, जागने के समय पर जाग जाता है। सब होता ही रहता है। इसमें 'करना पड़ेगा या करने जैसा है' ऐसा भी नहीं बोल सकते और 'नहीं करना है या करने जैसा नहीं है' ऐसा भी नहीं

बोल सकते क्योंकि कर्त्तापन हम लोगों में है ही नहीं। आत्मा अकर्त्ता है।

संयम, चरम दशा का

प्रश्नकर्ता : परन्तु व्यवहार के जो कर्म करने होते हैं वे कर्म तो आएँगे न?

दादाश्री : वह तो सब चलता ही रहेगा अपने आप। 'हमें' चंदूभाई से कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई, ऑफिस का टाइम हो गया। क्यों नहीं जाते हो?' बस, इतनी ही चेतावनी देनी है। वह होता ही रहेगा। डिस्चार्ज अर्थात् जो होता ही रहता है। किसीके साथ उल्टा बोल लिया जाए तो आपको चंदूभाई से कहने में हर्ज नहीं है कि सामनेवाले को दु:ख हो वैसा नहीं बोलो तो अच्छा। फिर भी उल्टा बोल लिया जाए तो हमें चंदूभाई से कहना चाहिए, 'आपने अतिक्रमण क्यों किया? बेटे को दु:ख हो ऐसा बोले इसलिए आप प्रतिक्रमण करो।' फिर बेटे के नाम से प्रतिक्रमण करना। बस, इतना ही समझना है।

'क्या हो रहा है' वह देखना चूक जाएँ उसे असंयम कहा है और संयम किसे कहा जाता है कि, 'क्या हो रहा है' उसे देखता ही रहे!

यह अंतिम संयम, यह ज्ञानियों का संयम कहलाता है और इस जगत् के लोग तो देह के संयम को संयम कहते हैं। ये सभी स्थूल बाते हैं और 'ये' तो संयम की अंतिम बातें हैं। 'यह' संयम आ गया, उसका देह तो नियम से ही धीरे-धीरे संयमित होता ही जाता है। इसलिए इस चरम संयम में ही आ जाने जैसा है।

❖❖❖❖❖

(३५)
कर्म की थियरी

व्यवहार में, कर्म क्या? धर्म क्या?

आमने-सामने समाधानपूर्वक हिसाब करना, वह धर्म कहलाता है।

आमने-सामने समाधानपूर्वक हिसाब नहीं करना, वह कर्म कहलाता है।

सब्ज़ी में नमक अधिक डल गया हो, वहाँ पर खा लें, वह धर्म है और 'खारा बनाया (नमक ज़्यादा हो गया), ऐसा क्यों किया' कहें - वह कर्म है।

जगत् ने कर्त्ता थियरी ही जानी

प्रश्नकर्ता : कर्म की थियरी जैनिज़म में नहीं है और गीता में है, तो ऐसा क्यों?

दादाश्री : कर्म की थियरी जैनिज़म में और दूसरे धर्मों ने भी एक्सेप्ट की है। जितने लोग पुनर्जन्म में मानते हैं वे सभी कर्म की थियरी को मानते हैं।

कर्म की थियरी को समझो। आत्मा की कर्त्ता थियरी सब देखते हैं। इन्होंने मेरा अपमान किया, वह कर्त्ता है ऐसी थियरी देखी है, परन्तु ये मेरे कर्म का उदय कर रहे हैं वह थियरी देखी नहीं है। कई लोग बोलते हैं कि, 'मेरे कर्म बाधक हैं', परन्तु वह थियरी उन्होंने नहीं देखी है। 'कर्म क्या हैं' वह यदि समझ गया होता तो सामनेवाले पर आरोप करने को रहता ही नहीं कि, 'इसने मुझे ऐसा क्यों किया!'

कर्म के कारण जीव छटपटाहट अनुभव कर रहे हैं। ऊपर से कहते हैं कि, 'इस भाई ने मुझे ऐसा किया, वैसा किया।' इससे कर्म डबल होते जाते हैं। यदि मूल बात को समझे कि, 'यह किसलिए हुआ? घरवाले परेशान करते हैं वह खुद का ही हिसाब है, भुगते उसकी भूल है' तो छटपटाहट कम हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : संसार का चक्र कर्म की थियरी के अनुसार चलता है न?

दादाश्री : नहीं, उसमें कर्म की थियरी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कर्म क्या हैं? कर्म की थियरी के ऊपर बैठे रहें तब भी समाधान नहीं होता। भगवान को कर्त्ता मानें तो भी फिट नहीं होता। तो कुछ और ही होना चाहिए, जो इन सबको रेग्युलर रखता है। वह क्या है?

दादाश्री : वह तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के आधार पर चलता है। पूरे वर्ल्ड को यही शक्ति चलाती है। ये शब्द एकदम समझ में नहीं आएँगे। बहुत बारीकी से सोचोगे तो समझ में आएगा।

कर्म का कर्त्ता कौन?

प्रश्नकर्ता : कर्म अर्थात् क्या? उसका मूल क्या है? कर्म कैसे बंधते हैं?

दादाश्री : कर्त्ताभाव से कर्म बंधते हैं। 'मैं करता हूँ' वह कर्त्ताभाव है। करता है कोई और ही और आरोप करता है कि 'मैंने किया।' कॉलेज में पास होता है, वह दूसरी शक्ति के आधार पर होता है और कहता है कि मैं पास हुआ। वह आरोपित भाव है, उससे कर्म बंधते हैं। 'मैं चंदूलाल हूँ' वही कर्म है।

प्रश्नकर्ता : तो कर्म कौन करता है? कर्म आत्मा को लगते हैं या *पुद्गल* को?

दादाश्री : यदि तू ज्ञानी है तो तेरे कर्म नहीं है और अज्ञानी है तो तेरे कर्म हैं।

ऐसा है, 'आत्मा कर्म का कर्त्ता है' ऐसा जो मानता है तो वह भूल है। वास्तव में, आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है। आत्मा यदि कर्म का कर्त्ता हो न तो छूटेगा ही नहीं कभी भी। यदि आत्मा कर्म का कर्त्ता होता तो मोक्ष में जा चुके सिद्ध भगवान भी वहाँ पर कर्म बाँधते ही रहते। कोई बाप भी कर्म बाँधनेवाला नहीं है या कोई बाप भी छुड़वानेवाला नहीं है, जो है वह तू ही है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा 'शुद्धात्मा' है, तो फिर कर्म किसे लेपायमान करते है?

दादाश्री : करनेवाले को।

प्रश्नकर्ता : यदि *पुद्गल* करता है तो वह तो यहीं पर रहता है न?

दादाश्री : कर्म *पुद्गल* भी नहीं करता और आत्मा भी नहीं करता। वह तो आत्मा की हाज़िरी से अहंकार खड़ा हो जाता है। वह अहंकार ही कर्म करता है। वह अहंकार ही कहता है, 'यह मैंने किया, मुझे सुख मिला, मुझ पर दुःख पड़ा, मुझे ज्ञान हुआ, मुझे अज्ञान हुआ।' वह सारा अहंकार ही करता रहता है। अहंकार गया इसलिए 'खुद' 'उस' रूप हो गया। लोगों को समझ में आए इसलिए वीतरागों ने कहा है कि आत्मा व्यवहार से कर्त्ता है, निश्चय से अकर्त्ता है। 'बाय रिलेटिव व्यू पोइन्ट' आत्मा कर्म का कर्त्ता है। वह भी फिर, वह दिखनेवाले कर्मों का कर्त्ता नहीं है, भावकर्मों का कर्त्ता है। ये दिखते हैं उन कर्मों को तो कुदरत, 'व्यवस्थित' करती है।

'बाय रियल व्यू पोइन्ट' आत्मा स्वभावकर्म का कर्त्ता है।

खुद की रोंग बिलीफ़ उत्पन्न होती है कि 'मैं चंदूलाल हूँ'! इसलिए इस रोंग बिलीफ़ से कर्म बंधते हैं। *पुद्गल* अकेला कर्म नहीं कर सकता।

आत्मा की हाज़िरी चाहिए। आत्मा की हाज़िरी से जो अहंकार खड़ा होता है, वही काम करता है। यदि इगोइज़म फ्रेक्चर हो गया तो खत्म हो गया। यह अहंकार कर्म बाँधता है और कुदरत छुड़वाती है। टाइमिंग मिलता है, दूसरे एविडेन्सिस मिलते हैं, तब कुदरत वे कर्म छुड़वाती है। वे कर्म जब छूटते हैं, तब इगोइज़म उन्हें भुगतता है और वापिस वह नया कर्म बाँधता है।

वह अहंकार कौन निकाले?

प्रश्नकर्ता : यानी आप ऐसा कहना चाहते हैं कि आत्मा *पुद्‌गल* के द्वारा कर्म बांधता है और *पुद्‌गल* के द्वारा कर्म छोड़ता है?

दादाश्री : नहीं, वैसा नहीं है। आत्मा तो इसमें हाथ डालता ही नहीं है। वास्तव में तो आत्मा मुक्त ही है, स्वतंत्र है। आत्मा के विशेषभाव से ही यह अहंकार खड़ा होता है और वह कर्म बांधता है और वही कर्म भुगतता है। 'आप हो शुद्धात्मा' परन्तु बोलते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ।' जहाँ खुद नहीं है, वहाँ आरोप करना कि 'मैं हूँ', वह अहंकार कहलाता है। पराये के स्थान को खुद का स्थान मानता है, वह इगोइज़म है। यह अहंकार छूटे तो खुद के स्थान में आया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार खुद के प्रयत्न से छूटता है या कुदरती रूप से छूटता है?

दादाश्री : संपूर्ण नहीं छूटता। स्वप्रयत्न से कुछ हद तक छूट सकता है। जैसे कपड़ों में से मैल निकालने के लिए साबुन से धोएँ, तब साबुन उसका मैल छोड़ता जाता है। साबुन का मैल निकालने के लिए टीनोपोल डालो तो टीनोपोल अपना मैल छोड़ता जाता है, परन्तु अंतिम मैल अपने आप नहीं छूट सकता। अंतिम मैल निकालने के लिए 'ज्ञानी पुरुष' चाहिए। तब तक कुदरती रूप से टकरा-टकराकर अहंकार टूटता जाता है।

अज्ञान, वहाँ अविरत कर्मबंधन।

प्रश्नकर्ता : हम तो अभी प्रति क्षण कर्म बाँधते जा रहे हैं न?

दादाश्री : प्रतिक्षण ही नहीं, रात को नींद में भी कर्म बाँधते हो। दिन में तो मानते हो कि मैं कर्म बाँध रहा हूँ, परन्तु रात को भी बाँधते हो। क्योंकि नींद में भी 'मैं चंदूलाल हूँ' वह भूला नहीं जाता।

ज्ञान, वहाँ कर्मबंधन ही नहीं

प्रश्नकर्ता : कर्म नहीं बंधें उसका रास्ता क्या है?

दादाश्री : स्वभाव भाव में आ जाना वह। 'ज्ञानी पुरुष' खुद के स्वरूप का भान करवा दें, फिर कर्म नहीं बंधते। फिर नये कर्म चार्ज नहीं होते, पुराने डिस्चार्ज होते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : शरीर का खाने-पीने का जो धर्म है, उसमें जो कर्म बंध रहे हैं, वे किस तरह छूटेंगे?

दादाश्री : स्वरूपज्ञान के बाद कर्म बंधते ही नहीं। फिर खाओ-पीओ, घूमो, चश्मे लगाओ फिर भी नहीं बंधते।

प्रश्नकर्ता : खाने-पीने में जीवों की हिंसा होती है न?

दादाश्री : जब तक खुद हिंसक है, तब तक हर एक क्रिया में हिंसा रही हुई है। 'मैं चंदूलाल हूँ', वह आरोपित भाव है, वही हिंसक भाव है। और जब स्वयं आत्मा हो गया, तब फिर अहिंसक हुआ, उसके बाद उसे हिंसा का दोष नहीं लगता। यह तो स्वरूप का भान ही नहीं है, इसलिए निरी हिंसा ही है। मात्र दृष्टि बदलनी है।

प्रायश्चित से हल्के कर्म बंधते हैं

प्रश्नकर्ता : हम हृदय से अहिंसक हों फिर भी शरीर के धर्म, फर्ज़ पूरे करते जाएँ तो कर्म नहीं बंधते ऐसा आपका कहना है?

दादाश्री : नहीं, वे तो बंधते हैं। जब तक आपमें आरोपित भाव है कि 'मैं चंदूलाल हूँ' और आपके मन में भाव है कि 'मुझे हिंसा नहीं करनी है।' फिर भी हो जाती है तो उसका फल ज़रूर मिलता है, परन्तु कैसा मिलता है? आपको छोटा पत्थर लगकर कर्म पूरा हो जाता है। और

दूसरे को ऐसा भाव है कि 'हिंसा करनी है' तो उसे इतना बड़ा पत्थर लगेगा। हिंसा दोनों की एक-सी होती है, परन्तु भाव बदलने के कारण कर्मफल में बदलाव हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : शरीर के धर्म पूरे करते हैं तो उसका प्रायश्चित करना पड़ता है?

दादाश्री : हाँ। और जब तक 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा भान नहीं हो, तब तक प्रायश्चित नहीं होगा तो कर्म अधिक चिपकेंगे। प्रायश्चित करने से कर्म की गाँठें हल्की हो जाती हैं। नहीं तो उस पाप का फल बहुत खराब आता है। मनुष्यत्व भी चला जाता है और मनुष्य जन्म मिले तो उसे हर प्रकार की अड़चनें आती हैं। खाने की, पीने की, मान-तान तो कभी दिखते ही नहीं, हमेशा अपमान। इसलिए यह प्रायश्चित या दूसरी सभी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। इसे परोक्ष भक्ति कहा जाता है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक परोक्ष भक्ति करने की ज़रूरत है।

कर्मबंधन, मनुष्यगति में ही

प्रश्नकर्ता : यह यदि रोज़ की क्रियाओं का प्रायश्चित नहीं करें तो लम्बे अंतराल में उसका ढेर हो जाएगा न?

दादाश्री : नहीं, ढेर नहीं होता। कर्म बंध गए इसलिए वे खप जाते हैं। उदाहरण के तौर पर पाशवता के कर्म बंधे हों तो वह पशुयोनि में जाता है और वहाँ से खपाकर आ जाता है। कर्मों का ढेर नहीं होता। एक जन्म की कमाई जानवर के पाँच-सात जन्म लेकर पूरी करके आता है।

प्रश्नकर्ता : जानवर के जन्म में वापिस कर्म बंधते हैं न?

दादाश्री : नहीं, वहाँ कर्म नहीं बंधते। सिर्फ मनुष्य ही कर्म बाँध सकता है। देवी-देवता भी कर्म नहीं बाँधते। दूसरी सभी गतियाँ तो सिर्फ छूटने के लिए ही होती हैं।

प्रश्नकर्ता : ये तिर्यंचगति के जीव हैं - वे हिंसक हैं, उनमें कषाय हैं, फिर भी वे कर्म नहीं बाँधते?

दादाश्री : नहीं, कोई जानवर कर्म नहीं बाँधता, सिवाय मनुष्य के।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य में जो कर्म बाँधे, वे तिर्यंचगति में भोगने पड़ते हैं?

दादाश्री : हाँ, यहाँ किसीका *अणहक्क* का ले लिया हो, *अणहक्क* का भोग लिया हो, तो वे सभी पाशवता के कर्म कहलाते हैं, वे पशुयोनि में जाकर भुगतने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : फिर वापिस मनुष्य में आता है, भोगने के बाद?

दादाश्री : हाँ, मनुष्य में ही आता है। देवगति में जाए, फिर भी भुगतकर वापिस मनुष्य में आता है। सिर्फ मनुष्यगति में से ही सब जगह जाने का अधिकार है। मनुष्यगति में चार्ज और डिस्चार्ज दोनों हो रहे हैं, जब कि दूसरी गतियाँ सिर्फ डिस्चार्ज स्वरूप हैं। यह मनुष्यगति ही टेस्ट एक्ज़ामिनेशन है। यदि फेल हो गए तो तिर्यंच में जाओगे, नर्कगति में जाओगे और पास हुए तो मनुष्य में रहोगे और बहुत अच्छे नंबर लाए तो देवगति में जाओगे। और पाँचवी गति, मोक्ष भी मनुष्य देह से ही होती है।

प्रश्नकर्ता : तिर्यंच में से तिर्यंचगति में या दूसरी गति में जाते हुए बीच में मनुष्य के स्टेशन पर रुकना पड़ता है?

दादाश्री : नहीं, तिर्यंच में से तिर्यंच, ऐसे आठ जन्मों से अधिक नहीं होते। फिर वापिस मनुष्य का स्टेशन आता है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य में जो समझ है वह तिर्यंचगति में भी है, फिर भी वे कर्म क्यों नहीं बाँधते?

दादाश्री : तिर्यंचों की समझ लिमिटेड है और ये मनुष्य अन्‌लिमिटेड समझवाले हैं। तिर्यंचों का माइन्ड भी लिमिटेड होता है, इसलिए वे कर्म नहीं बाँध सकते।

कर्म, कितने ही जन्मों की *सिलक*

प्रश्नकर्ता : अभी जो कर्म हैं वे अनंत जन्मों के हैं?

दादाश्री : हर एक जन्म अनंत जन्मों का साररूप होता है। सभी जन्मों का इकट्ठा नहीं होता। क्योंकि नियम ऐसा है कि परिपाक काल होने पर फल पकना ही चाहिए। नहीं तो कितने सारे कर्म रह जाएँगे!!

हिसाब, किस तरह चुकाया जाए?

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में किसीके साथ बैर बाँधा हो तो वह किसी जन्म में उससे मिलकर चुकाना पड़ता है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। उस तरह बदला नहीं चुकता। बैर बंधे तब अंदर राग-द्वेष होते हैं। पिछले जन्म में बच्चे के साथ बैर बाँधा हो तो हम सोचें कि वह किस जन्म में पूरा होगा? इस तरह वापिस कब मिलेंगे? यह तो इस जन्म में बच्चा बिल्ली बनकर आएगा। उसके लिए आप दूध रखो तो वह आपके मुँह पर नाखून मारकर चली जाएगी! ऐसा है यह सब! इस तरह, आपका बैर चुकता हो जाता है। परिपाक काल के लिए नियम हैं, इसीलिए थोड़े समय में हिसाब पूरा हो जाता है।

यह हम आपसे कहते हैं कि अनंत जन्मों से आपने मोक्ष के लिए कुछ किया? उसका अर्थ यह है कि इस जन्म में आपका अनंत जन्मों का सार क्या है? आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते रहते हैं वही न?

ये जो भुगतने पड़ते हैं, वे ही कर्मफल हैं। दूसरा कुछ नहीं। कर्म को देखा नहीं जा सकता। कर्मफल देखे जा सकते हैं। लोग धौल मारें, सिर दुःखे, पेट दुःखे, लकवा हो जाए, उसे ही कर्म कहते हैं, ऐसा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि इस देह का संग किया, उसकी छटपटाहट है। परन्तु वास्तव में वैसा नहीं है। देह कोई कुसंगी नहीं है। उसकी समझ यदि ऐसे सीधी मुड़े तो मोक्ष में जाने में हेल्प करती है, वह तो समझने में ही भूल है।

'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा मानकर जो-जो किया जाता है, उससे संसार बना रहता है।

प्रश्नकर्ता : कईबार मनुष्य गिर जाता है, जल जाता है, उसमें सामने

तो कोई निमित्त नहीं होता है, तो उसके पीछे कौन-सा कर्म होता होगा?

दादाश्री : सामनेवाले को नुकसान करने का पूर्व भव में भाव किया, उतना ही अपना नुकसान और वैसा भाव नहीं किया हो उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाता।

सभी लोग लुट रहे हों, परन्तु यदि कोई ऐसा पवित्र मनुष्य हो, तो उसे कोई लूट नहीं सकेगा। लूटनेवाले भी लूट नहीं सकेंगे। इतना अधिक सेफसाइडवाला जगत् है यह!

आश्रव, निर्जरा : संवर, बंध

प्रश्नकर्ता : कर्म खपाना, उसे क्या समझें?

दादाश्री : कर्म का मूल क्या है? राग-द्वेष। जैनिज़म ने कहा है कि 'मोक्ष में जाना हो, तब राग, द्वेष और अज्ञान जाएँ तो मोक्ष होगा।' और वेदांतियों ने ऐसा कहा है कि, 'मल, विक्षेप और अज्ञान जाएँ तो मोक्ष होगा।' अज्ञान के बारे में दोनों कॉमन हैं। राग-द्वेष का आधार अज्ञान है। अज्ञान जाए तो सारे ही कर्म खपते जाएँगे। अज्ञान किससे जाता है? ज्ञान से। निजस्वरूप के अज्ञान से ही मोक्ष रुका हुआ है।

कर्म करनेवाला कौन होगा? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा।

दादाश्री : आत्मा क्रियावादी होता होगा? यह बहुत समझने जैसा है। कोई एक कर्म भी नहीं खपा सकता। *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) हो तब कर्म खपता है। यह तो, *आश्रव* (कर्म के उदय की शुरुआत) चल रहा हो वहाँ कर्म किस तरह खपेंगे? कर्म खपाना और *आश्रव* होते रहना वे दोनों विरोधाभास है। कर्म खपाने हों तो पहले *संवर* चाहिए, परन्तु जीवाजीव का भेद जाने बिना कुछ हो सके वैसा नहीं है। अशुभकर्म भोगता है और शुभकर्म बाँधता है, इतना हो सकता है। बाकी कर्म बंधने रुकते नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : *आश्रव* किस तरह होता है?

दादाश्री : मन में खराब विचार आएँ, वह उदयभाव कहलाता है। उस विचार में आत्मा तन्मयाकार हो गया तो उसे *आश्रव* हुआ कहा जाता है। यदि उस अतिक्रमण का तुरन्त ही प्रतिक्रमण हो जाए तो वह मिट जाता है और प्रतिक्रमण नहीं हो तो कर्मबंधन हो जाता है।

एक ही जन्म बेकार जाए तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु यह तो दूसरे सौ जन्मों का बंधन बाँध लेता है, उसका हर्ज है।

प्रश्नकर्ता : *संवर* अर्थात् क्या?

दादाश्री : *संवर* अर्थात् चार्ज होना बंद हो जाए वह। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह भान है, तब तक *आश्रव* और बंध (कर्मबंधन) दोनों चलते रहते हैं और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह ध्यान रहा तब *संवर* रहता है। आपको 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का ध्यान कितने समय तक रहता है?

प्रश्नकर्ता : आपके ज्ञान देने के बाद निरंतर रहता है।

दादाश्री : इसलिए अब आपको बंध नहीं होता। *संवर* रहता है और पहले के *आश्रव* की *निर्जरा* (कर्म का अस्त होना) होती रहती है। अब नया बंध नहीं होता, कर्म *निर्जरा* तो जीव-मात्र को होती ही रहती है। स्वरूप का ज्ञान नहीं हो, फिर भी *निर्जरा* होती है और साथ-साथ बंध भी होता है। और स्वरूपज्ञान के बाद सिर्फ *निर्जरा* ही होती रहती है। दूसरे शब्दों में चार्ज होना बंद हो जाता है, इसलिए सिर्फ डिस्चार्ज ही बाकी रहता है। जैसे भाव से बंध पड़े थे, वैसे भावों से *निर्जरा* होती है। सिर्फ इतना ही है कि आपको *निर्जरा* के समय *संवर* रहता है, *अबंध* (बंधन रहित) परिणाम रहता है और दूसरों को बंध पड़ते हैं।

शुद्ध उपयोगी को एक भी कर्म नहीं बंधता।

प्रश्नकर्ता : एक ही समय में बंध का छेदन हो सकता है?

दादाश्री : हाँ, हो सकता है। शुद्ध उपयोग के कारण हो सकता

है। इस अक्रम विज्ञान के कारण निरंतर शुद्ध उपयोग में रहा जा सके वैसा है।

प्रश्नकर्ता : वास्तविक तपश्चर्या कौन-सी? कर्म की *निर्जरा* भगवान महावीर ने बताई है, वह क्या है?

दादाश्री : जब तक *संवर* नहीं हो, तब तक *सकाम* (मोक्ष हेतु के लिए) *निर्जरा* नहीं होती। *संवर* हो तो सकाम *निर्जरा* होती रहती है। वह तो गायों-भैंसों सभी को अकाम *निर्जरा* होती ही रहती है। *संवर* उत्पन्न हो तो ही सकाम *निर्जरा* होती है।

प्रश्नकर्ता : बंध और अनुबंध क्या हैं वह समझाइए।

दादाश्री : अनुबंध से हमें कर्म उदय में आते हैं। कविराज और आप मिले, वह अनुबंध से मिले। और अब उस घड़ी वापिस बंध होता है। इसलिए जोखिम कहाँ है, वह समझ लेना है।

प्रश्नकर्ता : बंध और अनुबंध किस कारण से होते हैं?

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ, इसका कर्त्ता हूँ', उस कारण से।

प्रश्नकर्ता : उससे बंध होता है या अनुबंध?

दादाश्री : अनुबंध होता है।

प्रश्नकर्ता : तो बंध किस तरह होता है?

दादाश्री : अनुबंध हो तब वही की वही पुरानी परंपरा चलती रहती है। कर्त्तापद रहे तो फिर से बंध होता है। और उसमें यदि बदलाव हो गया और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और कर्त्ता 'व्यवस्थित' है, वह समझ में आ गया तो बंध नहीं होता। अनुबंध है, फिर भी बंध नहीं होता।

शुभाशुभ का थर्मामीटर

प्रश्नकर्ता : शुभ कर्म और अशुभ कर्म पहचानने का थर्मामीटर कौन-सा है?

दादाश्री : शुभ कर्म आए तब हमें मिठास लगती है, शांति लगती है, वातावरण शांत लगता है, और अशुभ कर्म आए तब कड़वाहट उत्पन्न होती है, मन को चैन नहीं पड़ता। अशुभ कर्म तपा देता है और शुभ कर्म हृदय को आनंद देता है।

प्रश्नकर्ता : बहुत बार ऐसा होता है कि हम अशुभ कर्म बाँध रहे होते हैं और उस समय बाहर का उदय है वह शुभ कर्म का होता है!

दादाश्री : हाँ, वैसा हो सकता है। अभी आपको शुभकर्मों का उदय हो, परन्तु भीतर अशुभ कर्म बंध रहे हों!

स्थूल कर्म - सूक्ष्म कर्म

प्रश्नकर्ता : यह कर्म नया है या पुराना है, वह किस तरह दिखता है?

दादाश्री : कर्म किया या नहीं किया, वह तो किसीसे भी नहीं देखा जा सकता। वह तो भगवान कि जिन्हें केवलज्ञान है, वे ही जान सकते हैं। इस जगत् में आपको जो कर्म दिखते हैं, उनमें एक राई जितना भी कर्म नया नहीं है। इन कर्मों के ज्ञाता-दृष्टा रहो तो नया कर्म नहीं बंधेगा और तन्मयाकार रहो तो नये कर्म बंधेंगे, आत्मज्ञानी होने के बाद ही कर्म नहीं बंधते हैं।

इस कलियुग में जो भी उपचार किए जाते हैं वे उपचार, दवाइयाँ गलत हैं। एक मनुष्य दान देता रहता है, धर्म की भक्ति करता रहता है, मंदिर में पैसे देता है, पूरे दिन ऐसा सबकुछ करता रहता है उसे, जगत् के लोग क्या कहते हैं कि, 'यह धर्मनिष्ठ है।' अब उस मनुष्य के अंदर क्या विचार होते हैं कि, 'किस तरह इकट्ठा करूँ और किस तरह भुगत लूँ।' अंदर तो उसे *अणहक्क* का छीन लेने की इच्छा होती है। इस कलियुग में लोगों को *अणहक्क* का छीनने की बहुत इच्छा रहती है। *अणहक्क* का भोग लेने के लिए लोग तैयार होते हैं! अब बाहर तो बड़े-बड़े दान दे रहा होता है, धर्म के ही आचार कर रहा होता है, परन्तु भीतर *अणहक्क* की लक्ष्मी और विषय भोग लेने का विचार कर रहा होता है, इसलिए

भगवान उसका एक पैसा भी जमा नहीं करते। उसका क्या कारण है? कारण यह है कि वे सभी स्थूलकर्म हैं। बाहर जो दिखते हैं, आचार में जो दिखते हैं, वे सभी स्थूलकर्म हैं। और उन स्थूल कर्मों का फल यहीं के यहीं मिल जाता है। लोग इस स्थूलकर्म को ही अगले जन्म के कर्म मानते हैं। परन्तु उसका फल तो यहीं के यहीं मिल जाता है। और सूक्ष्मकर्म, कि जो अंदर बंध रहा है, जिसकी लोगों को खबर ही नहीं, उसका फल अगले जन्म में मिलता है।

आज किसी व्यक्ति ने चोरी की, तो वह चोरी स्थूलकर्म है। उसे इसका फल इसी जन्म में मिल जाता है। जैसे कि उसे अपयश मिलता है, पुलिसवाला मारता है, ये सब फल उसे यहीं के यहीं मिल ही जाएगा। ये दानेश्वरी दान देते हैं, तो लोग उसकी कीर्ति गाते रहते हैं कि 'वाह! बड़े दानेश्वरी सेठ हैं!' और सेठ तो अंदर 'मुर्ग़े' मार रहा होता है! अंदर अर्थात् सूक्ष्मकर्म करते हैं वह। यानी यह जो स्थूल कर्म दिखते हैं, स्थूल आचार दिखता है, वह 'वहाँ' काम में नहीं आता। 'वहाँ' तो 'सूक्ष्म' विचार क्या है? सूक्ष्मकर्म क्या है, उतना ही 'वहाँ' काम में आता है। अब पूरा जगत् स्थूलकर्म पर ही एडजस्ट हो गया है। ये साधु, संन्यासी, सभी त्याग करते हैं, तप करते हैं, जप करते हैं, परन्तु वह तो सारा स्थूलकर्म है। उसमें सूक्ष्मकर्म कहाँ है? अगले जन्म के लिए सूक्ष्मकर्म उसमें नहीं है। ये जो करते हैं, उन सूक्ष्मकर्म का यश उन्हें यहाँ पर ही मिल जाता है। आचार्य महाराज प्रतिक्रमण करते हैं, सामायिक करते हैं, व्याख्यान देते हैं, प्रवचन करते हैं, पर वह तो उनका आचार है, वह स्थूल कर्म है। पर भीतर क्या है, वह देखना है। भीतर जो चार्ज होता है, वह 'वहाँ' पर काम आएगा। अभी जिस आचार का पालन करते हैं, वह डिस्चार्ज है। पूरा बाह्याचार ही डिस्चार्ज स्वरूप है। वहाँ ये लोग कहते हैं कि, 'मैंने सामायिक की, ध्यान किया, दान दिया।' तो तुझे उसका यश यहीं पर मिल जाएगा। उसमें अगले भव का क्या लेना-देना? भगवान ऐसी कोई कच्ची माया नहीं हैं कि तेरे ऐसे घोटाले को चलने दें। बाहर सामायिक करता है और भीतर जाने क्या करता है। एक सेठ सामायिक करने बैठे थे, तो बाहर किसीने दरवाज़ा खटखटाया, सेठानी ने जाकर दरवाज़ा खोला। एक भाई आए थे, उन्होंने

पूछा, 'सेठ कहाँ गए हैं?' तब सेठानी ने जवाब दिया, 'कचरेख़ाने'। सेठ ने अंदर बैठे-बैठे यह सुना और अंदर जाँच की तो वास्तव में वे कचरेख़ाने में ही गए हुए थे! अंदर तो खराब विचार ही चल रहे थे और बाहर सामायिक कर रहे थे। भगवान ऐसे घोटाले को नहीं चलने देते। अंदर सामायिक रहता हो और बाहर समायिक न भी हो तो उसका 'वहाँ' पर चलेगा। ये बाहर के दिखावे 'वहाँ' चलें, ऐसे नहीं हैं।

स्थूलकर्म अर्थात् क्या, वह समझाऊँ। तुझे एकदम गुस्सा आया, तुझे गुस्सा नहीं लाना फिर भी वह आ जाता है, ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : वह गुस्सा आया, उसका फल यहीं पर तुरन्त मिल जाता है। लोग कहते हैं कि 'जाने दो न इसे, यह तो है ही बहुत क्रोधी।' अरे कोई तो उसे सामने धौल भी मार देता है। यानी अपयश का या और किसी तरह से उसे यहीं के यहीं फल मिल जाता है। यानी गुस्सा होना वह स्थूल कर्म है और गुस्सा आया उसके भीतर आज का तेरा भाव क्या है कि 'गुस्सा करना ही चाहिए', तो वह आनेवाले जन्म का फिर से गुस्सा करने का हिसाब है। तेरा आज का भाव है कि गुस्सा नहीं करना चाहिए, तेरे मन में नक्की हो कि गुस्सा नहीं ही करना है, फिर भी गुस्सा हो जाता है, तो तुझे अगले भव के लिए बंधन नहीं रहा। इस स्थूलकर्म में तुझे गुस्सा आया तो उसकी तुझे इस भव में मार खानी पड़ेगी। फिर भी तुझे अगले जन्म के लिए बंधन नहीं होगा। क्योंकि सूक्ष्मकर्म में तेरा निश्चय है कि गुस्सा करना ही नहीं चाहिए और अब कोई व्यक्ति किसीके ऊपर गुस्सा नहीं होता, फिर भी मन में कहता है कि इन लोगों के ऊपर गुस्सा करें तो ही ये सीधे हों ऐसे हैं। तो इससे वह अगले भव में फिर गुस्सेवाला हो जाता है। यानी बाहर जो गुस्सा होता है, वह स्थूल कर्म है और उस समय भीतर जो भाव होता है, वह सूक्ष्मकर्म है। स्थूल कर्म से बिलकुल बंधन नहीं है, यदि इसे समझो तो! इसलिए यह साइन्स मैंने नई तरह से रखा है। अभी तक दुनिया को यही समझाया गया है कि स्थूल कर्म से बंधन है और इसीलिए लोग घबराते रहते हैं।

अब घर में स्त्री हो, शादी की हो और मोक्ष में जाना है, तो मन में होता रहता है कि 'मैंने तो शादी की है तो अब किस तरह मोक्ष में जा सकूँगा?' अरे, स्त्री बाधक नहीं है, तेरे सूक्ष्म कर्म बाधक हैं। ये तेरे स्थूल कर्म बिल्कुल बाधक नहीं हैं। वह मैंने ओपन किया है और यह साइन्स ओपन नहीं करूँ तो भीतर घबराहट-घबराहट और घबराहट रहती है। भीतर *अजंपा, अजंपा, अजंपा* रहता है! वे साधु कहते हैं कि हम मोक्ष में जाएँगे। अरे, आप किस तरह मोक्ष में जाओगे? क्या छोड़ना है, वह तो आप जानते नहीं हो। आपने तो स्थूल को छोड़ा है, आँखों से दिखे, कान से सुनाई दे, वह छोड़ा है। उसका फल तो इस भव में ही मिल जाएगा। यह साइन्स नये ही प्रकार का है! यह तो अक्रम विज्ञान है, जिससे इन लोगों को हर प्रकार से फेसिलिटी हो जाती है। क्या पत्नी छोड़कर भागा जाता है? और पत्नी को छोड़कर भाग जाओ और अपना मोक्ष हो ऐसा हो सकता है क्या? किसीको दुःख देकर अपना मोक्ष हो, ऐसा संभव है क्या? इसलिए बीवी-बच्चों के प्रति सभी फर्ज़ निभाओ और पत्नी जो 'भोजन' दे वह चैन से खाओ, परन्तु वह सब स्थूल है, वह समझ जाना। स्थूल के पीछे आपका अभिप्राय ऐसा नहीं रहना चाहिए कि जिससे सूक्ष्म में चार्ज हो। इसलिए मैंने आपको 'पाँच वाक्य' दिए हैं। भीतर ऐसा अभिप्राय नहीं रहना चाहिए कि 'यह करेक्ट है, मैं जो करता हूँ, जो भोगता हूँ, वह करेक्ट है।' वैसा अभिप्राय नहीं रहना चाहिए। बस इतना ही आपका अभिप्राय बदला कि सबकुछ हो गया।

बच्चे में खराब गुण हों तो माँ-बाप उन्हें डाँटते हैं और कहते फिरते हैं कि, 'मेरा बेटा तो ऐसा है, नालायक है, चोर है।' अरे, वह ऐसा करता है, उस करे हुए को रख न एक तरफ। पर अभी उसके भाव बदल न! उसके भीतर के अभिप्राय बदल न!! उसके भाव कैसे बदलने, वह माँ-बाप को आता नहीं है। क्योंकि सर्टिफाइड माँ-बाप नहीं हैं। सर्टिफाइड नहीं हैं और माँ-बाप बन बैठे हैं! बच्चे को यदि चोरी की बुरी आदत पड़ गई हो तो माँ-बाप उसे डाँटते रहते हैं, मारते रहते हैं, कि 'तुझमें अक्कल नहीं है, तू ऐसे करता है, वैसे करता है।' ऐसे झिंझोड़ते रहते हैं। इस तरह माँ-बाप एक्सेस (ज़रूरत से ज़्यादा) बोलते हैं! कभी भी एक्सेस बोला

हुआ हेल्प नहीं करता। इसलिए बेटा क्या करता है? मन में नक्की करता है कि, 'भले ही बोलते रहे। मैं तो ऐसा ही करूँगा।' तो इस बेटे को माँ-बाप और अधिक चोर बनाते हैं। द्वापर और त्रेता और सत्युग में जो हथियार थे उनका आज कलियुग में लोग उपयोग करने लगे हैं। बेटे को बदलने का तरीका अलग है। उसके भाव बदलने हैं। उस पर प्रेम से हाथ फेरकर कहना कि, 'आ बेटे, भले ही तेरी माँ चिल्लाए, वह चिल्लाए, पर तू इस तरह किसीकी चोरी करे वैसे कोई तेरी जेब में से चोरी करे तो तुझे सुख लगेगा? उस समझ तुझे अंदर कैसा दुःख होगा? वैसे ही सामनेवाले को भी दुःख नहीं होगा? इस तरह पूरी थियरी बेटे को समझानी पड़ेगी। एक बार उसके अंदर ऐसा बैठ जाना चाहिए कि यह गलत है। आप उसे मारते हो, तो उससे तो बेटा हठ करेगा। सिर्फ तरीका ही बदलना है।

यह तो बाप थानेदार जैसा होता है, घर में पत्नी हँस नहीं सकती, बच्चे हँस नहीं सकते, मुँह नहीं खोल सकते। इतना अधिक तो उसका दबदबा होता है। ऐसा दबदबा होता होगा? हम कोई बाघ या सिंह हैं? हमारा दबदबा नहीं होना चाहिए। एक आँख में रौब होना चाहिए और दूसरी आँख से प्रेम करना चाहिए। रौब इसलिए कि वे उल्टे रास्ते, उल्टी पटरी पर नहीं चढ़ जाएँ। गाड़ी में भी ज़ंजीर खींचने का साधन रखते हैं न, कुछ गिर जाए उसके लिए? परन्तु सिगरेट का पौकेट गिर जाए और हम ज़ंजीर खींचें, वह गुनाह कहलाएगा न?

पूरा जगत् स्थूल को ही समझा है। सूक्ष्मकर्म को समझा ही नहीं है। सूक्ष्म को समझा होता तो यह दशा ही नहीं होती!

एक सेठ ने पचास हज़ार रुपये दान में दिए, तो उसके मित्र ने उसे पूछा, 'इतने सारे रुपये दे दिए?' तब सेठ बोले, 'मैं तो एक पैसा भी दूँ ऐसा नहीं हूँ। ये तो इस मेयर के दबाव के कारण देने पड़े।' अब इसका फल वहाँ क्या मिलेगा? पचास हज़ार का दान दिया, वह स्थूल कर्म, उसका फल यहीं का यहीं सेठ को मिल जाता है। लोग 'वाह-वाह' करते हैं। कीर्तिगान करते हैं और सेठ ने भीतर सूक्ष्म कर्म में क्या चार्ज किया? तब कहें, 'एक पैसा भी दूँ ऐसा नहीं हूँ।' उसका फल आनेवाले भव में मिलेगा।

तो अगले भव में सेठ पैसा भी दान में नहीं दे सकेगा। अब इतनी सूक्ष्म बात किसे समझ में आए?

प्रश्नकर्ता : दादा, सूक्ष्मकर्म और स्थूलकर्म के कर्त्ता अलग-अलग हैं?

दादाश्री : हाँ, दोनों के कर्त्ता अलग हैं। ये जो स्थूलकर्म हैं, वे डिस्चार्ज कर्म हैं। ये बेटरियाँ होती हैं न, वे चार्ज करने के बाद डिस्चार्ज होती रहती हैं न? हमें डिस्चार्ज नहीं करनी हों, फिर भी वे होती ही रहती हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वैसे ही ये स्थूलकर्म, डिस्चार्ज कर्म हैं, और दूसरे भीतर नये चार्ज हो रहे हैं, वे सूक्ष्म कर्म हैं। इस भव में जो चार्ज हो रहे हैं, वे अगले भव में डिस्चार्ज होते रहेंगे। और इस जन्म में पिछले जन्म की बेटरियाँ डिस्चार्ज होती रहती हैं। एक मन की बेटरी, एक वाणी की बेटरी और एक देह की बेटरी - ये तीनों बेटरियाँ अभी डिस्चार्ज होती ही रहती हैं, और भीतर नई तीन बेटरियाँ चार्ज हो रही हैं।

यह मैं बोलता हूँ, तो तुझे ऐसा लगता है कि 'मैं' ही बोल रहा हूँ। पर नहीं, यह तो रिकॉर्ड बोल रही है। यह तो वाणी की बेटरी डिस्चार्ज हो रही है। मैं बोलता ही नहीं, और ये सारे जगत् के लोग क्या कहते हैं कि 'मैंने कैसी बात की, मैंने कैसा बोला!' ये सभी कल्पित भाव हैं, सिर्फ इगोइज़म ही करता है। इगोइज़म जाए तो फिर दूसरा कुछ रहा? यह इगोइज़म ही अज्ञानता है और यही भगवान की माया है। क्योंकि करता है कोई और और खुद को ऐसा एडजस्टमेन्ट हो जाता है कि 'मैं ही कर रहा हूँ!'

ये सूक्ष्मकर्म जो अंदर चार्ज होते हैं, वे फिर कम्प्यूटर में जाते हैं। एक व्यष्टि कम्प्यूटर है और दूसरा समष्टि कम्प्यूटर है। व्यष्टि में पहले सूक्ष्मकर्म जाते हैं और वहाँ से फिर समष्टि कम्प्यूटर में जाते हैं। फिर समष्टि कार्य करता रहता है। ये दूसरे सब सूक्ष्मकर्म चार्ज होते हैं, उनकी बहुत

चिंता नहीं है, परन्तु 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसे रियली स्पीकिंग बोलने से कर्म बंधते हैं। 'मैं कौन हूँ' इतना ही यदि समझ गया तो तब से ही सारे कर्मों से छूटा।

अर्थात् 'यह' सरल और सीधा विज्ञान दिया है, नहीं तो करोड़ों उपायों से भी एब्सोल्यूट हुआ जा सके ऐसा नहीं है और 'यह' तो बिलकुल 'थियरम ऑफ एब्सोल्यूटीज़म' है!

बुरे कर्मों से छुटकारा

प्रश्नकर्ता : बुरे कर्म हम करते हैं, परन्तु उनमें से निकल जाने की हिम्मत नहीं आती।

दादाश्री : हिम्मत नहीं आती। बुरे काम का अभी बोझ इतना अधिक बढ़ गया है तो किस तरह हिम्मत आए? इसलिए एकबार तो दिवालिया ही निकाल देना है, फिर उधार चुकाना है। उधार तो चुकाना ही पड़ेगा न? मैं आपको रास्ता बता दूँगा उसका।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य समझता है कि मृत्यु के बाद दूसरा जन्म है, फिर भी बुरे कर्म क्यों करता है? सही कर्म करने का रास्ता क्या है?

दादाश्री : खुद की इच्छा के विरुद्ध बुरे कर्म करने पड़ते हैं। सुबह उठे तब से आपकी सत्ता में कुछ भी नहीं है। सबकुछ परसत्ता के हाथ में है। वह परसत्ता एक शक्ति के हाथ में है, जिसे हम 'व्यवस्थित' कहते हैं। यह 'व्यवस्थित शक्ति' क्या करती है? आपके पुण्य का उदय आए तब सब अनुकूल संयोग इकट्ठे कर देती है और पाप का उदय आए तो उन सभी अनुकूल संयोगों को बिखेर देती है। अर्थात् सबकुछ परसत्ता में चल रहा है। फिर अच्छे कर्म हों या बुरे कर्म! जब तक परमार्थ सम्यक् दर्शन नहीं होता, तब तक जीव परसत्ता में ही रहता है।

कर्म, पाप-पुण्य के

प्रश्नकर्ता : पाप और कर्म एक ही हैं या अलग?

दादाश्री : पुण्य और पाप दोनों ही कर्म कहलाते हैं। परन्तु पुण्य का कर्म काटता नहीं है और पाप का कर्म हमारी इच्छानुसार नहीं होने देता और काटता है।

प्रश्नकर्ता : जिन्हें भौतिक सुख मिलते हैं, उन्होंने किस प्रकार के कर्म किए हों तब वे मिलते हैं?

दादाश्री : यदि कोई दु:खी हो रहा हो उन्हें सुख दे, उससे पुण्य बंधता है और परिणाम स्वरूप वैसा सुख हमें मिलता है। किसीको दु:ख दो तो आपको दु:ख मिलेगा। आपको जैसा पसंद आए वैसा देना।

दो प्रकार के पुण्य हैं। एक पुण्य से भौतिक सुख मिलता है और दूसरा एक ऐसे प्रकार का पुण्य है कि जो हमें सच्ची आज़ादी प्राप्त करवाता है।

निंदा का कर्मबंधन

किसी व्यक्ति की निंदा नहीं करनी चाहिए। अरे, उनके बारे में थोड़ी बातचीत भी नहीं करनी चाहिए। उसमें से भयंकर दोष लगते हैं। उसमें भी यहाँ पर सत्संग में, परमहंस की सभा में तो किसी के बारे में थोड़ी-सी भी बातचीत नहीं करनी चाहिए। एक थोड़ी-सी भी उल्टी कल्पना से ज्ञान पर कितना भारी आवरण आ जाता है, तो फिर इन 'महात्माओं' की टीका, निंदा करें तो कितना भारी आवरण आ जाएगा? सत्संग में तो दूध में चीनी घुल जाती है, वैसे घुल-मिल जाना चाहिए। यह बुद्धि ही अंदर दख़ल करती है। हम सबका सबकुछ जानते हैं फिर भी किसीके बारे में एक अक्षर भी नहीं बोलते। एक अक्षर भी उल्टा बोलने से ज्ञान पर बड़ा आवरण आ जाता है।

'यह मुझे धोखा दे गया' वैसा बोला, तो वह भयंकर कर्म बाँधता है। इसके बदले तो दो धौल मार ले तो कम कर्म बंधेगा। वह तो जब धोखा खाने का काल उत्पन्न होता है, अपने कर्म का उदय होता है तभी धोखा खाते हैं। उसमें सामनेवाले का क्या दोष? उसने तो बल्कि हमारा

कर्म खपा दिया। वह तो निमित्त है।

कर्म छेदन की सत्ता

प्रश्नकर्ता : कर्म का फल तो भोगना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : हाँ। कर्म का नियम ही ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' उनमें से छुड़वा सकते हैं?

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' तो आपके कर्मों को भस्मीभूत कर देते हैं। परन्तु उसमें दो प्रकार के कर्म होते हैं, एक बर्फ के रूप में जम चुके हैं वे और दूसरे पानी या भाप के रूप में होते हैं। ज्ञानी पानी और भाप के रूप में रहे हुए कर्मों को नष्ट कर देते हैं। परन्तु बर्फरूप हो चुके कर्मों को भोगना ही पड़ेगा! परन्तु स्वरूपज्ञान देने के बाद उन कर्मों के भुगतान में फर्क पड़ जाता है। सूली का घाव सूई जैसा लगता है। 'ज्ञानी पुरुष' कारण स्वरूप में रहे हुए कर्मों का नाश कर देते हैं, परन्तु आज जो कार्य स्वरूप के कर्म हैं, बर्फरूप हो चुके हैं, उन्हें तो भुगतना ही पड़ेगा।

प्रभुस्मरण से हेल्प

प्रश्नकर्ता : हमारे कर्म हमें तारें या डुबोएँ, उसमें प्रभुस्मरण क्या काम करता है?

दादाश्री : प्रभु प्रकाशक हैं, सर्व प्रकाशक हैं। यदि उन्हें याद नहीं करे तो प्रकाश नहीं मिलेगा, उतनी ही अड़चन है। बाकी उन्हें दूसरा कुछ लेना-देना नहीं है। हमें यदि प्रकाश की आवश्यकता है, उबरने में या डूबने में हेल्प चाहिए तो प्रभुस्मरण करना चाहिए। उन्हें याद करो तो आपको कुछ प्रकाश मिले बगैर रहेगा ही नहीं। उससे आपके कर्म अच्छे होंगे, परन्तु प्रभुस्मरण सच्चे दिल से होना चाहिए। उसमें गप्प नहीं चलती कि भगवान ऊपर हैं। ऊपर तो कोई बाप भी नहीं है। भीतर बैठे हैं, वे ही भगवान हैं।

भगवान को भी कर्मबंधन

प्रश्नकर्ता : पृथ्वी पर जो-जो भगवान हो चुके हैं, ऋषभदेव, महावीर, नेमीनाथ - वे सभी कर्म के बंधन में आए हुए थे क्या?

दादाश्री : सभी कर्म के बंधन में आए हुए थे, तभी तो माता के पेट से जन्म हुआ। कोई भगवान ऐसे नहीं हैं कि जो माता के पेट से नहीं जन्मे हों। जो भगवान हो चुके हैं, उन्होंने दो या तीन जन्मों पहले आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, फिर अंत में भगवान हुए थे। जिन्हें आत्मा का लक्ष्य प्राप्त हो चुका हो, वे दो-चार जन्मों में भगवान हो सकते हैं। सीधे-सीधे मोक्ष में जाना हो तो वैसे भी जाया जा सकता है और जगत्कल्याण करना हो तो भगवान हुआ जा सकता है, दोनों में से एक होता है।

'ज्ञानी पुरुष' के दिव्य कर्म

शास्त्रकारों ने ज्ञानी के प्रत्येक कर्म को दिव्यकर्म कहा है, क्योंकि स्वयं संपूर्ण निर्अहंकारी, संपूर्ण अकर्त्तापद में बैठे हुए होते हैं, इसलिए वीतराग कहलाते हैं। इस काल में संपूर्ण वीतराग नहीं होते हैं। हम वीतराग हैं परन्तु संपूर्ण नहीं हैं। हम जगत् के तमाम जीवों के साथ वीतराग हैं, सिर्फ हमारे जगत्कल्याण करने के कर्म के प्रति ही हमें राग रहता है। जगत्कल्याण करने की खटपट के लिए हमें थोड़ा राग रह गया है। वह राग भी कर्म खपाने जितना ही है। वर्ना 'हमें' तो हमारा मोक्ष निरंतर बरतता ही रहता है। ज्ञानी को काल, कर्म और माया स्पर्श नहीं करते। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और भव से अप्रतिबद्ध रूप से विचरें, वे ज्ञानी।

कर्म का स्वरूप

लोग कहते हैं कि कर्म लिपटे हुए हैं। परन्तु कर्म न तो स्त्री जाति हैं न ही पुरुष जाति। वे तो नपुसंक हैं और आप खुद परमात्मा हो!

कर्म वास्तव में जड़ नहीं हैं और चेतन भी नहीं है, परन्तु निश्चेतन-चेतन है। कर्मों का फल मिलता है, वह भीतर आत्मा बिराजमान है इसलिए मिलता है। निश्चेतन चेतन को शुद्ध चेतन का स्पर्श होने से कर्म चार्ज होते हैं, खुद का स्वरूप जान ले तब कर्म बंधने बंद हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा और कर्म का कैसा संबंध है?

दादाश्री : 'रिलेटिव' संबंध है।

प्रश्नकर्ता : कर्म आत्मा को फँसाते हैं या आत्मा कर्म को बाँधता है?

दादाश्री : कर्म आत्मा को फँसाते हैं। *पुद्गल* की इतनी अधिक शक्ति है कि देखो न अंदर परमात्मा कैसे फँस गए हैं!

प्रश्नकर्ता : आत्मा चाहे तो कर्म को खपा सकता है?

दादाश्री : खुद बंधा हुआ किस तरह से छूट सकता है? वह तो जब आत्मा स्वभाव में आए तो कर्म खपेंगे। स्वभाव में आने के बाद तो चाहे जैसे कर्म हों, फिर भी नष्ट कर देता है। 'ज्ञानी पुरुष' एक घंटे में तो कर्मों का कैसे धुँआ उड़ा देते हैं। तभी तो आपको आत्मा का निरंतर लक्ष्य बैठ जाता है, नहीं तो बैठे ही नहीं!

कर्म *पुद्गल* स्वभाव के हैं और वे उनके पर-परिणाम बताते ही रहेंगे। हम 'शुद्धात्मा' हैं, वह स्व-परिणाम हैं। पर-परिणाम ज्ञेय स्वरूप हैं और 'हम' ज्ञाता स्वरूप हैं।

कर्म और 'व्यवस्थित'

प्रश्नकर्ता : आप जिसे 'व्यवस्थित' कहते हैं, वह कर्म के अनुसार है?

दादाश्री : कर्म से जगत् नहीं चलता है। जगत् को 'व्यवस्थित' शक्ति चलाती है। आपको यहाँ पर कौन लेकर आया? कर्म? नहीं। आपको 'व्यवस्थित' ले आया। कर्म तो भीतर पड़ा हुआ ही था। वह कल तक क्यों लेकर नहीं आया और आज ही लाया? 'व्यवस्थित' काल इकट्ठा करता है, क्षेत्र इकट्ठा करता है, सारे संयोग इकट्ठे हो गए, तब आप यहाँ पर आए। कर्म तो 'व्यवस्थित' का एक अंश है।

भावबीज के सामने सावधान

भगवान ने कहा है, 'तू परमात्मा है। द्रव्य-भाव से स्वतंत्र है। संयोग

मात्र से स्वतंत्र है।' जब कि लोग संयोगों से अधिक चिपट गए।

हमारे पास हाथ में बीज हो और दूसरा बीज नीचे जमीन में गिर गया हो तो उन दोनों में फर्क नहीं कहा जाएगा?

अर्थात् भगवान ने क्या कहा है कि हाथ का बीज हो उसे धीरे से इधर-उधर रख देना, परन्तु गिर चुके बीजों की खोज करना। क्योंकि दूसरे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स उसे मिल जाएँ तो उग निकलेगा और बीज जमीन में गिरा अर्थात् उसे दूसरे एविडेन्स मिल जाएँगे, इसलिए वहाँ पर सावधान रहना। ज़रा-सी कोंपल उगी हो तो उसे तुरन्त ही उखाड़कर फेंक देना, नहीं तो वृक्ष रूप हो जाएगा।

अभी भीतर दूसरे आड़े-टेढ़े भाव आते हैं, वे जो पड़ चुके हैं वे बीज हैं। आपको अब जीवजंतु नहीं मारने हैं, फिर भी जंतु आपके पैर के नीचे कुचला जाए तो समझना कि यह पड़ चुका बीज है। वहाँ जागृत रहकर प्रतिक्रमण कर लेना।

जगत् में यज्ञ चलता ही रहता है, उनमें सारे कर्म होम करते रहते हैं और नये कर्म बंधते हैं।

कर्म लय की प्रतीति

प्रश्नकर्ता : कर्मसंस्कार का विलय हो गया, वह किस तरह पता चलेगा?

दादाश्री : जिनके संबंध में हमारा कर्म हो, वहाँ राग या द्वेष नहीं रहे, वहाँ समझना कि हमारा कर्म विलीन हो गया है और हमें पसंद या नापसंद रहता हो तो समझना कि कर्म की सत्ता अभी चल रही है।

पुद्गल के कर्मबंधन किस तरह?

प्रश्नकर्ता : परमाणु और कर्मबंधन उन दोनों का लिंक क्या है? कर्मबंधन किस तरह होते हैं?

दादाश्री : आत्मा की चैतन्यशक्ति ऐसी है कि रोंग बिलीफ़ से

विकल्प होते हैं। 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ', उससे रोंग बिलीफ़ खड़ी होती है और वही कर्मबंधन है। जैसे कि दर्पण में देखने से तुरन्त ही फोटो आ जाता है, वैसे ही परमाणु सक्रिय होने के कारण जैसे ही विकल्प हुआ कि तुरन्त ही वैसे सभी परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं। मूल परमाणु 'तत्व स्वरूप' हैं। फिर जब मिलते हैं तब अवस्थावाले हो जाते हैं। ये सभी सक्रिय के चमत्कार हैं। आत्मा को यह *पुद्‌गल* तत्व ही उलझाता है। उसकी सक्रियता ही उलझाती है। *पुद्‌गल* की सक्रियता ऐसी है कि स्वयं अजीव है फिर भी जीव जैसा भासित होता है। जैसे कि यह चिड़िया खुद के प्रतिबिंब को चोंच मारती है, वैसे!

गाढ़ कर्मों से हल

प्रश्नकर्ता : गाढ़ कर्म होते हैं, उन्हीं के कारण हमें दुःख भुगतना पड़ता है?

दादाश्री : अपने ही कर्म किए हुए हैं, इसलिए अपनी ही भूल है। किसी अन्य का दोष इस जगत् में है ही नहीं। दूसरे तो निमित्त मात्र हैं। दुःख आपका है और सामनेवाले निमित्त के हाथों दिया जा रहा है। ससुर की मृत्यु की चिट्ठी पोस्टमेन देकर जाए, उसमें पोस्टमेन का क्या दोष?

प्रश्नकर्ता : गाढ़ कर्म किसे कहा जाता है?

दादाश्री : मन-वचन-काया की पूर्ण एकाग्रता से करे या जिसमें दूसरे विरोधाभासी भाव नहीं हों, उनसे भयंकर गाढ़ कर्म बंधते हैं। 'यहाँ' पर आत्मार्थ किए हुए हों वैसे गाढ़ कर्म दो या तीन जन्मों में छुड़वाते हैं और संसार के गाढ़ कर्म तो परिपक्व होने में बहुत समय लेते हैं। इसलिए तो यह संसार खड़ा रहा है न!

कोई सीधा व्यक्ति नया-नया जेब काटने जाएगा तो पकड़ा जाएगा, क्योंकि उसका कर्म तुरन्त विपाक हो जाता है और इस कर्म से वह छूट जाता है। जब कि शातिर चोर पकड़ा ही नहीं जाता। अब लोग तो जो पहले पकड़ा गया, उसे गुनहगार कहेंगे। परन्तु कुदरत तेरे फेवर में है। हल्के

कर्मवाले को कर्मफल देकर ऊर्ध्वगति में ले जाती है, जब कि शातिर हो वह नहीं पकड़ा जाता। इसलिए वह उसकी अधोगति में जाने की निशानी है।

गाढ़ कर्म अर्थात् क्या?

कुछ कर्म तो यों ही उड़ जाते हैं। कुछ कर्म तो पछतावा करने से उड़ जाते हैं। और जो पछतावा करने के बावजूद भी भोगने ही पड़ें, उन्हें गाढ़ कर्म कहा है, उन्हें भोगना ही पड़ता है। जैन उन्हें निकाचित कर्म कहते हैं। किसीने हम पर थूका हो और उस पर पानी डालें, तो तुरन्त ही धुल जाता है। और किसीने ऐसा थूका हो कि साबुन से घिसते रहें, धोते रहें, तो भी नहीं जाता। अत्यंत गाढ़ कर्म होता है।

प्रश्नकर्ता : 'समभाव से निकाल' करने का दृढ़ निश्चय होने के बावजूद झगड़ा खड़ा ही रहता है वह किसलिए?

दादाश्री : कितनी जगह पर ऐसा होता है? सौ-एक जगह पर?

प्रश्नकर्ता : एक ही जगह पर होता है।

दादाश्री : तो वह निकाचित कर्म है। वह निकाचित कर्म किससे धुलता है? आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान से। उससे कर्म हल्का हो जाता है। उसके बाद ज्ञाता-दृष्टा रहा जाता है। उसके लिए तो निरंतर प्रतिक्रमण करना पड़ता है। जितने फोर्स से निकाचित हुआ हो, उतने ही फोर्सवाले प्रतिक्रमण से वह धुलता है।

प्रश्नकर्ता : ये निकाचित कर्म हैं, उनके सामने पुरुषार्थ किस तरह करना चाहिए?

दादाश्री : उनमें अत्यंत जागृति रखनी पड़ती है। फिसलन हो वहाँ पर कैसे जागृत रहते हो? जंगल में बाघ-भेड़िये दिखें, वहाँ पर कितनी जागृति रहती है? वैसी ही जागृति इसमें रहे, तभी उसमें से छूटा जा सकता है।

'निष्काम कर्म' किस तरह किए जाते हैं?

प्रश्नकर्ता : पुनर्जन्म होता है, वह आसक्ति का परिणाम है या कर्म के परिणाम से है?

दादाश्री : कर्म के परिणाम से आसक्ति रहती है और आसक्ति से पुनर्जन्म होता है। आसक्ति, वह स्टेपिंग है।

प्रश्नकर्ता : निष्काम कर्म करें फिर भी पुनर्जन्म होता है?

दादाश्री : निष्काम कर्म करो फिर भी पुनर्जन्म बंद हो जाए वैसा नहीं है। वह तो स्वरूपज्ञान हो जाए, तभी पुनर्जन्म रुकता है।

प्रश्नकर्ता : निष्काम कर्म में किस तरह कर्म बंधते हैं?

दादाश्री : 'मैं चंदूभाई हूँ' करके निष्काम कर्म करने जाओ तो कर्म का बंधन ही है। निष्काम कर्म करने से ही यह संसार अच्छी तरह चलता है। वास्तव में निष्काम कर्म 'स्वयं कौन है?' वह नक्की हुए बिना हो ही नहीं सकता। जब तक क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, तब तक निष्काम कर्म किस तरह हो सकता है?

खुद ही मान लेता है कि 'मैं यह निष्काम कर्म कर रहा हूँ', जब कि वास्तव में उसका कर्त्ता कोई और ही है। जिस-जिस प्रकार की क्रियाएँ होती हैं वे सब डिस्चार्ज ही हैं। 'मैं निष्काम कर्म करता हूँ' ऐसा मानता है, वही सारा बंधन है। निष्काम कर्म का कर्त्ता है, तब तक बंधन है।

कृष्ण भगवान ने लोगों को दूसरा रास्ता बताया कि जिसे करने से भौतिक सुख मिलते हैं। निष्काम कर्म किसे कहा जाता है? अपने घर की आमदनी आती है, ज़मीन की आती है, उसके अलावा यह छापाखाना लगाया उसमें से मिलेगा। इस तरह, बारह महीने में बीस-पच्चीस हज़ार मिलेंगे, ऐसा मानकर करने जाए और फिर पाँच हज़ार मिलें तो लगता है कि बीस हज़ार का नुकसान हो गया। और धारणा ही नहीं रखी हो तो?

निष्काम कर्म अर्थात् उसके आगे के परिणाम की इच्छा किए बिना करते जाना। कृष्ण भगवान ने बहुत सुंदर चीज़ दी है, परन्तु किसीसे वह हो नहीं सकता न? मनुष्य का सामर्थ्य ही नहीं है न! इस निष्काम कर्म को यथार्थ रूप से समझना मुश्किल है। इसीलिए तो कृष्ण भगवान ने कहा था कि मेरी गीता का सूक्ष्मतम अर्थ समझनेवाला कोई एकाध ही होगा!

प्रश्नकर्ता : निष्काम भाव से कर्म करें तो कर्म नहीं बंधेंगे न?

दादाश्री : निष्काम भाव से कर्म करो, परन्तु 'आप चंदूभाई ही हो' और 'मैं चंदूभाई हूँ' वह बिलीफ़ है, तब तक निष्काम भाव से कर्म करोगे तो उसका पुण्य बंधेगा। कर्म तो बंधेगा ही। कर्त्ता हुआ कि कर्मबंधन हुआ।

प्रश्नकर्ता : निष्कामी किस तरह हुआ जा सकता है?

दादाश्री : परिणाम का विचार किए बिना काम करते जाओ। साहब मुझे गुस्सा करेंगे, डाँटेंगे, ऐसे विचार किए बिना काम करे जाओ। परीक्षा देने का विचार किया हो तो फिर 'पास हुआ जाएगा या नहीं, पास हुआ जाएगा या नहीं' ऐसे विचार किए बिना परीक्षा देते जाओ।

कृष्ण भगवान की एक भी बात नहीं समझे और ऊपर से कहते हैं कि कृष्ण लीलावाले थे! अरे, आप लीलावाले या कृष्ण लीलावाले? कृष्ण तो वासुदेव थे, नर में से नारायण हुए थे!

आत्मा, अनादि से शुद्ध ही!

वीतरागों ने कहा है कि कर्म और आत्मा दोनों अनादि से हैं। यानी उसकी कोई आदि नहीं हुई, इसलिए कर्म के आधार पर ही भाव उत्पन्न होते हैं और भाव के आधार पर ये कर्म उत्पन्न होते हैं और ऐसा निरंतर चलता ही रहता है। आत्मा वहीं के वहीं रहता है।

करना, करवाना और अनुमोदन करना

प्रश्नकर्ता : करना, करवाना और अनुमोदन करना उसमें क्या फर्क है?

दादाश्री : ऐसा है कि अनुमोदन करनेवाले को भयंकर दोष लगता है। करवाता है, उसका सेकन्डरी दोष है और करनेवाले का थोड़ा-सा ही दोष है। करनेवाले का खास दोष नहीं है। ये कसाई बकरे को काटकर बेचता है, उसका उसे जो दोष लगता है, उसके बदले तो जो लोग कहते हैं कि, 'हमें माँसाहार करना चाहिए, नहीं करें तो अनाज कम पड़ जाएगा', वैसी ही प्ररूपणा करते हैं, उन्हें अधिक दोष लगता है। कसाई तो बेचारे खुद के पेट के लिए करते हैं। और ये कट्टर अहिंसा का धर्म पालनेवाले लोग बकरे(!) काटते हैं, वे किसलिए काटते हैं?

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : ये बकरे काटनेवाले कसाई तो अच्छे हैं कि एक ही झटके में हलाल करके मार देते हैं, परन्तु हराम नहीं करते। और वे तो हराम करते हैं, घिस-घिसकर मारते हैं। पाँच सौ रुपये उधार दिए हों, तो बारह महीनों में चार सौ रुपये तो ब्याज ही हो गया होता है! फिर बुद्धि से मारते हैं। उन्हें बंदूक की ज़रूरत नहीं है। दुकान पर ग्राहक आए तो कहेंगे कि, 'इलाहाबाद का बहुत अच्छा माल आया है।' वह बेचारा भोला ग्राहक, सच्चा मानकर ले जाता है। वह सेठ समझता है कि यह बेवकूफ है तो थोपो न यहीं से। वह बुद्धि से गोली मारता है! यह तो भयंकर रौद्रध्यान कहलाता है। इनकी क्या दशा होगी? ऐसी तो सेठ ट्रिक करता है, ऐसे तो तार डालता है कि पूरे डिस्ट्रिक्ट के किसान सेठ के घर पर रुपये लेकर आते हैं। ब्याज पर ब्याज और उसका भी ब्याज चुकाने में ही किसान मृतप्राय हो जाते हैं और सेठ डेढ़ सौ-डेढ़ सौ किलो का होकर फिरता है! काल बदलेगा तब इसी किलो की चटनी बन जाएगी! कृपालुदेव क्या कहते हैं कि जो माँस बढ़ाने के लिए खाते हैं, वे सब माँसाहार करते हैं। भोजन जीवित रहने के लिए है। उसके बदले यहाँ से फूला, वहाँ से फूला और मोटे तरबूज जैसा हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : यानी अनुमोदना करनेवाले का ही गुनाह अधिक माना जाता है?

दादाश्री : अनुमोदना दो प्रकार की है। एक तो अनुमोदना करनेवाले के आधार पर ही सारी क्रियाएँ होती हैं। और दूसरे प्रकार की अनुमोदना में वह सिर्फ हाँ, हाँ करता है, 'हाँ साहब, हाँ साहब' करता है। उसमें बहुत दोष नहीं है। ये सब कोई क्रिया कर रहे हों उसमें आप, 'हाँ भाई, मुझे अच्छा लगा, अच्छा है' कहा। परन्तु उसकी बहुत क़ीमत नहीं है। आप ऐसा नहीं कहते, फिर भी ये लोग करने ही वाले थे। और यदि अनुमोदना से ही क्रिया हो, वह नहीं हो तो नहीं होगा, उसका बहुत भारी दोष है। बहुत क़ीमती अनुमोदना किसकी कही जाती है कि जिसकी अनुमोदना से जगत् चल रहा है।

❖❖❖❖❖

(३६)
भाव, भाव्य और भावक

भावक ही भाव का कर्त्ता

प्रश्नकर्ता : भाव करवानेवाला कौन है? वह आत्मा करता है?

दादाश्री : अंदर 'भावक' हैं, वे भाव करवाते हैं। आत्मा भाव नहीं करता है। लोग भावकर्म को भूतावेष समझते हैं, वास्तव में भाव करवानेवाले अंदर बैठे हैं। आत्मा कभी भी भाव करता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वे भावक कौन हैं?

दादाश्री : वह सिर्फ भावक नहीं है। क्रोधक है, क्रोध करवानेवाला। लोभक है, लोभ करवानेवाला। निंदक है, नहीं करनी हो फिर भी वह निंदा करवाता है। इसमें आत्मा कुछ भी नहीं करता। यदि आत्मा भाव करे तो उसकी क्या दशा हो? तब तो वह खत्म ही हो गया न? ये भाव करवानेवाले दूसरे हैं। उनका नाम भावक है। भावक भाव करवाते हैं। उस घड़ी 'आत्मा' भाव्य हो जाता है, 'उसे' वह अच्छा लगता है। खुद के स्वरूप का भान नहीं है इसलिए ऐसा असर हो जाता है।

भाव में एकाकार हो, तो भाव्य

'महींला भावके भाव्य भळे तो,
चितरामण नवुं थाय ज छे स्तो।' – नवनीत

भीतर भाव होते हैं उनके अंदर भाव्य मिल जाता है। उससे नया चित्रण होता है। आत्मा भाव्य है और भीतर भावक भाव करवाते हैं। वे भाव होते हैं, उसमें क्या आपत्ति है? भाव्य भावों में एकाकार नहीं हो और

देखता ही रहे कि, 'अरे! अंदर के भावक ऐसे भी भाव करवाते हैं!' भावक भले ही कैसे भी भाव करवाए, उन्हें 'हम' देखते रहें तो हमें बंधन नहीं है। यह अंतिम साइन्स है।

भावक का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : ऐसा किस तरह समझ में आए कि भावक ने यह भाव करवाया? ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : हम मुंबई की बस्ती में रह रहे हों और एकाएक बाहर जाना पड़े और रेगिस्तान आ जाएँ, जहाँ कोई पेड़ नहीं मिले, छाया नहीं मिले, वहाँ पर ऐसे भाव होते हैं कि, 'कहाँ बैठेंगे और कहाँ ठंडक मिलेगी, कहाँ आसरा लेंगे?' वे भाव अंदर के भावक करवाते हैं। वे सब अंदर ही बैठे हैं। और इस मोक्षपंथ पर पूरा ही जगत् चल ही रहा है। यह तो पूरा प्रवाह ही है और सभी जीव प्रवाह के रूप में चल ही रहे हैं। उस रास्ते पर जाते हुए तरह-तरह के भावक आते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि वह *शाता-अशाता* (देह का सुख परिणाम-देह का दु:ख परिणाम) वेदनीय हुई?

दादाश्री : नहीं, नहीं। शाता-अशाता वेदनीय नहीं, वेदनीय तो वेदनीय ही कहलाता है। और ये तो भावक हैं। तरह-तरह के भाव करवाते हैं। हमें भय नहीं लगाना हो, हम निर्भय हों, परन्तु यों साँप को जाते हुए देखा तो तुरन्त ही भय का भाव करवाते हैं। करवाते हैं या नहीं करवाते?

प्रश्नकर्ता : करवाते हैं। तभी तो वह विकल्प कहलाता है?

दादाश्री : नहीं। विकल्प भी नहीं कहलाता। साँप जाए और उसमें तन्मयाकार हुआ तो वह भय का भाव करवाता है। वह भय का भावक है।

भावक का आधार, संसारीज्ञान

यह 'सांसारिक ज्ञान' है, वह भावक करवाएँ, ऐसा ज्ञान है। यदि 'मूल

ज्ञान' हो तो वे भावक कुछ भी नहीं करेंगे। 'मूल ज्ञान' अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान होना वह, उसके बाद भावकों का कुछ भी नहीं चलता। जब तक 'मूल ज्ञान' नहीं होता, तब तक भावक टकराव करवाते ही रहते हैं। यहाँ से धक्का मारते हैं और वहाँ से धक्का मारते हैं। वे फुटबॉल की तरह टकराव करवाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये भावक अंत:करण के कौन-से भाग में होते हैं? मन में होते हैं?

दादाश्री : नहीं। भावक तो अंत:करण से भी अलग हैं! वे अंत:करण में नहीं आते। अंत:करण तो भावकों के बताए अनुसार चलता है। भावक आत्मा को मूर्छित कर देते हैं, इसलिए आत्मा भाव्य हो जाता है। तब फिर यह अंत:करण शुरू होता है। और यदि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान रहे तो वैसे लाख भावक आएँ तो भी कोई हर्ज नहीं है। भीतर भावक अकेला नहीं है। क्रोधक, लोभक, निंदक, चेतक ऐसे कितने ही 'क' अंदर हैं। 'क' अर्थात् करवानेवाले हैं। अंदर तो पूरा ब्रह्मांड है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भावक, आत्मा को मूर्छित कर दें, वैसे भाव उत्पन्न करते हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। भावक ऐसा उत्पन्न कर देते हैं कि आत्मा मूर्छित हो जाता है। मूर्छित अर्थात् खुद के स्वरूप का भान खो देता है। जैसे यहाँ पर कुछ गैस का फूटा हो तो मनुष्य अचेत हो जाता है न? वैसे ही आत्मा को भावक भाव करवाते हैं, उसका असर होता है। असर किसे नहीं होगा? खुद के स्वरूप का भान हो उसे नहीं होगा। वर्ना यह संसारिक ज्ञान आत्मा को असर से मुक्त नहीं रखता है। यह संयोगों का दबाव इतना अधिक है कि उसे असरमुक्त नहीं रहने देता। जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जानेगा तब भावकों का ज़ोर नहीं रहेगा। सामान्य समझ ऐसी है कि आत्मा भाव करता है, उससे काल, भाव और कर्म बंध गया है, परन्तु आत्मा भाव करे तब तो हो चुका, खत्म हो गया। तब तो वह किसी चीज़ का भिखारी है, ऐसा हुआ।

भावक भाव करवाते हैं और भावक ही आत्मा को भाव्य बनाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये भावक हैं, वे परमाणु के रूप में हैं या गाँठ के रूप में हैं?

दादाश्री : परमाणुओं के रूप में हैं। वे *पुद्गल* परमाणु हैं।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि खुद का मनचाहा हुआ तो आत्मा अंदर तन्मयाकार हो जाता है?

दादाश्री : हाँ और उसे अच्छा नहीं लगता हो तो तन्मयाकार नहीं होता। अर्थात् 'वह' भाव्य नहीं बने तो कुछ भी नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् तन्मयाकार नहीं हो तो चित्रण नहीं होगा?

दादाश्री : तन्मयाकार नहीं हो तब तो कोई हर्ज ही नहीं, परन्तु 'वह' तन्मयाकार हुए बगैर रहता ही नहीं। 'स्वरूप' का भान हो जाए तभी 'वह' तन्मयाकार नहीं होगा।

भावक, समसरण के अनुसार बदलते रहते हैं

वे भावक भी फिर बदलते रहते हैं। दसवें मील पर जो भावक ऐसे होते हैं, तो ग्यारहवें मील पर नई ही प्रकार के होते हैं, बारहवें मील पर उससे भी नई प्रकार के होते हैं। क्योंकि 'हम' सब गति कर रहे हैं। अर्थात् वास्तव में तो कोई कर्त्ता है ही नहीं। इस जगत् में आत्मा भी कर्त्ता नहीं है और *पुद्गल* भी कर्त्ता नहीं है। यदि *पुद्गल* कर्त्ता होता तो *पुद्गल* को भुगतना पड़ता और आत्मा कर्त्ता होता तो आत्मा को भुगतना पड़ता। न तो आत्मा भुगतता है और न ही *पुद्गल* भुगतता है, अहंकार भुगतता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो सब खड़ा हुआ है, वह मूलत: तो खुद के आशय में से ही खड़ा हुआ है न?

दादाश्री : नहीं, नहीं। आशय वगैरह कुछ नहीं। यह तो 'आ फँसे' जैसा हो गया है, खुद के आशय में होता तब तो वह 'स्वयं' गुनहगार माना जाएगा, 'स्वयं' कर्त्ता बन गया कहा जाएगा!

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान नहीं हुआ, उससे पहले जो यह सब खड़ा हुआ, वह आशयों में से ही न?

दादाश्री : उन आशयों से हमें लगता ज़रूर हैं कि जो आशय हैं उनका यह फल है। परन्तु वे आशय कर्त्ता नहीं हैं। हमें लगता ज़रूर है कि ये आशय हमारे होंगे इसलिए यह सब आया। जैसा आशय होता है, वैसा आता है। वह तो नियम है कि इस तरह की टिकिट ली यानी कलकत्ता पहुँचेंगे। आशय टिकिट लेने जैसा है।

यह तो अहंकार से बोलते हैं कि मुझे ऐसे आशय उत्पन्न हुए इसलिए यह हुआ। संसार निरंतर प्रवहन कर रहा है। एक व्यक्ति ने भगवान से पूछा था कि, 'भगवान, ऐसा तो मैं क्या करूँ कि मेरा मोक्ष जल्दी हो जाए?' तब भगवान ने कहा, 'तेरी भवस्थिति अभी तक परिपक्व नहीं हुई है। मोक्ष के लिए अभी बहुत समय बाकी है तुझे।' इसलिए अठारहवें मील पर मोक्ष हो तो ग्यारहवें मीलवाला किस तरह मोक्ष में जाए? तू 'ज्ञानी पुरुष' के पास पड़ा रहेगा, तो भी तेरा कुछ नहीं होगा। परन्तु एक खास (मील की) बाउन्ड्री में आ गया और 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए तो तेरा कल्याण हो जाएगा।

ये भाव करवाते हैं, वे अंदरवाले भावक हैं। यह साइन्स बहुत उच्च है। इस 'जौहरीबाज़ार'* में हों, तो अलग भाव होते हैं, 'दारूखाना'* में अलग भाव होते हैं और 'चोरबाज़ार'* (* मुंबई के इलाकों का नाम) में अलग भाव होते हैं।

प्रश्नकर्ता : होते हैं, क्योंकि प्रतिक्षण भाव बदलते हैं।

दादाश्री : जो बदलता है वह आत्मा नहीं है, वे भावक हैं। 'शुद्धात्मा' में रहे उसे 'डुंगरी'* भी बाधक नहीं है, 'दारूखाना' भी बाधक नहीं है, 'जौहरीबाज़ार' भी बाधक नहीं है और 'चोरबाज़ार' भी बाधक नहीं है। यह 'रिलेटिव' ज्ञान का आधार है इसलिए जैसे ही स्थान बदलता है, वैसे ही भाव बदल जाते हैं। यह इन्द्रियज्ञान है और इन्द्रियज्ञान के कारण भाव बदलते हैं। स्वरूप का भान हो जाए उसके बाद भावकों का कुछ

भी नहीं चलता।

अर्थात् यह सभी परमाणुओं का असर है। जैसे मील बदल जाएँ वैसे वे परमाणु बदल जाते हैं और मोक्षमार्ग में धीरे-धीरे उस प्रवाह में आगे बढ़ते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अंत में कोई भावक परमाणु ही नहीं रहता न? ज्ञानी में ये 'क' होते हैं?

दादाश्री : हमारी दशा में भावक का परमाणु भी नहीं रहता। हम जिस जगह पर बैठे हैं, उस जगह पर आप आओगे तो आपके भी भावक नहीं रहेंगे, फिर कोई शोर मचानेवाला अंदर नहीं रहेगा, शुद्धात्मा के स्पष्ट वेदन में आए तो 'क' नहीं रहेंगे। यह 'साइन्स' मात्र समझना है। यह ज्ञान तो इटसेल्फ क्रियाकारी है। यह सूक्ष्म बात समझे तभी मोक्ष होगा।

भावों में एकाकार नहीं हों तो मुक्ति

भगवान ने तप किसे कहा है? लोग तपते हैं उसे भगवान ने तप नहीं कहा। यह तो लोक-तप, लौकिक तप कहलाता है। मोक्ष के लिए अलौकिक तप होता है। अंदर भावक सभी तरह के भाव करवाएँ, उस घड़ी तप ऐसा रखें कि ज़रा-सा भी 'खुद' का चूके नहीं। भगवान महावीर ने भी वही तप किया था। अंत तक तप में तपकर और ज्ञान से देखते ही रहे और 'खुद' असर से मुक्त रहे!

प्रश्नकर्ता : वैसा असरमुक्त किस तरह से रहा जा सकता है?

दादाश्री : अंदर सारे भावक हैं। खुद यदि भाव्य हो जाए तो भाव होता है और फँसता है। तू तो परमात्मा है, इसलिए भावों को जान। और भावों का तू ज्ञाता-दृष्टा रहा तो फँसेगा नहीं। यदि भावक नहीं हों, तो स्वयं परमात्मा ही है। ये भावक कौन हैं? पहले की गुनहगारी, वे भावक हैं। उससे बीज पड़े हैं। भावक और भाव्य एकाकार हो जाएँ तो योनि में बीज पड़ता है। और उससे संसार सर्जित हो जाता है। यदि भावक और भाव्य एकाकार नहीं हों, वहाँ 'खुद' स्ट्रोंग रहा और 'खुद' भाव्य नहीं बन जाए

तो अनुबंध उदय में आता ज़रूर है, परन्तु (कर्म)बंध डाले बगैर *निर्जरा* हो जाती है।

हम 'ज्ञान' देते हैं, उसके बाद भीतर 'चेतक' बैठा देते हैं। मात्र आपको अब उसे मज़बूत कर लेना है। 'विषय में सुख है', वहाँ चेतक की ज़रूरत है। जिस तरह पुलिसवाला ज़बरदस्ती मार-पीटकर करवाए उस तरह विषय का आराधन होना चाहिए। उतना इस चेतक को मज़बूत कर लेना है। तभी वह उसका विरोध करेगा। नहीं तो चेतक शक्तिहीन हो जाएगा। ये 'क' तो बहुत बलवान होते हैं।

संसार में फँसने का समय आए तो चेतक चेतावनी देता है! स्वरूपज्ञान मिलने के बाद अंदर आलोचना, प्रतिक्रमण, चेतक वगैरह के नये केन्द्र स्थापित होते हैं और 'क' की वंशावली के केन्द्र सिमटने लगते हैं।

व्यापक-व्याप्य

प्रश्नकर्ता : यह समझाइए,

''व्यापक ने 'व्यवस्थित' खोळे छे,
दिव्यचक्षु एनी ल्हाणी माणे छे।'' - नवनीत।

दादाश्री : कविराज क्या कहते हैं कि व्यापक को 'व्यवस्थित' ढूंढ रहा है! पूरे जगत् को 'व्यवस्थित' ही चलाता है और निरंतर 'व्यवस्थित' ही रखता है। उसे कोई बदल नहीं सकता। और 'व्यवस्थित' कभी भी अव्यवस्थित नहीं करता है। यह तो बड़ी रकम को बड़ी रकम से भाग देते हैं। ऐसा दिखता है कि, 'यह खुद का ही बेटा इतनी अधिक शरारत-नुकसान किसलिए करता होगा?' अरे, जितनी वज़नदार तेरी रकम होगी, उतनी रकम से भाग होगा न? छोटी रकम का छोटी रकम से और बड़ी रकम का बड़ी रकम से भाग होता है, परन्तु भाग होता है।

प्रश्नकर्ता : व्यापक यानी ईश्वर?

दादाश्री : यहाँ पद में व्यापक का अर्थ अलग है। सर्वव्यापक शब्द

अलग है और यह शब्द अलग है। जैसे भावक, चेतक हैं, वैसे ही व्यापक है। आत्मा व्याप्य है और ये भीतर व्यापक भरे पड़े हैं। वे व्यापक आत्मा को व्याप्य करवाते हैं। भीतर बहुत तरह के व्यापक बैठे हुए हैं। व्यापक अर्थात् व्यापकता करनेवाले और व्याप्य अर्थात् जैसे यहाँ पर इस घड़े में लाइट हो और उसे बाहर निकाले तो वह बाहर व्याप्य हो जाती है। जितनी जगह मिले उतनी जगह में वह व्याप्य हो जाती है। स्कोप मिलना चाहिए। और व्यापक का अर्थ क्या है? सभी में, जीव-मात्र में व्यापक की तरह रहा हुआ है। वह व्यक्त होने के बाद, स्वरूपज्ञान होने के बाद व्याप्य की तरह रहता है। वास्तव में आत्मा व्याप्य की तरह ही है, परन्तु भक्त तो व्यापक बोलें, तभी काम होगा।

प्रमेय-प्रमाता

आत्मा प्रमाता है। जब कि प्रमेय का अर्थ क्या? कि इन मज़दूरों का प्रमेय कितना? तब कहे, उनका मेन्टेनन्स (खर्चा) हो जाए, बाल-बच्चों की पढ़ाई हो जाए, उतना। अर्थात् कि थोड़ा-बहुत पढ़ाई का भाव और थोड़ा-बहुत संसार का भाव। उतना उसका प्रमेय होता है और इतने भाग में उसका आत्मा प्रमाता की तरह रहता है। प्रमेय के अनुसार प्रमाता होता है। ऐसा करते-करते प्रमेय बढ़ते-बढ़ते सेठ को दस बंगले, मिलें, गाड़ियाँ, पैसे वगैरह का संसारभाव बढ़ता जाए, वैसे-वैसे उसका प्रमेय बड़ा हो गया कहा जाएगा, वैसे-वैसे उसका प्रमाता बढ़ता है। अंत में, वास्तव में प्रमाता किसे कहा जाता है? पूरे ब्रह्मांड में आत्मा प्रकाशमान हो, तब वह वास्तविक प्रमाता कहा जाता है। प्रमेय पूरा ब्रह्मांड है। प्रमेय भाग कितना है? लोक विभाग है उतना ही, अलोक विभाग नहीं। वह अलोक में प्रमाता नहीं है। आत्मा प्रमेय के अनुसार प्रमाता बनता है।

❖❖❖❖❖

(३७)
क्रियाशक्ति : भावशक्ति

क्रियाशक्ति, परसत्ता अधीन

दादाश्री : अभी तो सौ एक जन्म लेने हैं या मोक्ष में जाना है जल्दी से? तो 'ज्ञानी पुरुष' वैसी चिट्ठी लिख दें। वे चाहे सो करें, क्योंकि वे किसी चीज़ के कर्त्ता नहीं होते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' मोक्षदाता कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे तो रास्ता दिखाते हैं, परन्तु फिर करना तो हमें ही है न?

दादाश्री : क्रियाशक्ति खुद के हाथ में नहीं है। सिर्फ भावशक्ति ही खुद के हाथ में है। बहुत हुआ तो हम ऐसा कर सकते हैं कि मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना है, वैसा भाव किया जा सकता है। दूसरा कुछ नहीं किया जा सकता। सिर्फ एक भावशक्ति ही काम में लेने की छूट है। ये तो कहेंगे, 'मैं सूरत जाकर आया।' अरे, गाड़ी सूरत गई या तू गया? फिर कहता है, 'मैं थक गया!' अब गाड़ी सूरत गई और सूरत आया और मैं उतर गया, ऐसा बोले तो थकान भी नहीं लगेगी। 'मैं करता हूँ', वह भ्रांति है। कर्त्तापद, वह भ्रांतिपद है, ऐसा आपको कभी समझ में नहीं आया है?

प्रश्नकर्ता : समझ में नहीं आया।

दादाश्री : कर्त्तापद पूरा ही भ्रांतिपद है। यदि कर्त्तापद कभी होता न तो दाढ़ी वगैरह भी मन को अच्छा लगे, वैसा किया होता। सिर पर तो गंजापन होने ही नहीं देता न कोई फिर? सिर पर 'माथे-रान' होने देते, अर्थात् सिर में जंगल जैसे बाल होने देते, परन्तु यह तो रान (जंगल) भी

हो गए हैं और कुछ जगहों पर तो वीरान (गंजापन) हो गया है! खुद के हाथ में सत्ता ही नहीं है। एक दाढ़ दुखती हो न, तो शोर मचा देता है!

भाव के अनुसार फल आता है।

हमारे हाथ में एकमात्र भाव करने के अलावा दूसरी कोई ताकत नहीं है। हमारा भाव भी व्यक्त नहीं होना चाहिए। भाव किया तो उसके पीछे अहंकार है ही। सिर्फ खुद के मोक्ष में जाने के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का अहंकार करने जैसा नहीं है। जगत्कल्याण का भी अहंकार करने जैसा नहीं है। सभी निमित्त हैं। कोई कर्त्ता नहीं है। निमित्त किसलिए कहलाते हैं? ये निमित्त किस तरह बन जाते हैं? कोई भाव करे कि 'मुझे सबको सीधा करना है' तो उसका भाव नेचर में जमा हो जाता है, नोट हो जाता है, फिर जब नेचर को सीधा करने का समय आए तब उस भाववाले निमित्त के पास नेचर सारे संयोग इकट्ठे कर देता है। और उस भाववाले मनुष्य का, उस भाव के अनुसार सब हो जाता है।

जगत् भाव और अभाव करता ही रहता है। भाव-अभाव ही राग-द्वेष है। हम स्वरूपज्ञान देते हैं, उसके बाद आपको भावाभाव नहीं होते, दोनों हम बंद कर देते हैं। परन्तु जब पहले का भाव फूटे तब होता है कि यह भाव क्यों हो रहा है? वास्तव में वह भाव नहीं है। वह इच्छा है।

भाव-इच्छा, फर्क क्या?

प्रश्नकर्ता : भाव किसे कहेंगे?

दादाश्री : वास्तविक भाव किसे कहते हैं? यह दिखता है वह नहीं, भीतर योजनाएँ गढ़ी जाती हैं, वे हैं और वे दूसरे जन्म में रूपक में आती हैं। भाव से योजनाएँ गढ़ी जाती हैं, परन्तु स्वयं को उसका पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : इच्छा क्या है? मनुष्य को इच्छा क्यों होती है?

दादाश्री : इच्छा तो ज्वार में बाली आए उसके जैसी वस्तु है। बीज डल गया हो तभी ऐसा होता है। जिस चीज़ का भाव हो हमें, उसकी इच्छा

उत्पन्न होती है। इच्छा परिणाम है, भाव कॉज़ेज़ हैं। सभी इच्छाएँ इफेक्ट हैं। हमें नक्की रखना है कि मुझे जगत् की कोई चीज़ नहीं चाहिए, ताकि अंदर सील (पक्का बंद) हो जाए। स्वरूपज्ञान होने के बाद जो इच्छाएँ होती हैं, वे इफेक्ट हैं। और इफेक्ट्स सब भोग लेने पड़ते हैं।

संयोगों का मूल, भाव

प्रश्नकर्ता : संयोग और भाव में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। संयोग स्थूल वस्तु है और भाव तो बहुत सूक्ष्म वस्तु है, हालाँकि भाव भी संयोग ही कहलाते हैं।

इसलिए भगवान महावीर ने कहा है, 'शेषा मे बाहिराभावा, सव्वे संजोग लख्खणा' शेष सभी बाह्यभाव हैं। वे किस तरह से पहचाने जाएँगे? तब कहें, कि संयोग मिलें उन पर से, उनके लक्षण पर से पहचाना जाता है कि ये मेरे बाह्यभाव इस तरह के किए हुए थे।

ये आप मुझे मिले तो किस प्रकार के बाह्यभाव किए हुए होंगे कि आप मिले?

प्रश्नकर्ता : सत्संग के।

दादाश्री : इसलिए यह सत्संग का संयोग मिला और शराब पीने का बाह्यभाव किया होता तो?

अर्थात् भाव के आधार पर हमें संयोग मिलता है। यह संयोग मिला तो 'मैंने क्या भाव किया होगा', उसका हिसाब निकालकर उसका छेदन मूल में से ही कर देना। 'ज्ञानी' भाव पर से मूल ढूंढ निकालते हैं और उसका छेदन कर देते हैं।

भाव अलग - विचार अलग

प्रश्नकर्ता : भाव होते हैं और विचार आते हैं, उनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : भाव को जगत् के लोग जिस प्रकार से समझते हैं, वैसा

वह नहीं है। 'मुझे जलेबी पर खूब भाव है।' वह जो भाव कहते हैं, वह कहीं भी भाव शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है। वास्तव में तो भाव आँखों से दिखे वैसी वस्तु ही नहीं है। जिन्हें ये लोग भाव कहते हैं, वे तो इच्छाएँ हैं।

विचार और भाव उन दोनों का लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : विचार आएँ और भाव हों, उन दोनों का डिमार्केशन नहीं होता है।

दादाश्री : जो विचार आते हैं, वे सभी डिस्चार्ज स्वरूप हैं और भाव चार्ज हैं। विचार कितने भी आते हों, उसमें हर्ज नहीं है, परन्तु 'खुद' ज्ञान में रहे तो।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में जो भाव करें, उनका इसी जन्म में फल मिलता है?

दादाश्री : नहीं। भाव तो कितनी सारी वस्तुएँ इकट्ठी हों, तब उसका द्रव्य होता है। भाव का द्रव्य होते-होते तो कितना ही समय लग जाता है। कर्म का परिपाक हो, तब फल आता है।

हम दूध लेकर आए, यानी खीर बन गई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह तो चूल्हा जलाएँ, पतीली रखें, हिलाते रहें, तब खीर बनती है।

क़ीमत, भाव की ही

संसार में वस्तुएँ बाधक नहीं हैं, आपके भाव बाधक हैं। भगवान ने कहा था कि द्रव्य होगा तो भाव उत्पन्न होगा। वैसा अच्छे काल में था। दान दें तब मन में उल्लास होता था कि, 'ऐसा संयोग फिर से आए।' और इस काल में तो द्रव्य अलग और भाव अलग। दान देते समय भाव में ऐसा होता है कि, 'मैं तो दान देता ही नहीं, यह तो नगरसेठ ने दबाव डाला, इसलिए दिया', इसलिए मन अलग, वाणी अलग और आचरण अलग। इसलिए अधोगति के दौने भरते हैं। वह प्रपंच है इसलिए।

भगवान के दर्शन करने जाएँ तो दर्शन के साथ में जूतों के और दुकान के भी दर्शन करते हैं! द्रव्य भगवान की तरफ और भाव जूतों में या दुकान में! भगवान क्या कहते हैं कि द्रव्य के अनुसार तेरा भाव नहीं है तो तूने धर्म किया ही नहीं और 'मैं धर्म करता हूँ' ऐसा मानना, वह प्रपंच किया कहलाएगा। उससे भारी अधोगति में जाएगा। वीतराग के मार्ग में किसीकी इतना-सा भी घोटाला नहीं चलता।

भाव की तो क़ीमत है। अभी भावपूर्वक होता ही नहीं न? पकौड़ियाँ बनाई, परन्तु भावपूर्वक बनाए हुए की क़ीमत ऊँची है। लोगों को भी भाव पहचानना नहीं आता है। ये तो अभावपूर्वक अच्छा भोजन दें तो टेस्टपूर्वक खाते हैं। और भावपूर्वक रोटी दी हो तो मुँह बिगाड़ते हैं। वास्तव में भावपूर्वक दी गई रोटी हो तो पानी के साथ खा लेनी चाहिए। हम तो भावपूर्वक ज़हर दें तो भी पी जाए! क़ीमत भाव की है। भावपूर्वक व्यवहार चले तो सत्युग ही है। सेठ-नौकर भावपूर्वक रहें तो कितना सुंदर लगता है! भाव तो रहा ही नहीं। अरे, ये मंत्र भी भावपूर्वक बोले तो चिंता नहीं हो, ऐसा है। भावक्रिया, वह जीवंत क्रिया है, भले ही फिर वह निश्चेतन चेतन की हो। और अभाव क्रिया, वह मृत क्रिया है।

किसीको भोजन करवाएँ, इन जैन साधुओं को भोजन दें तो भावपूर्वक देना चाहिए। कुछ तो महाराज को भावपूर्वक देते भी नहीं हैं। महाराज तो वीतराग भगवान के मार्गवाले हैं। उनका तो ध्यान रखना चाहिए न! भीतर आत्मा है। वे तुरन्त ही समझ जाते हैं कि यह भाव से दे रहा है, विनय से दे रहा है या नहीं? आपके घर सहूलियत नहीं हो तो अतिथि को रोटी और सब्ज़ी खिलाना, परन्तु भाव मत बिगाड़ना। व्यवहार तो ऊँचा होना चाहिए न? क्रमिक मार्ग में इस भाव की ही क़ीमत ऊँची मानी जाती है।

'हमसे किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुःख नहीं हो।' इतना ही वाक्य समझ गया न, तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : जब तक शरीर है तब तक किसी जीव को दुःख नहीं

दें, इस तरह से जीना बहुत मुश्किल है।

दादाश्री : मुश्किल है इसलिए ऐसा नहीं कह सकते कि दुःख देकर ही मुझे जीना है। फिर भी आपको तो भावना ऐसी ही रखनी चाहिए कि मुझे किसीको दुःख नहीं देना है। हम भावना के लिए ही जिम्मेदार हैं, क्रिया के लिए जिम्मेदार नहीं हैं।

प्रतिपक्षी भाव

पूरा जगत् प्रतिपक्षी भाव से कर्म बाँधता है। स्वरूपज्ञानी को प्रतिपक्षी भाव नहीं होते। असर होता है, परन्तु कर्म नहीं बंधते! और जब पराक्रम खड़ा हो, तब तो असर भी नहीं होता। असर में क्या होता है कि कोई गालियाँ दे तो 'यह मुझे ऐसा बोला ही क्यों?' ऐसा होता है। परन्तु पराक्रम क्या कहता है कि, 'तेरी भूल होगी इसलिए ही वह कहता है और नुकसान हुआ, वह व्यापार करना नहीं आता है इसलिए।' इस तरह, स्वयं खुद के साथ ही बातचीत करे तो खुद से पहचान होती है, परिचय होता है, 'खुद' की गद्दी पर, शुद्धात्मा की गद्दी पर बैठने का परिचय होता है। यह तो गद्दी पर से तुरन्त ही उठ जाता है! वह अनादिकाल का परिचय है इसलिए और भुगतना अभी बाकी है इसलिए!!

अपनी भूल से, पाप जागें तब यह पंखा चल रहा है, वह आप पर गिर पड़ता है। हिसाब आपका ही है!

मन बिगाड़ना किसे कहा जाएगा? सिर्फ मन नहीं बिगड़ता, पूरा अंतःकरण बिगड़ता है। पूरी पार्लियामेन्ट का प्रस्ताव पास हो, तब प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न होता है। 'सामनेवाले को ऐसा कर डालूँ, वैसा कर डालूँ' ऐसा होता है। यह सिर्फ मन के कारण ही नहीं है। मन तो ज्ञेय है, वीतरागी स्वभाव का है। मन बिगड़ जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। अंतःकरण की पार्लियामेन्ट का प्रस्ताव हो जाना और मन बिगड़ जाना, ये दोनों अलग वस्तुएँ हैं।

ऑफिस में परमिट लेने गए, पर साहब ने नहीं दिया तो मन में होता

है कि 'साहब नालायक है, ऐसा है, वैसा है।' अब उसका फल क्या आएगा, वह जानता नहीं है। इसलिए यह भाव बदल डालो, प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। उसे हम जागृति कहते हैं।

किसी भी देहधारी के लिए टेढ़ा-मेढ़ा बोलें, वह टेप हो ही जाता है। कोई थोड़ा-सा भी छेड़े तो प्रतिपक्षी भाव का रिकॉर्ड बजे बगैर रहता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : भाव में भी नहीं आना चाहिए न?

दादाश्री : आप किसीको छेड़ो तो सामनेवाले को प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न हुए बगैर रहेंगे ही नहीं। सामनेवाला बलवान नहीं हो, तो बोलेगा नहीं, परन्तु मन में तो होगा न? आप बोलना बंद करो तो सामनेवाले के भाव बंद हो जाएँगे फिर।

हमें किन्हीं भी संयोगों में प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न नहीं होते। कभी न कभी उस स्टेज में आए बगैर चारा नहीं है।

हमारी आँखों में दूसरे कोई भाव नहीं दिखते, इसलिए लोग दर्शन करते हैं। किसी भी तरह का खराब भाव आँखों में नहीं पढ़ा जाना चाहिए। तब उन आँखों को देखते ही समाधि का अनुभव होता है! जिसे कुछ चाहिए हो - मान-तान-क्रोध-लोभ-मोह, तो उन्हें देखकर उल्लास नहीं आता।

भाव का फॉर्म

आपका भाव हाज़िर रहना चाहिए। फिर दूसरे सारे एविडेन्स इकट्ठे हो जाएँगे। आप भाव हाज़िर नहीं रखते हैं, उसके कारण कुछ एविडेन्स बेकार चले जाते हैं।

आपको विवाह करना हो तो विवाह करने के भाव हाज़िर रखना। और विवाह नहीं करना हो तो नहीं करने के भाव हाज़िर रखना। जैसे भाव हाज़िर रखोगे, वैसे संयोग इकट्ठे हो जाएँगे, क्योंकि भाव की हाज़िरी वह 'वन ऑफ द एविडेन्स' (अनेक संयोगों में से एक संयोग) है।

अर्थात् वह किसके जैसा है? कोई आलसी किसान हो और खेत में गया ही नहीं हो और बीज ही नहीं डाले हों, तो फिर बरसात क्या करेगी? बरसात हो जाएगी और किसान को कुछ भी फायदा नहीं मिलेगा? और दूसरे किसान ने बीज डाल रखे होंगे तो बरसात होते ही तुरन्त सब उग निकलेगा।

प्रश्नकर्ता : उसका एक ही भाव होता है, भाव बदला ही नहीं होता, फिर भी संयोग उसे नहीं मिलें, तब उसका भाव नष्ट हो जाता है?

दादाश्री : हाँ, ऐसा भी होता है! ऐसा किसी समय ही होता है। वह भाव पूर्वभव का कच्चा भाव कहलाता है, डगमग भाव कहलाता है। नहीं तो ऐसा होता नहीं है। जैसे सड़ा हुआ बीज डालें लेकिन कुछ उगता नहीं, वैसे ही कच्चे भाव में होते हैं। उसका हमें पता चलता है। वह डगमगवाला भाव होता है। 'बीज डालूँ या नहीं डालूँ? बीज डालूँ या नहीं डालूँ?' ऐसा होता रहता है। वैसा कभी ही होता है।

और यह तो मूल वस्तु कही कि हमें अपना भाव रख देना है, तो उसके अनुसार सब मिल जाएगा। हमें दुकान लगानी हो तो नक्की करके रखना चाहिए कि मुझे दुकान लगानी है। फिर संयोग आज, नहीं तो छह महीनों बाद भी मिल आएँगे। परन्तु हमें तैयारी रखनी है, भाव तैयार रखना है। और दूसरा सब 'व्यवस्थित' की सत्ता में है।

नया भाव हमें उत्पन्न नहीं करना है। नया भाव तो आत्मा को होता ही नहीं है न! आत्मा प्राप्त करने के बाद हमारे भावकर्म बंद हो जाते हैं। ये तो पिछले भाव कि जिन्हें भूतभाव कहा जाता है, भूतभाव आते हैं और कार्य हो जाता है और उसका हम *निकाल* कर देते हैं। और भावि भाव तो हम करते नहीं हैं। वर्तमान भाव तो अपना 'स्वभाव' रहता है, वह है! इन्द्रियज्ञान सभी भावनाएँ उत्पन्न करता है और अतिन्द्रियज्ञान भावना उत्पन्न नहीं करता, शुद्धात्मा भावना उत्पन्न नहीं करता।

भाव ही मुख्य एविडेन्स

अज्ञान दशा में भावस्वरूप आत्मा है, भावात्मा है। और ज्ञानदशा में

ज्ञानात्मा है। भावात्मा के पास सिर्फ भावसत्ता ही रही, उसका ही वह उपयोग करता है। दूसरा कुछ नहीं करता है। किए हुए भाव नेचर में जाते हैं। फिर कुदरत *पुद्गल* मिश्रित होकर उसका फल देती है। यह बहुत गूढ़ साइन्स है। आप एक खराब विचार करो कि तुरन्त ही ये बाहर के जो परमाणु हैं, वे भीतर के परमाणुओं के साथ हिसाब मिलाकर-जोइन्ट होकर अंदर दाख़िल हो जाते हैं। और वह हिसाब बैठ जाता है और वैसा ही फल देकर जाता है, फिर ऐसे ही नहीं चला जाता। इसमें आत्मा कुछ भी नहीं करता है। और बाहर ऐसा कोई ईश्वर नहीं है कि आपको फल देने के लिए आए। यह 'व्यवस्थित' शक्ति ही सबकुछ चला लेती है आपका। इसमें आत्मा कुछ भी नहीं करता है, आत्मा खाता नहीं है, पीता नहीं है, भोग नहीं भोगता है, सिर्फ भाव का कर्त्ता है। आत्मा स्वभाव का कर्त्ता बने तो हर्ज नहीं है। यह तो विभाव का कर्त्ता है, इसलिए संसार खड़ा हो गया है। स्वभाव के कर्त्ता होने से मोक्ष होता है।

सौ रानियाँ हों, परन्तु राजा को भीतर भाव उत्पन्न होने लगे कि मुझे तो ब्रह्मचर्य का ही भाव रखना चाहिए, यह अब्रह्मचर्य नहीं होना चाहिए, तो ऐसा सोचते-सोचते भाव स्वरूप हो जाए, तो अगले जन्म में कितना सुंदर ब्रह्मचर्य रहेगा! ब्रह्मचर्य का पालन करना खुद के हाथ में नहीं है। भाव किया है, उसका फल आएगा।

तीर्थंकरों को ज्ञान होने के बाद अंतिम भाव उत्पन्न होता है, जगत्कल्याण करने का। खुद का कल्याण हो चुका, अब दूसरों का किस तरह कल्याण हो, वैसे भाव उत्पन्न होते हैं। भाव के फल स्वरूप भावात्मा वैसा ही हो जाता है। पहले भावात्मा तीर्थंकर बनता है, फिर द्रव्यात्मा तीर्थंकर बनता है। वह भी निर्विकल्प का फल नहीं है, विकल्प का फल है, भाव का फल है।

प्रश्नकर्ता : आपके जैसे योगी पुरुष हों, वे ये सारी सूक्ष्म परमाणुओं की क्रियाएँ देख सकते हैं?

दादाश्री : देख सकते हैं, तभी तो यह पज़ल सोल्व हो सकता है।

नहीं तो यह पज़ल किसी भी तरह से सोल्व नहीं हो सकता।

लोग कहेंगे कि इसने इसे पोइज़न दिया इसलिए यह आदमी मर गया, यह करेक्ट बात नहीं है। पहले अंत:करण में पोइज़न दे दिया जाता है। यह सूक्ष्म स्वरूपवाला पोइज़न है और वह स्थूल स्वरूपवाला पोइज़न है। पहले अंदर क्रिया होती है और फिर बाहर होती है। यह भोजन हम खाते हैं वह हम रोज़ ऐसा नहीं कहते हैं कि यही खाना बनाना और कहें तो उस अनुसार सबकुछ बनता भी नहीं है। यह तो भीतर जिन परमाणुओं को माँगते हैं, तो बाहर 'व्यवस्थित' शक्ति उन्हें मिलवा देती है। यह सारा 'व्यवस्थित' के अनुसार ही प्रबंधित होता है। भीतर कड़वे रस की ज़रूरत पड़ी हो, तभी करेले की सब्ज़ी मिलती है। तब ये अभागे चिल्लाते हैं कि, 'आज करेले की सब्ज़ी क्यों बनाई?' यह भी विज्ञान है।

हमने कहा है, 'माइन्ड इज़ इफेक्टिव, स्पीच इज़ इफेक्टिव, बोडी इज़ इफेक्टिव' (मन असरवाला है, वाणी असरवाली है, शरीर असरवाला है) अब ये इफेक्टिव किस तरह से बनता है? उस पर तो बहुत-बहुत विचार आने चाहिए।

हमें दु:ख होता है वह मन के परमाणुओं का इफेक्ट है, उसमें किसीका दोष नहीं है। मात्र इफेक्ट है। बाहर से कोई दु:ख नहीं देता है। बाहरवाले तो सारे निमित्त हैं। पहले अंतर में होता है, तभी बाहर होता है। इसलिए हम अंतर पर से समझ जाते हैं कि थोड़ी देर बाद ऐसा होनेवाला है। हमें वैसा दिखता है।

इतना तो आपको समझ में आता है न कि यह ज़हर खाने से आदमी मर जाता है, उसमें बीच में भगवान की ज़रूरत नहीं है। भगवान को मारने के लिए आना नहीं पड़ता है। ये परमाणु मारते हैं। वास्तव में मारनेवाले भीतर ही हैं। स्थूल में नहीं दिखें तो जगत् चले ही नहीं! यह जो भ्रांति है, वह स्थूल के कारण ही है सारी! स्थूल ज़हर को तो अच्छे डॉक्टर उल्टी करवाकर निकलवा देते हैं, परन्तु सूक्ष्म में यदि हो तो चाहे जितनी उल्टी करवाएँ, फिर भी मर जाता है। यह विज्ञान बहुत जानने जैसा है।

प्रश्नकर्ता : यानी जो कुछ भी हमें मिलता है, वह पहले अंदर सूक्ष्म में पड़ा हुआ ही है, इसलिए मिलता है?

दादाश्री : तब और कौन देनेवाला है? आपको इतनी सब्ज़ी परोसी हो तो दो टुकड़े नहीं बचे रह जाते हैं थाली में? उसका क्या कारण है? अरे, एक दाना भी बचा पड़ा रहता है या नहीं बचा पड़ा रहता? भीतर जितना हिसाब होगा उतना ही खाया जाएगा। दूसरा सब पराया!

हम अच्छे भाव करें उसके अच्छे फल आते हैं और खराब भाव के खराब फल आते हैं। और भावाभाव नहीं किए और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' हो गया, तब कर्त्ता बंद हो गया। तो पुराना फल देकर चला जाएगा, नया नहीं आएगा। यह साइन्स है, धर्म नहीं है।

धर्म तो जब तक साइन्स में नहीं आएँ, तब तक योग्यता लाने के लिए है। वर्ना साइन्स तो साइन्स है, ठेठ मुक्ति दिलवाता है, वह!

द्रव्य-भाव

प्रश्नकर्ता : भाव उच्च है या द्रव्य?

दादाश्री : भाव को भगवान ने श्रेष्ठ कहा है। द्रव्य उल्टा भी हो सकता है। उसे नहीं देखा जाता, भाव ही देखना है।

द्रव्य-भाव को समझना बहुत मुश्किल है। यह जो लट्टू घूमता है, उसकी डोरी खुलती जाती है वह द्रव्य है और फिर लिपटती है वह भाव है।

शुद्धात्मा में किसी प्रकार का भाव ही नहीं है। प्रतिष्ठित आत्मा के भाव को भाव कहा जाता है। प्रतिष्ठित आत्मा तो ज्ञानी को और अज्ञानी को भी होता है। स्वरूपज्ञान नहीं होता, उसे मन के दृढ़ परिणाम में होता है कि 'मुझे प्रतिक्रमण करना ही है' ऐसा दृढ़ भाव करे तब द्रव्य उत्पन्न होता है और द्रव्य में से भाव उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नकर्ता : भावमन और द्रव्यमन का मतलब क्या है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा करे, तब भावमन की शुरूआत होती है और उसमें से द्रव्यमन रूपक में आता है। लोग जो भावाभाव करते हैं वे 'प्रतिष्ठित आत्मा' के हैं। शुद्धात्मा को भाव होते ही नहीं हैं। जो दिखता है, वह डिस्चार्ज है। चार्ज तो दिखता ही नहीं, पता भी नहीं चलता। भाव ढूंढने से मिलें, वैसे नहीं हैं। बहुत थोड़े लोग भाव को समझ सकते हैं। परन्तु वे फिर, शुद्धात्मा के भाव समझते हैं, इसलिए गड़बड़ कर देते हैं।

ज्ञान के बिना भाव पकड़ में आ सकें, वैसा नहीं है। भाव तो अत्यंत गहन, गहन, गहन - वैसा लाख बार गहन बोलें, तब भी उसकी गहनता का अंत आए वैसा नहीं है।

कोई कहे कि, मैंने यह कार्य करने के लिए बहुत भाव किए हैं। उसे भगवान क्या कहते हैं? वे मन के दृढ़ परिणाम हैं। उन्हें भाव नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : द्रव्यभाव अर्थात् क्या?

दादाश्री : जो खुद धर्म करते हैं उनके बीज डलते हैं। इसलिए गणधरों ने कहा है कि द्रव्यभाव करो। परन्तु इस काल में द्रव्य अलग और भाव भी अलग होते हैं। व्याख्यान सुनने बैठा हो, वह द्रव्य बहुत पुण्यशाली कहलाता है, परन्तु वहाँ बैठे हुए तरह-तरह के भाव कर डालता है कि ऐसे फायदा करूँ और ऐसा करूँ। पहले के काल में द्रव्यभाव सच्चा था, जैसा द्रव्य वैसे भाव। किसीको पट्टा बाँधे तो उसमें एकाकार हो जाता था। यानी इसे द्रव्यभाव डाला कहा जाता है। परन्तु आज के लोग तो पट्टा बाँधते हैं, पर मन में विचार करते हैं कि इसमें मैं कहाँ फँसा? द्रव्यभाव सहित वर्तन, वह सच्चा बीज डालता है।

द्रव्यकर्म अर्थात् फल आया, वह। भावकर्म अर्थात् बीज डाला, वह। द्रव्य में से भाव और भाव में से द्रव्य, ऐसे चलता ही रहता है।

चोरी करते समय अच्छा भाव रखे तो पुण्य का फल मिलता है। ऐसा भाव करे कि, 'मुझे कहाँ यह चोरी करनी पड़ी?' उससे पुण्य बंधता है।

सामायिक करे, लेकिन घड़ी देखता रहे तो उल्टा भावबीज डालता है।

जो द्रव्यक्रिया तू करता है वह तो 'व्यवस्थित शक्ति' करवाती है, उसमें तेरा क्या है? भगवान कहते हैं कि, 'हम द्रव्यक्रिया पर ध्यान नहीं देते।' इस काल में द्रव्य का ठिकाना ही नहीं है, इसलिए सीधा भाव करो तो आगे चलेगा।

भावमन : प्रतिष्ठित आत्मा

प्रश्नकर्ता : भावमन यानी आत्मा कहलाता है?

दादाश्री : भावमन को आत्मा कहें तब तो फिर भटकने का ही होगा न! क्रमिकमार्ग में भावमन को ही आत्मा कहा है और अपने यहाँ अक्रम में भावमन, द्रव्यमन दोनों को खत्म कर दिया है!

प्रश्नकर्ता : भावमन अर्थात् 'प्रतिष्ठित आत्मा' ही न?

दादाश्री : भावमन प्रतिष्ठित आत्मा नहीं है। भावमन से नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। द्रव्यमन है, वास्तव में वह प्रतिष्ठित आत्मा है। द्रव्यमन अर्थात् डिस्चार्ज-मन और भावमन अर्थात् चार्ज-मन।

पूरा जगत् द्रव्य को तोड़ता रहता है, यानी क्रियाओं में बदलाव करता है। अपने अक्रम विज्ञान ने तो द्रव्य और भाव दोनों को एक तरफ रख दिया है, क्रम-व्रम नहीं, सीधा-डायरेक्ट एक घंटे में ही समकित हो जाता है। नहीं तो ऐसे लाख जन्मों तक भी समकित का ठिकाना नहीं पड़ता।

प्रश्नकर्ता : फल तो अनुभव में आता है न उसमें?

दादाश्री : अनुभव में नहीं आए तो काम का ही नहीं। हम शक्कर मुँह में रखें तो अनुभव होना ही चाहिए। 'शक्कर मीठी है' ऐसा पढ़ते रहें तो अनुभव नहीं होता। 'मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ' ऐसे बोलें तो कुछ भी नहीं होता। आत्मा का अनुभव प्रतिक्षण हो तभी काम का।

प्रश्नकर्ता : अनुभव होने के बाद रटने की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : रटने की, या कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। अक्रमविज्ञान समझने की ज़रूरत है। एक बार समझ ले, उसके बाद हमेशा के लिए मुक्ति हो जाती है। नया कर्म चार्ज नहीं हो, ऐसा यह विज्ञान है।

पूरा ही द्रव्यमन फिज़िकल है और भावमन भ्रांति से उत्पन्न होता है। भ्रांति है तब तक भावमन है। द्रव्यकर्म के चक्षु, वे पिछले जन्म के आठ कर्मों के चक्षु लाते हैं, उन चक्षुओं के आधार पर भाव करता है, भावों के आधार पर *पुद्गल* परमाणु को पकड़ लेता है और उसका द्रव्य में परिणाम आता है। यह पूरा साइन्स ही है।

प्रश्नकर्ता : जीवन की अंतिम घड़ी के भाव के अनुसार *पुद्गल* पकड़ता है?

दादाश्री : तुरन्त ही पकड़ लेता है। यह भाव किया वह भ्रांतिभाव है। स्वभावभाव नहीं है। बाहर जो शुद्ध परमाणु हैं कि जिन्हें विश्रसा कहा जाता है, मन के अंदर भ्रांतिभाव हुआ तो वे परमाणु प्रयोगसा के बहाव में चले जाते हैं और जब परिणाम देते है, तब मिश्रसा हो जाते हैं, वे फिर कड़वे-मीठे परिणाम देकर जाते हैं। अभी यह देह मिश्रसा परमाणुओं का बना हुआ है। वे परिणाम देकर जाएँगे। आत्मा लक्ष्य में आए, स्वभावभाव में आए, तब नये बीज नहीं डलते हैं।

कर्म का उदय किसीको भी नहीं छोड़ता। 'व्यवस्थित' के जाल में आने के बाद चारों तरफ से चिमटे आते हैं, सरकमस्टेन्सेस के चिमटे आते हैं। मन को जो अच्छा लगता है, उसमें उसे रुचि हो जाती है। खुद को अच्छा नहीं लगता, परन्तु मन को तो अच्छा लगता है न? इसलिए उसमें खुद तन्मयाकार हो जाता है। मन का स्वभाव कैसा है कि जब तक उसका मनचाहा नहीं हो, तब तक संतोष नहीं होता और मनचाहा हो तो संतोष होता है। संसार के एक्ज़िबिशन में प्रवेश करने जैसा ही नहीं है!!

प्रतिभाव

प्रश्नकर्ता : प्रतिभाव किसे कहते हैं?

दादाश्री : आप कुछ गलत बोल गए और फिर अंदर आपको ऐसा हो कि 'यह गलत हो गया, ऐसा नहीं बोलना चाहिए', वह प्रतिभाव कहलाता है। जो आप बोलते हो, उसके लिए ही आप 'नहीं बोलना चाहिए', वैसा जो भाव करते हो, वह प्रतिभाव कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जागृति ही प्रतिभाव है न?

दादाश्री : भीतर जागृति हो, तो प्रतिभाव होता है। गोली छूट जाने के बाद मन में होता है कि 'नहीं छोड़नी चाहिए।' यह प्रतिभाव हमारा पुरुषार्थ माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को कैसे प्रतिभाव रहते हैं?

दादाश्री : हमें प्रतिभाव नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह गोली छूटने की घटना में ज्ञानी को कैसा रहता है? अंदर की परिणति कैसी रहती है?

दादाश्री : भीतर कुदरती रूप से गोली छूटती ही नहीं, फिर भाव करने को ही कहाँ रहा? और छोटी-छोटी गोलियाँ छूटें उन्हें तो देखते रहते हैं कि 'ओहोहो! ये पटाखे फूट रहे हैं।' उसे भाव नहीं कहते। भीतर शरीर में तो बहुत तरह की गोलियाँ फूटती रहती हैं, उन्हें भाव नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : डिस्चार्ज में तन्यमाकार हो जाए तो फिर दूसरे भाव डलते हैं न?

दादाश्री : हाँ, यह सब जोखिम तो है न! प्रतिक्रमण करे तब शुद्ध हो जाता है। प्रतिक्रमण करे, वह भी परभाव है। उससे पुण्य बंधता है, वह स्वभाव नहीं है। पुण्य बंधता है, पाप बंधता है, वह सब परभाव है। जितना समभाव से *निकाल* हो गया, उतना कम हुआ।

अर्थात् अज्ञानी को प्रतिभाव नहीं होते हैं। उसे जागृति ही नहीं होती न कि यह गलत हो रहा है। 'ज्ञानी' को भी प्रतिभाव नहीं होते, क्योंकि उन्हें भाव ही उत्पन्न नहीं होते, तो प्रतिभाव कहाँ से होंगे? वह संपूर्ण जागृति की निशानी है। और जिन्हें सम्यक्दर्शन हुआ है, ऐसे जागृत महात्माओं को प्रतिभाव होते हैं, उल्टे भाव हों कि तुरन्त जागृति उन्हें दिखाती है और उनके सामने प्रतिभाव उत्पन्न होता है।

स्वभाव-स्वक्षेत्र : परभाव-परक्षेत्र

प्रश्नकर्ता : जब देखो तब आप ऐसे के ऐसे ही लगते हैं। फर्क नहीं लगता, वह क्या है?

दादाश्री : यह कोई फूल है जो मुरझा जाए? ये तो अंदर परमात्मा प्रकट होकर बैठे हैं! नहीं तो जर्जरित दिखेंगे! जहाँ परभाव का क्षय हो गया है, निरंतर स्वभाव जागृति रहती है, परभाव के प्रति जिन्हें किंचित् मात्र रुचि नहीं रही, एक अणु-परमाणु जितनी भी रुचि नहीं रही है, फिर उन्हें क्या चाहिए?

परभाव के क्षय से और अधिक आनंद अनुभव होता है। और आप उस क्षय की ओर दृष्टि रखना। जितना परभाव क्षय हुआ उतना स्वभाव में स्थित हुआ। बस, इतना ही समझने जैसा है, दूसरा कुछ करने जैसा नहीं है। जब तक परभाव है, तब तक परक्षेत्र है। परभाव गया कि स्वक्षेत्र में थोड़े समय रहकर फिर सिद्धक्षेत्र में स्थिति हो जाती है। स्वक्षेत्र, वह सिद्धक्षेत्र का दरवाज़ा है!

❖❖❖❖❖

(३८)
'स्व' में ही स्वस्थता

अवस्था में अस्वस्थ

प्रश्नकर्ता : मिथ्यात्व की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : मिथ्यात्व अर्थात् अवस्था में तन्मयाकार रहे-वह, उसका फल क्या है? अस्वस्थता। और सम्यक्दर्शन की परिभाषा क्या है? स्वस्थ। 'स्व' में मुकाम करनेवाले अवस्था में मुकाम नहीं करते। वे अवस्था को निकाली कहते हैं और 'स्व' में ही निराकुल मुकाम होता है। निराकुलता सिद्ध भगवंत का स्वगुण है। अपना साइन्स इतना सुंदर है कि आपको कुछ भी विचार नहीं करना पड़ता। *निकाल* कहा कि छूट गए!

पूरा जगत् अवस्था में रहा करता है, अवस्था से बाहर नहीं निकल सकता। अवस्था में रहनेवाले को तो रात-दिन अस्वस्थता रहती है। गाड़ी में जगह नहीं मिले तो भी अंदर बेचैनी हो जाती है। अरे, उसमें बेचैन क्यों होता है? कह दे न कि मेरे कर्म के उदय ऐसे हैं। अरे, गाड़ी में बैठे हुए लोगों को देखता रहता है कि कौन खड़ा हो रहा है!!

मिथ्यात्वी की समझ कैसी होती है? अवस्था में ही तन्मयाकार रहता है। गरीबी की अवस्था उत्पन्न हुई तो गरीबी में, श्रीमंताई हुई तो उसमें तन्मयाकार रहता है, ऐसे छाती फुलाकर घूमता रहता है! बुख़ार आए तो उसमें तन्मयाकार हो जाता हैं, मुझसे नहीं चला जाता, कहेगा। मेरे जैसा कहे कि, 'इसके पीछे बाघ छोड़ दो।' तब वह दौड़ेगा या नहीं दौड़ेगा? बेकार ही ये चला नहीं जाता, चला नहीं जाता करके उल्टे नरम हो जाते हैं। जैसा बोले वैसा हो जाता है। क्योंकि आत्मा का स्वभाव कैसा है कि जैसा बोले

वैसा हो जाता है। फिर पैर समझते हैं कि हम चलते नहीं हैं, तो भी कोई डाँटनेवाला नहीं है। हम उन्हें कहें कि, 'नहीं क्यों चलोगे? उसका करार अभी तक पूरा नहीं हुआ है।' ऐसे दोएक बार टोकें तो अपने आप चलेंगे। यह बाघ पीछे पड़े तब क्यों चलते हैं? इस देह को खिलाते हैं, पिलाते हैं, मसालेदार चाय पिलाते हैं, फिर भी नहीं चलेगी?

जिस अवस्था में आया, उस अवस्था का जतन करता रहता है। पूरी ज़िन्दगी मुक्त होता है, परन्तु अंतिम छह महीने जेल में डाल दिया हो तो शोर मचाता है कि, 'मैं क़ैदी हो गया!' शादी करवाए तब सौभाग्यवती का सुख बरतता है, और फिर पति मर जाए तब वैधव्य का दुःख खड़ा हो जाता है। 'मैं तो विधवा हो गई' कहेगी। पिछले जन्म में विधवा हुई थी और फिर वह वापिस सौभाग्यवती हुई ही थी न? शादी और वैधव्य, दूसरा है ही क्या जगत् में?

सभी अवस्थाएँ बदलती हैं। आत्मा उसी रूप में रहता है। आत्मा में बदलाव होता ही नहीं है। वस्तुओं का विनाश होता ही नहीं है। अवस्थाओं का प्रतिक्षण विनाश होता है। जगत् अवस्था में ही जी रहा है। 'मैं चंदू हूँ, यह मेरा बेटा है, यह मेरी पत्नी है' इस तरह अवस्था में ही मुकाम करता है! फिर कहेगा कि, 'मैं बूढ़ा हो गया!' आत्मा तो कहीं बूढ़ा होता होगा? ये सारी आत्मा की अवस्थाएँ नहीं है। प्राकृत अवस्थाएँ हैं। ये किसलिए उत्पन्न हो गई हैं? संयोगों के दबाव से। आत्मा को सिर्फ स्पर्श होने से ही कॉज़ेज़ खड़े हो जाते हैं। वे चार्ज होते हैं और उसका फिर डिस्चार्ज होता है।

पिछले जन्म के बच्चों का क्या हुआ? वे सब अभी तक आपको याद करते हैं। पत्र वगैरह लिखा है उन्हें? यह तो मरने का समय आए, तब कहेगा कि, 'मेरी छोटी बेटी रह गई है!' पिछले जन्म के बच्चों को छोड़कर आया और इस जन्म में 'मेरे बच्चे, मेरे बच्चे' करके उनमें ही तन्मयाकार रहता है। यह तो पिछली अवस्थाएँ निरंतर भूलता रहता है और नई अवस्था में तन्मयाकार रहता है! अवस्थाओं में तन्मयाकार रहे, उसका नाम संसार, वह संसारबीज डालता है और स्वरूप में तन्मयाकार रहे उसका नाम मोक्ष।

इस संसार में कैसा है? कि दु:ख पड़े उसे भी भूल जाता है, सुख आए उसे भी भूल जाता है, बचपन में बैर बाँधा उसे भी भूल जाता है। फिर साथ में बैठकर चाय पीते हैं, वापिस सबकुछ भूल जाते हैं। परन्तु जिस समय जो अवस्था उत्पन्न हुई, उस अवस्था में एकाकार होकर हस्ताक्षर कर देता है। यह हस्ताक्षर किया हुआ फिर मिटता नहीं है। इसलिए ये हस्ताक्षर होते हैं उनका हर्ज है। लोग बात-बात में हस्ताक्षर कर देते हैं। यों ही दबाव डालते जाते हैं, उसमें भी हस्ताक्षर हो जाते हैं। अरे अपनी बेटी कोई उठाकर ले जाए तो उस समय भी हस्ताक्षर नहीं करने चाहिए। लोग अवस्था में ही सारा चित्रण कर देते हैं, मार डालने का भी चित्रण कर देते हैं!

अवस्था : पर्याय

दादाश्री : मनुष्य की कितनी अवस्थाएँ होंगी?

प्रश्नकर्ता : बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था।

दादाश्री : चार ही अवस्थाएँ हैं? मरण अवस्था नहीं कहलाती?

प्रश्नकर्ता : वह फुलपोइन्ट हुआ।

दादाश्री : वह भी अवस्था कहलाती है। गर्भ में आया वह गर्भावस्था हुई। उससे पहले मरणावस्था थी। अर्थात् अवस्थाओं का पूरा चक्कर चलता ही रहता है। आपको तो चार ही अवस्थाएँ लगती हैं न? परन्तु यह सब पाँच-पाँच मिनिट में बदलता रहता है। घड़ीभर में घर के विचार आते हैं, वे दो या तीन मिनिट रहते हैं और वापिस दूसरा विचार आता है। वे सभी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। ये तो बड़ी-बड़ी अवस्थाओं को नाम दिया है। परन्तु इन सारी अवस्थाओं में ही जी रहा है। 'ऑल दीज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स।'

प्रश्नकर्ता : अभी हम तो अवस्था में ही हैं।

दादाश्री : वे अवस्थाएँ फिर समाधानी नहीं होतीं। सभी अवस्थाओं में नि:शंक समाधान रहे, वह ज्ञान कहलाता है। अपना ज्ञान कैसा है कि

हर एक अवस्थाओं में नि:शंक समाधान ही रहता है। यह तो जेब कट जाए तो भी डिप्रेस हो जाता है और कोई फूल चढ़ाए तो टाइट हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अवस्था और पर्याय क्या हैं?

दादाश्री : सारा सापेक्ष ज्ञान अवस्था का ज्ञान है। पर्याय बहुत बारीक, सूक्ष्म वस्तु है और अवस्था मोटी वस्तु है। पाँच इन्द्रियों से अनुभव में आएँ, वे सभी अवस्थाएँ कहलाती हैं और पर्याय ज्ञान से समझ में आ सकते हैं।

हर एक वस्तु अवस्थावाली है। यह पंखा है, वह मूल स्वरूप से पंखा है और अभी उसकी चलने की अवस्था है और फिर बंद रहने की अवस्था होगी। अवस्था विनाशी है और मूल स्वरूप तत्वस्वरूप है, वह अविनाशी है।

हर एक अवस्था जाने के लिए ही आती है। ये जितनी भी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, खराब या अच्छी, शाता वेदनीय या अशाता वेदनीय, परन्तु वे जाने के लिए आती हैं। अवस्थाएँ क्या कहती हैं कि, 'आप मुक्त हो जाओ।' वहाँ हम उपयोगपूर्वक रहें, तो बिल्कुल शुद्ध होकर मुक्त हो जाएँगे। वर्ना वैसा दाग़वाला फिर से आएगा, तो धोना तो हमें ही पड़ेगा न?

❖❖❖❖❖

(३९)

ज्ञान का स्वरूप : काल का स्वरूप

स्वरूपज्ञान का अधिकारी

प्रश्नकर्ता : प्रारब्ध के पाश से बंधे हुए पुरुष को ज्ञान का अधिकार है क्या?

दादाश्री : महावीर भगवान भी प्रारब्ध से ही बंधे हुए थे और उन्हें केवलज्ञान का अधिकार था, तो आपको आत्मज्ञान का अधिकार तो होगा न? प्रारब्ध से हर एक व्यक्ति बंधा हुआ तो होता है, इसलिए ही तो जन्म होता है। अंतिम अवतार भी प्रारब्ध से बंधा हुआ हो तभी होता है।

प्रश्नकर्ता : फिर प्रारब्ध को छोड़ देता है?

दादाश्री : फिर प्रारब्ध नहीं बंधता। हम आपको ज्ञान देंगे फिर आपको प्रारब्ध बंधेगा ही नहीं। इसलिए फिर कर्म डिस्चार्ज होंगे परन्तु नये चार्ज नहीं होंगे, ऐसा यह विज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : सपत्नी ज्ञान लेने का अधिकार है क्या?

दादाश्री : इस काल में किसीका अधिकार देखने जैसा ही नहीं है। इस काल में किसीको अधिकार है ही नहीं। इसलिए हम तो चाहे जो आए उसके लिए खोल दिया है। यह काल कौन-सा है जानते हो? जैन दुषमकाल कहते है और वेदांती कलियुग कहते है? कलियुग अर्थात् क्या? कभी भी चैन नहीं पड़े, वह। 'कल क्या होगा? कल का क्या होगा?' इस तरह चैन नहीं पड़ता। और दुषमकाल मतलब क्या? अति दु:ख उठाकर भी समता नहीं रहती। अब ऐसे काल में अधिकार देखने जाएँ तो किसका

नंबर लगेगा? अधिकारी हैं ही नहीं!!

प्रश्नकर्ता : तो फिर आप ज्ञान देते है वह कृपा का स्वरूप माना जाएगा?

दादाश्री : कृपा से ही काम होगा। भीतर जो प्रगट हो गए है उन 'दादा भगवान' की कृपा ही सीधी उतर जाती है। उससे काम ले लेना है। हर किसीके पात्र के अनुसार कृपा उतरती है, फिर जितना विनयवाला उतनी कृपा अधिक। सबसे बड़ा गुण इस जगत् में कोई हो तो वह विनय गुण!

प्रश्नकर्ता : ऐसी कहावत है न कि कलियुग में मोक्ष जल्दी मिलता है?

दादाश्री : सही बात है। इसका कारण है। कलियुग में लोग पास नहीं होते इसलिए प्रोफेसरों द्वारा निश्चित किया हुआ पढ़ाई का लेवल अधिक नीचे लाना पड़ता है। नहीं तो पास हो सकें, ऐसा होता होगा? कलियुग में मनुष्यत्व की कक्षा एकदम लो (निम्न) हो गई है इसलिए ही आपकी क़ीमत है न? नहीं तो कौन वहाँ पर मोक्ष में घुसने दे इस काल के लोगों को। परीक्षा में किसीको पास तो करना पड़ेगा न, नहीं तो कॉलेज बंद कर देने पड़ें। इसलिए लेवल उतार दिया है।

वर्तमान में बरतें, ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : युग की परिभाषा में यह पहली बार कलियुग आया है?

दादाश्री : हर एक कालचक्र में कलियुग होता ही है। कलियुग अर्थात् क्या कि इस दिन के बाद रात आती है न? वैसे, यह कलियुग है। कलियुग है तो सत्युग को सत्युग कह सकते है। यदि कलियुग नहीं होता तो सत्युग की क़ीमत ही नहीं होती न?

प्रश्नकर्ता : युग के अधीन मनुष्य है या मनुष्य के अधीन युग है?

दादाश्री : ऐसा है न, अभी लोग तो समय के अधीन है। परन्तु मूल जो समय हुआ है वह 'हमसे' ही उत्पन्न हुआ है। आप ही राजा हो और राजा के पीछे उत्पन्न हो चुका हुआ यह सब है।

प्रश्नकर्ता : समय ही भगवान है और समय ही परमेश्वर है?

दादाश्री : समय ही परमेश्वर नहीं होता। नहीं तो लोग 'समय-समय' करते रहते। परमेश्वर तो आप खुद ही हो, उसे पहचानने की ज़रूरत है। काल तो बीच में निमित्त है मात्र।

हममें और आपमें फर्क कितना? हमने काल को वश में किया है। लोगों को तो काल खा जाता है। आपको काल को वश करना बाक़ी है। काल वश में किस तरह होता है? भूतकाल विस्मृत हो गया, भविष्यकाल 'व्यवस्थित' के हाथ में, इसलिए वर्तमान में रहो। तब काल वश में होता है। अपना 'अक्रम' का सामायिक करते-करते वर्तमानकाल को पकड़ना आ जाता है। ऐसे सीधा-सीधा नहीं आता। आप एक घंटे सामायिक में बैठते हो तब वर्तमान में ही रहते हो न!

वर्तमान में रहना मतलब क्या? अभी यदि आप हिसाब लिख रहे हों तो बिलकुल एक्ज़ेक्ट उसमें ही रहोगे न? उस समय भविष्य में जाओ तो हिसाब में भूल हो जाएगी। वर्तमान में ही रहे तो एक भी भूल नहीं हो ऐसा है। प्राप्त वर्तमान को भोगो, ऐसा मैं कहता हूँ। भूतकाल तो चला गया। भूतकाल को तो ये बुद्धिशाली भी नहीं उखाड़ते। और भविष्य का विचार करे, वह अग्रशोच है, इसलिए वर्तमान में रहो। वर्तमान में सत्संग होता है तो वह एकाग्र चित्त से सुनना चाहिए। हिसाब लिख रहे हो तो वह एकाग्र चित्त से लिखो और गालियाँ दे रहे हो तो गालियाँ भी एकाग्र चित्त से दो। वर्तमान में बरते सदा, वे ज्ञानी। लोग भविष्य की चिंता को लेकर और भूतकाल को लेकर वर्तमान नहीं भोग सकते और हिसाब में भूल कर देते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' वर्तमान नहीं बिगाड़ते।

प्रश्नकर्ता : भूत और भविष्य को भूल जाना है?

दादाश्री : नहीं, भूल नहीं जाना है, वर्तमान में ही रहना है। भूलना,

वह तो बोझा कहलाएगा। भूलने से भुलाया नहीं जा सकता और जो भूलने जाएँ वह और अधिक याद आता है। एक व्यक्ति मुझे कह रहा था कि, मैं सामायिक करने बैठता हूँ तब विचार करता हूँ कि 'दुकान आज याद नहीं आए।' उस दिन सामायिक में सबसे पहला धमाका दुकान का ही होता है! ऐसा किसलिए होता है? क्योंकि दुकान का तिरस्कार किया न कि दुकान याद नहीं आए! हमें तो किसीका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। वर्तमान में रहना, वही एक बात है। भूतकाल और भविष्यकाल के साथ हमारा लेना भी नहीं है और देना भी नहीं है। वर्तमान में ही रहे, वही अमरपद कहलाता है। हम वर्तमान में ऐसे के ऐसे ही रहते हैं। रात को उठाओ तब भी ऐसे और दिन में उठाओ तब भी ऐसे ही। जब देखो तब ऐसे के ऐसे ही होते हैं।

कालद्रव्य

प्रश्नकर्ता : काल नाम का द्रव्य किस तरह काम करता है?

दादाश्री : काल तो नैमित्तिक है। एक परमाणु उसका अवकाश भाग छोड़कर जितने काल में दूसरे अवकाश काल में प्रविष्ट होता है, उतने काल को 'समय' कहते हैं। यह संसार समसरण है, निरंतर प्रवाहमान है। थोड़ा भी स्थिर नहीं रहता। बहुत सारे समय का पल बनता है।

हमारे कहते ही आप समझ जाते हो, वह अधिक डेवलपमेन्ट कहलाता है। जितना काल कम ले उतना डेवलपमेन्ट अधिक और अधिक काल ले उतना कम डेवलपमेन्ट कहलाता है। काल सूक्ष्म है। समय सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। हमारा काल समय के नज़दीक का होता है और तीर्थंकरों का समय होता है। आज यदि समय तक पहुँचे तो मोक्ष हो जाए। परन्तु इस काल की विचित्रता है कि समय तक पहुँचा नहीं जा सकता।

❖❖❖❖❖

(४०)
वाणी का स्वरूप
वाणी आत्मा का गुण नहीं है

दादाश्री : यह बोल रहा है, वह कौन बोल रहा है?

प्रश्नकर्ता : आप, दादा भगवान बोल रहे हैं।

दादाश्री : मैं खुद नहीं बोलता हूँ। मेरी बोलने की शक्ति ही नहीं है न! यह तो ओरिजिनल टेपरिकॉर्ड बोल रहा है। उस पर से दूसरे टेपरिकॉर्ड में रिकॉर्ड करना हो तो कर सकते हैं, तीसरा कर सकते हैं, चौथा कर सकते हैं। और तुझे तो ऐसा ही है न कि, 'मैं खुद बोल रहा हूँ।' खुद बोलता है इसीलिए वह पज़ल में है और मैं पज़ल को सोल्व करके बैठा हूँ। तू बोलता है, उसका अहंकार करता है कि मैं बोलता हूँ। बाकी तेरा भी टेपरिकॉर्ड ही बोलता है।

आत्मा बोल सके वैसा है ही नहीं। आत्मा में वाणी नाम का गुणधर्म ही नहीं है। शब्द आत्मा का गुणधर्म नहीं है और *पुद्‌गल* का भी गुणधर्म नहीं है। यदि उसका वह गुण होता तो हमेशा के लिए होता। पर इसका तो नाश हो जाता है। वास्तव में शब्द *पुद्‌गल* का पर्याय है। वह *पुद्‌गल* की अवस्था है। दो परमाणु टकराएँ तो आवाज़ उत्पन्न होती है। इस गाड़ी का होर्न ऐसे दबाए तो क्या होगा? वाणी निकलेगी।

प्रश्नकर्ता : ऐसे दबाने से जो वाणी निकलती है वह तो यांत्रिक वाणी कहलाती है, परन्तु ज्ञानी की वाणी यांत्रिक वाणी नहीं निकली है न?

दादाश्री : हमारी वाणी टेपरिकॉर्ड है और आपकी वाणी टेपरिकॉर्ड

है। मात्र 'ज्ञानी' की वाणी स्यादवाद होती है।

प्रश्नकर्ता : स्यादवाद, वह चेतनवाणी कहलाती है?

दादाश्री : वाणी चेतन हो ही नहीं सकती, फिर वह हमारी हो या आपकी। हाँ, हमारी वाणी संपूर्ण शुद्ध चेतन को स्पर्श करके निकलती है, इसलिए चेतन जैसी भासित होती है।

प्रश्नकर्ता : 'वाणी जड़ है' ऐसा कह सकते हैं क्या?

दादाश्री : 'वाणी जड़ है' ऐसा कह सकते हैं, परन्तु चेतन है वैसा तो नहीं ही कह सकते। गाड़ी का होर्न दबाएँ तो वह बजता है या नहीं बजता? ऐसे दबाया तो अंदर जो परमाणु थे वे भागदौड़ मचा देते हैं, एक-दूसरे से टकराते हैं, उससे आवाज़ होती है यह सारी। बाजे में से कैसा निकलता है? वैसे ही, इस बाजे में से घिस-घिसकर ही निकलता है सारा। यह सब मिकेनिकल है। आत्मा खुद परमात्मा स्वरूप है।

स्याद्‌वाद वाणी

प्रश्नकर्ता : आपकी वाणी, 'ज्ञानी' की वाणी कैसी कहलाती है?

दादाश्री : स्यादवाद वाणी, वह अनेकांत कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : स्यादवाद अर्थात् क्या?

दादाश्री : किसी भी धर्म का किंचित् मात्र प्रमाण नहीं *दुभे,* वैसी वाणी। इस वाणी को वैष्णव, जैन, श्वेतांबर, दिगंबर, स्थानकवासी, पारसी, मुस्लिम, सभी एक्सेप्ट करते हैं। यह एकांतिक नहीं है, अनेकांत है इसमें।

प्रश्नकर्ता : इसे निराग्रही कह सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, कह सकते हैं। इसमें किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : निराग्रही वाणी के लिए आपको सोचकर बोलना पड़ता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं। यदि सोचकर बोलें, तो वह निराग्रही वाणी होगी ही नहीं। यह तो डाइरेक्ट चेतन को स्पर्श करके निकलती है। 'ज्ञानी' की वाणी जागृति सहित होती है। वह सामनेवाले के हित के लिए ही होती है। किसीका हित थोड़ा भी नहीं बिगड़े, उस अनुसार जागृति में रहता ही है।

'ज्ञानी पुरुष' की वाणी उल्लासपूर्वक सुनते रहें, उससे वैसी वाणी होती जाती है। सिर्फ नकल करने से कुछ नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : स्यादवाद वाणी कब निकलती है?

दादाश्री : सभी कर्मों का क्षय हो जाए, क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय हो जाए, तब स्यादवाद वाणी निकलती है। संपूर्ण वीतराग विज्ञान हाज़िर होना चाहिए। आत्मा का स्पष्ट अनुभव हो चुका हो, तभी निकलती है। तब तक सारी बुद्धि की बातें, व्यवहार की बातें मानी जाती है। स्यादवाद वाणी नहीं निकले, तब तक मोक्षमार्ग में उपदेश देना भयंकर जोखिमदारी है।

उपदेश का अधिकारी

उपदेश कौन दे सकता है? सामनेवाला कोई विवाद खड़ा नहीं कर सके, वही। वर्ना अपने मार्ग में चर्चा होती ही नहीं। हमारी पुस्तक समझने का तरीका क्या है? दो लोग एक जैसा नहीं समझते। एक सच्ची समझवाला और दूसरा अधूरी समझवाला होता है। उसमें अधूरी समझवाले ने ज़िद पकड़ी कि 'मेरा ही सच्चा है', तो उसे 'तेरा ही करेक्ट है' कहकर आगे निकल जाओ। सत् की समझ में विवाद नहीं होना चाहिए।

मेरा सच्चा है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। 'मेरा है, इसलिए सच है' ऐसा अंदर होता रहे, वह रोग उत्पन्न हुआ कहलाता है। अपनी सच्ची बात सामनेवाला कबूल करेगा ही। यदि नहीं करे तो हमें छोड़ देना चाहिए। मैं जो बोलूँ वह सामनेवाले का आत्मा कबूल करेगा ही। कबूल नहीं करता, वह उसकी आड़ाई है। क्योंकि यह वाणी मेरी नहीं है। इसलिए इसमें भूल नहीं होती। 'मेरी वाणी है' ऐसा जहाँ पर हो, वहाँ पर वाणी में भूल होती है।

अभी इस काल में उपदेश देने जाएँ तो बंधन हो, वैसा है। कषाय सहित प्ररूपणा वह नर्क में जाने की निशानी है। बहुत हुआ तो मंदकषायी को चला सकते हैं। वर्ना यह तो बहुत ही भारी जोखिम है।

अकषायी वाणी का अर्थ क्या है? वाणी का मालिक 'खुद' नहीं है वह। वाणी का मालिक हो, वह तो क्या कहेगा कि 'मैं कितनी अच्छी वाणी बोला! आपको पसंद आया न?' अर्थात् उसका चेक भुना देता है। हम तो वाणी के मालिक नहीं हैं, मन के नहीं हैं और इस देह के भी मालिक नहीं हैं।

स्यादवादवाणी कब उत्पन्न होती है? अहंकार की भूमिका पूरी हो जाए तब। पूरा जगत् निर्दोष दिखता है, कोई दोषित ही नहीं दिखता! चोर भी हमें दोषित नहीं दिखता। लोग कहते हैं कि चोरी करना गुनाह है, पर चोर क्या समझता है कि चोरी करना मेरा धर्म है। हमारे पास कोई चोर को लेकर आए तो हम उसके कंधे पर हाथ रखकर अकेले में पूछेंगे कि 'भाई, यह बिज़नेस तुझे अच्छा लगता है? पसंद है?' फिर वह अपनी सारी हक़ीक़त बताएगा। हमारे पास उसे भय नहीं लगता। मनुष्य भय के कारण झूठ बोलता है। फिर उसे समझाते हैं कि, 'यह तू करता है उसकी जिम्मेदारी क्या आएगी, उसका फल क्या है, उसकी तुझे खबर है?' और 'तू चोरी करता है' वैसा हमारे मन में भी नहीं रहता। ऐसा यदि कभी हमारे मन में हो तो उसके मन पर असर पड़ेगा। हरकोई अपने-अपने धर्म में है। किसी भी धर्म का प्रमाण नहीं दु:खे, वह स्यादवाद वाणी कहलाती है। स्यादवाद वाणी संपूर्ण होती है। हर एक की प्रकृति अलग-अलग होती है, फिर भी स्यादवाद वाणी किसीकी भी प्रकृति को अड़चनरूप नहीं होती।

'ज्ञानी पुरुष' सभी दवाईयाँ बता देते हैं। रोग का निदान भी कर देते हैं और दवाई भी बता देते हैं। हमें सिर्फ पूछ लेना चाहिए कि 'सच्ची बात क्या है? और मुझे तो ऐसा समझ में आया है' तब वे तुरन्त बता देते हैं, और वह 'बटन' दबाएँ कि चलने लगता है!

धर्म की चर्चा में सामनेवाले को समझाने के तरीके अलग-अलग हैं।

(१) वाणी से खुद का स्व-रक्षण, स्व-बचाव करे। वह एक प्रकार कहलाता है।

(२) सामनेवाले को खुद कन्विन्स करे - वह एक तरीका है। सामनेवाला किसी भी धर्म का पालन करता हो, फिर भी वह सहमत हो जाए, ऐसा बोलना आना चाहिए न? इतनी शक्ति होनी चाहिए न? जितना ज्ञान समझ में आए उतनी शक्ति उत्पन्न होती है। और सामनेवाले को कन्विन्स करते समय थोड़े भी क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होने चाहिए। नहीं तो, फिर सामनेवाला कन्विन्स होगा ही नहीं। कषाय उत्पन्न होना तो कमज़ोरी है।

(३) कुछ लोग कच्चे होते हैं तो खुद सामनेवाले को समझाने जाते हैं, परन्तु सामनेवाले के प्रभाव से खुद ही बदल जाते हैं! सामनेवाले ऐसा-ऐसा पूछते हैं कि खुद उलझ जाता है और मन में ऐसे पलट जाता है कि मुझे तो कोई ज्ञान ही नहीं है।

हृदयस्पर्शी सरस्वती

'ज्ञानी पुरुष' की वाणी मीठी-मधुर, किसीको आघात नहीं पहुँचे, प्रत्याघात नहीं पहुँचे ऐसी होती है। किसीको किंचित् मात्र दुःख नहीं हो ऐसी वाणी निकले, वह सब चारित्र ही है। वाणी कैसे निकलती है उस पर से चारित्रबल पहचाना जा सकता है। बाकी दूसरी किसी चीज़ पर से चारित्रबल पहचाना नहीं जा सकता। यदि बुद्धि स्यादवाद हो तो स्यादवाद जैसे लक्षण लगते हैं, परन्तु संपूर्ण नहीं होते। जब कि ज्ञान-स्यादवाद हो, उसका चारित्र तो वीतराग चारित्र होता है। ज्ञान-स्यादवाद को हर एक धर्म के लोग प्रमाण की तरह स्वीकार करते हैं। उस वाणी में आग्रह ज़रा भी नहीं होता।

यह तो विज्ञान है। जब वाणी सरस्वती स्वरूप हो जाए तब लोगों के हृदय को स्पर्श करती है, तभी तो लोगों का कल्याण होता है। वर्ल्ड में हृदयस्पर्शी वाणी मिलनी मुश्किल होती है। हमारी वाणी हृदयस्पर्शी होती है, उसका एक शब्द ही यदि आपमें सीधा उतर जाए तो वह आपको ठेठ

मोक्ष तक ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसी वाणी किसीको प्राप्त करनी हो तो क्या करे?

दादाश्री : हमें हररोज़ भावपूर्वक माँगना चाहिए कि मेरी वाणी से किसीको दुःख नहीं हो और सुख ही हो। वैसे कॉज़ का सेवन करना चाहिए, तो प्राप्त होगी।

वचनबल, ज्ञानी के

'ज्ञानी पुरुष' के एक-एक शब्द में गज़ब का वचनबल होता है। वचनबल किसे कहते हैं कि मैं कहूँ कि 'सब खड़े हो जाओ', वचन के अनुसार सब लोग चलें, वह वचनबल कहलाता है। वचनबल से वचन सिद्ध होता रहता है। अभी तो वचनबल ही नहीं रहा न? बाप बेटे से कहेगा कि, 'तू सो जा।' तो बेटा कहेगा कि, 'नहीं, मैं सिनेमा देखने जा रहा हूँ।' वचनबल तो किसे कहते हैं कि आपका वचन निकले उस अनुसार ही घर के सब लोग करें।

प्रश्नकर्ता : वचनबल किस तरह प्राप्त होता है?

दादाश्री : वचनबल किस तरह चला गया है? इस वाणी का दुरुपयोग किया इसलिए। झूठ बोले, लोगों को झिड़क दिया, कुत्ते को डराया, प्रपंच किए, उससे वचनबल टूट जाता है। झूठ बोलकर स्व-बचाव करे, सत्य के आग्रह और दुराग्रह करे, तब भी वचनबल टूट जाता है।

बेटे को झिड़के, 'साले, सीधा बैठ।' उससे बेटे के सामने वचनबल नहीं रहता। यदि वाणी ऐसी निकले कि सामनेवाले के हृदय में घाव करे तो दूसरे जन्म में वाणी बिल्कुल बंद हो जाती है, दस-पंद्रह वर्ष तक गूंगा रहता है।

जितना आपको समझ में आए उतना सत्य बोलना। समझ में नहीं आए वहाँ नहीं बोले, उसमें हर्ज नहीं है। तो उतना वचनबल उत्पन्न होगा। 'किसीको दुःख हो वैसा नहीं बोलना है' ऐसा नक्की करना और 'दादा' के

पास से वचनबल की शक्ति माँगते रहना, तो उससे वह प्राप्त होगा। हमारा वचनबल और आपकी दृढ़ इच्छा होनी चाहिए। हमारा वचनबल आपके सर्व अंतराय दूर कर देगा। आपकी परीक्षा होगी, परन्तु पार उतर जाओगे।

मौन तपोबल

प्रश्नकर्ता : मौन को तपोबल कहते हैं, वह किस अर्थ में?

दादाश्री : मौन तपोबल अर्थात् मनुष्य किसी जगह पर मौन नहीं रख सके, वहाँ पर यदि मौन रहे तो वह मौन तपोबल में जाता है। नौकर ने प्याला फोड़ दिया, वहाँ पर मौन रहे, तो वह तप माना जाएगा। इसलिए मौन जैसी सख्ती इस जगत् में कोई नहीं है। यदि बोले तो सारी सख्ती सारी बेकार चली जाती है। सबसे बड़ा तप मौन है। बाप के साथ झगड़ा हो, वहाँ पर मौन रखे तो तप होता है। उस तप में अंदर सबकुछ विलय हो जाता है और उसमें से साइन्स उभरकर आता है। आज तो लोग मौन रखते हैं और दूसरे दिन एकसाथ सारा उफ़ान निकालते हैं! मौन तपोबल तो बहुत काम निकाल देता है। पूरे जगत् का कल्याण कर देता है। इसलिए कवि ने लिखा है न,

'सत्पुरुषनुं मौन तपोबळ,
निश्चय आखा जग ने तारे!' - नवनीत।

इन दादा के पास सबकुछ बोलने की छूट है, फिर भी मौन रहते हैं, वह मौन तपोबल कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : मौन किसे कहते हैं?

दादाश्री : आत्मार्थ जो-जो बोला जाता है, वह सब मौन ही माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : स्थूल बोलना बंद करके मौन का पालन करना हितकारी है?

दादाश्री : स्थूल मौन तो स्थूल अहंकार को बहुत छिन्न-भिन्न कर

देता है। इस संसार का जंजाल ही शब्दों में से खड़ा हुआ है। मौन से तो शक्ति बहुत ही बढ़ जाती है और बाहर की वाणी से लोगों को दु:ख होता है, वह पत्थर की तरह लगता है। मौन के दिन उतना तो बंद होगा न? मौन, वह संयम लाता है। यह स्थूल मौन भी संयम लाता है। वह अहंकार का मौन कहलाता है। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उस प्रकार से जागृत रहे वह शुद्धात्मा का मौन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मौन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : मौन किसे कहा जाता है कि जिसमें नोकषाय नहीं होते, हास्य, शोक, जुगुप्सा वगैरह नहीं होते। भीतर सूक्ष्म वाणी भी नहीं होती। मौन के समय स्थूल तो बोलते ही नहीं और लिखते हैं वह भी वाणी ही है। मौन में लिखते भी नहीं हैं। मौन सभी चंचलता को बंद कर देता है। लिखकर कहना, इशारा करना, कुछ भी नहीं हो, तब वह सच्चा मौन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : हमें अंदर क्रोध आ रहा हो और बाहर मौन हो, तब क्या करें?

दादाश्री : इसलिए ही तो हम कहते हैं कि वाणी से चाहे जैसा बोले, आचरण पागलों जैसा करे, परन्तु अंत में 'तू' भगवान पक्ष में रहना। शैतान पक्ष में यह सब हो चुका हो, परन्तु मन को भगवान पक्ष में रखना। शैतान पक्ष में मत दे दिया तो खत्म हो गया।

प्रश्नकर्ता : इन सभी बातों में मन ही अधिक काम करता है न?

दादाश्री : मन के कारण यह संसार खड़ा हो गया है। एक मन से संसार अस्त होता रहता है और एक मन से उदय होता है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले का व्यू पोइन्ट समझ में नहीं आए तो क्या करें?

दादाश्री : मौन रहो। मौन रहने से बुद्धिहीन मनुष्य भी समझदार माने जाते हैं। कभी कहते हैं कि 'तुझमें बरकत नहीं है।' तब मौन रहना।

और उस समय यदि आप विरोध करने लगे तो वह उसे याद रहेगा और कहेगा कि, 'ये तो बिना बरकत का ही है।'

इस दूषमकाल में वाणी से ही बंधन है। सुषमकाल में मन से बंधन था। ये शब्द नहीं होते न तो मोक्ष तो आसान ही है। इसलिए किसीके लिए एक अक्षर भी नहीं बोल सकते। किसीको गलत कहना, वह खुद के आत्मा पर धूल डालने के समान है। ये शब्द बोलना तो जोखिमदारी है सारी। उल्टा बोले तो उसकी भी भीतर खुद पर धूल गिरती है, उल्टा सोचे तो उसकी भी भीतर खुद पर धूल गिरती है। इसलिए उस उल्टे का आपको प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए, तो उससे छूटा जा सकता है।

जीवंत टेपरिकॉर्ड, कैसी जिम्मेदारी!

ये टेपरिकॉर्ड और ट्रान्समीटर ऐसे-ऐसे तो कितने ही साधन अभी बन गए हैं। तो बड़े-बड़े लोगों को भय लगता ही रहता है कि कोई कुछ टेप कर लेगा तो? अब इनमें तो शब्द टेप होते हैं, उतना ही है। परन्तु मनुष्य का शरीर, मन सबकुछ ही टेप हो जाए, ऐसा है। उसका लोग थोड़ा-सा भी भय नहीं रखते। यदि सामनेवाला सो रहा हो और आप कहो कि 'यह नालायक है', तो वह उसके अंदर टेप हो गया! वह फिर उसे फल देगा। अर्थात् सोते हुए मनुष्य के बारे में भी नहीं बोलते। एक अक्षर भी नहीं बोलते। क्योंकि सबकुछ टेप हो जाए ऐसी यह मशीनरी है! बोलना हो तो अच्छा बोलना कि, 'साहब, आप बहुत अच्छे व्यक्ति हैं' अच्छा भाव रखना, तो उसके फलस्वरूप आपको सुख मिलेगा। परन्तु थोड़ा-सा भी उल्टा बोले, अंधेरे में भी बोले या अकेले में भी बोले, तो उसका फल कड़वा ज़हर जैसा आएगा। यह सब टेप ही हो जानेवाला है। इसलिए अब यह अच्छा टेप करवाओ।

प्रश्नकर्ता : कड़वा तो चाहिए ही नहीं।

दादाश्री : कड़वा तो आपको चाहिए तो बोलना, नहीं चाहिए तो मत बोलना। कोई मारे, फिर भी उसे कड़वा मत बोलना। उसे कहना कि, 'तेरा उपकार मानता हूँ।'

भगवान ने तो कहा है कि इस काल में कोई गालियाँ दे गया हो, तो उसे आप खुद भोजन के लिए बुलाना। इतनी अधिक वाइल्डनेस होगी कि उसे क्षमा ही देना। यदि कोई रिवेन्ज (बदला) लेने गए न, तो फिर वापिस संसार में खिंचेंगे। रिवेन्ज नहीं लेना होता है इस काल में। इस दूषमकाल में निरी वाइल्डनेस होती है। क्या विचार नहीं आएँगे, वह कहा ही नहीं जा सकता। दुनिया से बाहर के विचार भी आते हैं! इस काल के जीव तो बहुत टकराएंगे। ऐसे लोगों के साथ हम बैर बाँधें तो हमें भी टकराना पड़ेगा। इसलिए हम कहें, 'सलाम साहब।' इस काल में तुरन्त माफ़ी दे देनी चाहिए, नहीं तो आपको खिंचना पड़ेगा। और यह जगत् तो बैर से ही खड़ा रहा है।

इस काल में किसीको समझाने जाया जाए, ऐसा नहीं है। यदि समझाना आए तो अच्छे शब्दों में समझाओ कि यदि वह टेप हो जाए, फिर भी जिम्मेदारी नहीं आए। इसलिए पोज़िटिव रहना। जगत् में पोज़िटिव ही सुख देगा और नेगेटिव सभी दुःख देगा। यानी कितनी बड़ी जोखिमदारी है? न्याय-अन्याय देखनेवाला तो बहुत लोगों को गालियाँ देता है। न्याय-अन्याय तो देखने जैसा ही नहीं है। न्याय-अन्याय तो एक थर्मामीटर है जगत् का, कि किसे कितना बुख़ार उतर गया और कितना चढ़ा? जगत् कभी भी न्यायी बननेवाला नहीं है और अन्यायी भी होनेवाला नहीं है। ऐसे का ऐसा ही मिलाजुला चलता रहेगा।

यह जगत् हमेशा से ऐसे का ऐसा ही है। सत्युग में ज़रा कम बिगड़ा हुआ वातावरण होता है, अभी अधिक असर है। रामचंद्रजी के समय में सीता का हरण करनेवाले लोग थे, तो अभी नहीं होंगे? यह चलता ही रहेगा। यह मशीनरी ऐसी ही है पहले से। उसे पता ही नहीं चलता, खुद की जिम्मेदारियों का भान नहीं है, इसलिए गैरजिम्मेदारीवाला मत बोलना। गैरजिम्मेदारीवाला आचरण मत करना। गैरजिम्मेदारीवाला कुछ भी मत करना, सबकुछ पोज़िटिव लेना। किसीका अच्छा करना हो तो करने जाना, नहीं तो बुरे में तो पड़ना ही नहीं और बुरा सोचना भी नहीं। बुरा सुनना भी नहीं किसीका। बहुत जोखिमदारी है। नहीं तो इतना बड़ा जगत् उसमें

मोक्ष तो खुद के अंदर ही पड़ा हुआ है और मिलता नहीं है!!! और कितने ही जन्मों से भटक रहा है!!!

सामान्य व्यवहार में बोलने में हर्ज नहीं है, परन्तु देहधारी मात्र के लिए कुछ भी टेढ़ा-मेढ़ा बोलोगे तो वह अंदर रिकॉर्ड हो जाएगा! इस संसार के लोगों को रिकॉर्ड करना हो तो देर ही कितनी? एक ज़रा-सा छेड़ो तो प्रतिपक्षी भाव टेप होते ही रहेंगे। 'तुझमें कमज़ोरियाँ ऐसी हैं कि छेड़ने से पहले ही तू बोलने लगेगा।'

प्रश्नकर्ता : खराब बोलना तो नहीं है, परन्तु खराब भाव भी नहीं आना चाहिए न?

दादाश्री : भाव नहीं आना चाहिए, वह बात सही है। भाव में आए वह बोले बगैर रहा नहीं जाता। इसलिए बोलना यदि बंद हो जाए न तो भाव बंद हो जाएँगे। ये भाव तो बोली के पीछे रहे हुए प्रतिघोष हैं। प्रतिपक्षी भाव तो उत्पन्न हुए बिना रहते ही नहीं न! हमें प्रतिपक्षी भाव नहीं होते हैं, वहाँ तक आपको भी पहुँचना है। उतनी अपनी कमज़ोरी जानी ही चाहिए कि प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न नहीं हों। और शायद कभी हो गए हों तो आपके पास प्रतिक्रमण का हथियार है, उससे मिटा देना। पानी कारखाने में गया हो, लेकिन बर्फ नहीं बने, तब तक हर्ज नहीं है, बर्फ बन जाने के बाद हाथ में नहीं रहता।

हमसे पत्र में किसीके लिए कुछ गलत लिखा गया हो, परन्तु वह पत्र डाला नहीं हो, तब तक वापिस नीचे लिखा जा सकता है कि ऊपर आपके लिए दो शब्द खराब लिख दिए गए हैं, उस घड़ी मेरे दिमाग़ में कुछ पागलपन आ गया होगा, इसलिए लिख लिया गया, इसलिए कृपया मुझे माफ़ कीजिए। ऐसा लिखो तो सब माफ़ हो जाता है। परन्तु उस घड़ी इनकी इज़्ज़त जाती है, इसलिए नहीं लिखते। ये आबरूदार के चिथड़े सारे! कितने ही कपड़े रखें, तब जाकर इज़्ज़त रहती है। वह भी फिर फट गया हो तो जोड़ लगाना पड़ता है। कपड़ा मैला हुआ हो तो कलह कर देते हैं, 'मेरी सफेद टोपी धोई ही नहीं तुमने, नावछाप पहनता था न, वह?

इस्त्री क्यों नहीं की?' अब इस्त्री के लिए कलह करता है। किसलिए आबरू रखता है यह? नंगा फिरे, फिर भी लोग पूजा करें, वैसी आबरू ढूंढ निकाल।

भीतर अनंत शक्तियाँ हैं। जिस दिशा में ले जानी हो, वहाँ ले जा सकते हो, वैसे हो। रास्ता जानने की ज़रूरत है।

जितनी प्रेममय डीलिंग होगी, बस उतनी ही वाणी इस टेपरिकॉर्ड में पुसाए वैसी है, उसका यश अच्छा मिलेगा।

शास्त्रों ने कहा है कि खराब मत बोलना, खराब मत सोचना। हम सोचते हैं कि ऐसा क्यों गाते रहते होंगे ये? ये मशीनरी ही ऐसी है कि सब टेप हो जाता है। फिर जब पुरावा (प्रमाण) आ मिलें तब फज़ीता होता है।

प्रश्नकर्ता : पुरावे संयोग के रूप में बाहर आते हैं?

दादाश्री : हाँ। संयोग इकट्ठे हो जाएँ तब बाहर आता है और कुछ पुरावे हमें अंदर ही अंदर परेशान करते हैं। वह भी अंदर संयोग इकट्ठे हो जाएँ तब। वे अंदर के संयोग कहलाते हैं। वे 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' हैं।

घर में पत्नी को डाँटें तो वह समझता है कि 'किसीने सुना ही नहीं न, यह तो यों ही है न?' छोटे बच्चे हों तो उनकी उपस्थिति में पति पत्नी चाहे जैसा बोलते हैं। वे समझते हैं कि यह छोटा बच्चा क्या समझनेवाला है? अरे, अंदर टेप हो रहा है, उसका क्या? वह बड़ा होगा तब वह रिकॉर्ड हो चुका बाहर निकलेगा!

प्रश्नकर्ता : जिसे टेप में रिकॉर्ड नहीं करना हो उसके लिए क्या रास्ता है?

दादाश्री : कोई भी स्पंदन नहीं करना चाहिए। सबकुछ देखते ही रहना चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं है न? यह भी मशीन है और फिर पराधीन है। इसलिए उसे हम दूसरा रास्ता बताते हैं कि यदि टेप हो जाए तो तुरन्त मिटा देना, तो चलेगा। यह प्रतिक्रमण उसे मिटाने का साधन है।

उससे एकाध जन्म में परिवर्तित होकर ऐसा सब बोलना बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठ जाने के बाद निरंतर प्रतिक्रमण चलते ही रहते हैं।

दादाश्री : इसलिए आपकी जिम्मेदारी नहीं रहती।

हमें तो कविराज के पद एक्ज़ेक्ट उसी आवाज़ में, उसी राग में, दो-दो, तीन-तीन घंटों तक निरंतर सुनाई ही देते रहते हैं। वह क्या होगा? वह तो मशीन है। यह भी बहुत बड़ा साइन्स है। वह टेपरिकॉर्ड मनुष्य ने बनाया हुआ है और यह तो अनौपचारिक है। मनुष्य से बन ही नहीं सके, वैसी यह मशीन है। इसमें इलेक्ट्रिक करन्ट नहीं चाहिए, बेटरी नहीं चाहिए। रात-दिन, बरसात हो या गरमी पड़े, बर्फ पड़े फिर भी यह मशीन चलती ही रहती है।

पंद्रह वर्ष पहले हमने किसी व्यक्ति को देखा हो, उसे आज देखें, फिर भी वह हमें फिर से याद आ जाता है कि इसे देखा था। ऐसी यह मशीन है।

प्रत्येक परमाणु में टेप करने की शक्ति है। आँखों को फिल्म खींचने की शक्ति है, अंदर अपार शक्तियाँ हैं। इस एक अंदर की मशीन पर से दूसरी सब अपार मशीनें बनती हैं। यानी यह मशीन बहुत ज़बरदस्त पावरफुल है।

जब तक जगत् व्यवहार की आपको ज़रूरत है, तब तक मनोहर लगे वैसा बोलो। जिसके वाणी, वर्तन और विनय मनोहर हो गए, वह प्रेमात्मा हो गया। परन्तु वह आए किस तरह? वाणी ऐसी बोलते हैं कि सामनेवाला चाय दे रहा हो, वह भी नहीं दे।

कोई अनजाने गाँव में हम गए हों और वहाँ पर बोलते रहें कि, 'ये सारे लोग ऐसे ही गए-बीते हैं।' ऐसा गाते रहें तो शाम को खाना मिलेगा क्या? इसके बदले तो 'आप बहुत अच्छे लोग हो।' ऐसा कहें तो सामने से लोग पूछेंगे कि 'आपने कुछ खाया या नहीं?'

इस काल में तो मज़ाक भी नहीं कर सकते। एक शब्द भी नहीं बोल सकते। मोटे हों तो उन्हें मोटे नहीं कह सकते। लम्बे हों तो उन्हें लम्बे नहीं कह सकते। ये लोग तो प्लास्टिक जैसे हो चुके हैं। अपने लोग तो चाहे जिसकी निंदा करते हैं। सिर्फ मनुष्य का तो ठीक है परन्तु इन फ्रूट्स की भी निंदा करते हैं। यह बादीवाला है, कहेंगे। इससे गर्मी हो जाएगी। अरे, तुझे बादी होगी, दूसरे को नहीं। लेकिन इनकी भाषा ही टेढ़ी है, वहाँ क्या?

बोल से ही जगत् खड़ा हुआ है और बोल से ही जगत् बंद हो जाएगा।

इन सुधरे हुए घरों में-सभ्य लोगों के यहाँ असभ्य वर्तन के दुःख नहीं होते, असभ्य वाणी के दुःख होते हैं। इन लोगों के घर पर कोई पत्थर मारता होगा? नहीं, वचनबाण मारते हैं। अब यह पत्थर मारे वह अच्छा या वाक्बाण मारे वह अच्छा?

प्रश्नकर्ता : पत्थर अच्छा।

दादाश्री : अपने यहाँ के लोग पत्थर पसंद करते हैं और वाणी चोट नहीं पहुँचाती फिर भी उसे पसंद नहीं करते। जो लगे और खून निकले, जलन हो, डॉक्टर को बताकर उसका इलाज किया जा सकता है। वह घाव भर जाएगा, परन्तु यह शब्द का घाव लगे तो नहीं भरता। पंद्रह-पंद्रह वर्ष हो जाए फिर भी वह घाव जलता ही रहता है! उसका क्या कारण है? यह खुद बोल रहा है ऐसा मान लिया है इसलिए। हम गारन्टी देते हैं कि जीव-मात्र की वाणी रिकॉर्ड है। यह हमारी भी रिकॉर्ड है न! यह रिकॉर्ड बज रहा हो कि 'चंदूलाल अच्छे व्यक्ति नहीं है, अच्छे व्यक्ति नहीं है।' तो आपको गुस्सा आएगा?

प्रश्नकर्ता : वह तो मशीन है न?

दादाश्री : तो ये मनुष्य बोलते हैं वह टेपरिकॉर्ड ही बोल रहा है। आपके शब्द को 'रिकॉर्ड' मानोगे और सामनेवाले के शब्द को भी 'रिकॉर्ड'

मानोगे तब हल आएगा। इस जगत् को जीतने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। रिकॉर्ड कहा, तब फिर निर्दोष हो गए!

अज्ञान दशा में ऐसा लगता है कि 'यह मुझे ऐसा कहता रहता है, वह मुझसे किस तरह सहन होगा?' तब तक रोग कम नहीं होता। हमें सहन करना ही नहीं है। मात्र समझ लेने की ज़रूरत है कि यह रिकॉर्ड है। यदि आप वाणी को रिकॉर्ड-स्वरूप नहीं मानोगे तो आपकी वाणी वैसी ही निकलेगी। इसलिए कार्य-कारण, कार्य-कारण चलता ही रहेगा।

वाणी तो पूरा थर्मामीटर है।

यह विज्ञान ऐसा है कि निवेड़ा ला देता है। कोई हमें झिड़के, हम पर हँसे तो हम भी हँसने लगें, हम जानते हैं कि यह रिकॉर्ड ऐसी बज रही है। सामनेवाला बोलेगा किस तरह? वही लट्टू है, फिर। इस बेचारे पर तो दया रखने जैसी है!

प्रश्नकर्ता : इतना उस समय लक्ष्य में नहीं रहता है।

दादाश्री : पहले तो 'वाणी रिकॉर्ड है' ऐसा पक्का करो। वाणी रिकॉर्ड है, रिकॉर्ड है, रिकॉर्ड है.... 'स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन है।' वाणी बोलनेवाले के हाथ में भी नहीं है और सुननेवाले के हाथ में भी नहीं है। वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं। ऐसी उड़ती हुई आतशबाज़ियों में कौन हाथ डाले?

किसी भी बात दो मिनिट से अधिक खिंचे तो वहाँ से भगवान चले जाते हैं! बात उलझी की भगवान चले जाते हैं। बातचीत करने में हर्ज नहीं है, परन्तु उसे पकड़ना नहीं चाहिए। पकड़ा तो फिर बोझा बढ़ जाता है।

वाणी, वह अहंकार का स्वरूप

वाणी मात्र खुला अहंकार है। जो बोलते हैं, जितना बोलते हैं, वह सभी खुला अहंकार है। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' जो स्यादवाद वाणी बोलते हैं, उस समय उनका अहंकार नहीं होता। परन्तु वे जब दूसरा कुछ बोलते हैं तो उनका भी अहंकार ही निकलता है। उसे निकलता हुआ अहंकार, डिस्चार्ज अहंकार कहा है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बिना अहंकार की वाणी निकलती है न?

दादाश्री : वह निर्जीव अहंकार कहलाता है। वाणी में सजीव अहंकार हो, तो वह वाणी सामनेवाले को चोट पहुँचाएगी। हमारी वाणी निर्ममत्व और निर्‌अहंकारी होती है, इसलिए सभी को आनंद आता है।

वाणी पर से कितने परिमाण में और कैसा अहंकार चार्ज हुआ था वह पता चलता है। बिना स्यादवाद के जितने बोल हैं, वह सब अहंकार ही है। आचरण में यों तो बहुत अहंकार नहीं दिखता है। वह तो कभी विवाह में गए हों, तब छाती फूल जाती है, तभी दिखता है।

'मैं कैसा बोला' वह वाणी का परिग्रह है। 'मैं बोल रहा हूँ', वह जो भान है, उससे नया बीज डलता है।

प्रश्नकर्ता : साहजिक वाणी अर्थात् क्या?

दादाश्री : जिसमें किंचित् मात्र अहंकार नहीं है वह। इस वाणी का एक सेकन्ड के लिए भी मैं मालिक नहीं बनता हूँ, इसलिए हमारी वाणी साहजिक वाणी है।

आत्मा सचराचर है। सचर में तीन चर हैं। आचार, विचार और उच्चार। ये तीन यदि नोर्मेलिटी में हों तो हर्ज नहीं है। ये तीन नोर्मेलिटी में हों तो मनुष्य की सुगंध आती ही है। मनुष्य की सबसे बड़ी परीक्षा कौन-सी? उसके आचार पर से परीक्षा मत करना। उसके विचार पर से परीक्षा मत करना। उसकी वाणी पर से परीक्षा करना!

वीतराग वाणी के बिना, नहीं कोई उपाय

भगवान से किसीने पूछा, 'मोक्ष जाने का साधन क्या है?' तब उन्होंने कहा कि, 'वीतराग वाणी के बिना और कोई उपाय नहीं है।' वह वाणी सिद्ध वाणी कहलाती है, सामनेवाले में उग निकलती है।

प्रश्नकर्ता : वीतराग वाणी का प्रमाण क्या है?

दादाश्री : वीतराग वाणी अर्थात् हर एक का आत्मा कबूल करता ही है, हर एक धर्म के लोग उसे कबूल करते ही हैं। सिर्फ कोई टेढ़ा हो, वही कबूल नहीं करता। वीतराग वाणी आत्मरंजन करवानेवाली होती है, दूसरी सभी वाणियाँ मनोरंजन करवाती हैं। वीतराग वाणी सुनते ही बिल्कुल नई ही लगती है, अपूर्व लगती है। अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी भी सुनी नहीं हो, पढ़ी नहीं हो, वैसी बात होती है। वीतराग के वचन किसे कहते हैं कि जिसे वादी-प्रतिवादी दोनों क़बूल करें। प्रतिवादी भी क़बूल करे कि, 'बात सही है, पर हमें यह बात पुसाती नहीं।'

वाणी का रिकॉर्डिंग

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि यह मैं नहीं बोलता हूँ, परन्तु टेपरिकॉर्ड बोल रहा है, तो वह किस तरह, वह समझाइए।

दादाश्री : उसके गुणधर्म पर से। इसमें आत्मा के गुणधर्म नहीं हैं। *पुद्‌गल* के भी गुणधर्म नहीं हैं। वह *पुद्‌गल* की अवस्था है। वाणी अहंकार की प्रेरणा से टेप होती है। अहंकार खुद उसे टेप नहीं करता। मात्र उसकी प्रेरणा से टेप होता है। अंदर अहंकार प्रेरणा देता है, कोर्ट में ऐसे बोलना है, वैसे बोलना है, उसके बाद वैसी ही रिकॉर्ड बजती है।

प्रश्नकर्ता : आपकी वाणी कब टेप हुई होगी?

दादाश्री : पिछले जन्म में टेप हुई थी, वह इस जन्म में बोली जा रही है।

प्रश्नकर्ता : वाणी, वह सूक्ष्म में से स्थूल हुआ, वह है?

दादाश्री : हाँ, सूक्ष्म में से स्थूल हुआ है।

प्रश्नकर्ता : शुरूआत में सूक्ष्म कहाँ से खड़ा हुआ?

दादाश्री : वह तो उस स्थूल में से वापिस सूक्ष्म उत्पन्न होता है। स्थूल हो उसमें राग-द्वेष होने से वापिस फिर नया सूक्ष्म उत्पन्न होता है। यदि एक ही जन्म वीतराग रहा तो खत्म हो गया सबकुछ! परन्तु वापिस फिर बीज डालता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : आप जो बोलते हैं, उस भाषा को समाधि भाषा नहीं कह सकते?

दादाश्री : आपको समाधि भाषा कहना हो तो समाधि भाषा कहो, स्यादवाद कहना हो तो स्यादवाद है। हमारी भाषा किसीको भी दुःखदायी नहीं होती, सुखदायी हो जाती है हर एक के लिए। यह वाणी हमारी मालिकी की है ही नहीं। अहंकार संपूर्ण शून्य हो जाए, तब रिकॉर्ड शुद्ध हो जाती है। हमें ज्ञान हो जाने के बाद हमारी रिकॉर्ड शुद्ध हो गई।

प्रश्नकर्ता : वाणी रिकॉर्ड है, ऐसा कोई कब कह सकता है?

दादाश्री : जब मुँह पर भावाभाव नहीं दिखें, तब वाणी का मालिकीपन छूट गया और वहीं पर अपना 'एन्ड' आता है!

वाणी का 'चार्ज पोइन्ट'

प्रश्नकर्ता : ये सारी डिस्चार्ज टेप है, तो नई टेप किस तरह से बनाएँ?

दादाश्री : ये सारी बातें करते हो, उसके पीछे-पीछे नई टेप बनती रहती है। वह भाव से टेप होती है। जैसा 'हमारा' भाव हो, उस अनुसार टेप हो जाता है। मेरा भाव बोलने में कैसा है? 'मुझे आपका अपमान करना है' तो वैसा टेप हो जाएगा, 'मान देना है और प्रेम से बरताव करना है' तो वैसा टेप हो जाएगा। अर्थात् भाव पर से टेप हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : भाव डालें, तब नया तैयार होता है?

दादाश्री : हाँ और क्या, भाव डलें तब नया टेप होता है। फिर बदलने जाएँ तो कुछ नहीं होगा। यह वाणी, *पुद्‌गल* का धर्म नहीं है, यह औपचारिक वस्तु है। यानी पिछले जन्म के जो भाव हैं, गत भाव हैं, वे अभी भीतर उदय में आते हैं और उसी अनुसार तुरन्त ही टेप हो जाता है और शब्द निकलते हैं। यह काम बहुत स्पीडी हो जाता है। यह आश्चर्य है! यह वाणी निकलती है, उसमें मूल भाव नहीं हैं, गत भाव हैं। गत भाव

डिस्चार्ज भाव हैं और उसके आधार पर वाणी निकलती है। इसलिए वाणी, वह डिस्चार्ज का भी डिस्चार्ज है। और मन, वह प्योर डिस्चार्ज है। डिस्चार्ज भाव अर्थात् निर्जीव भाव।

प्रश्नकर्ता : वाणी की मूल टेप किस तरह से बनी?

दादाश्री : आत्मा को परमाणुओं के संयोग मिल जाते हैं और वहाँ चार्ज हो जाता है। आत्मा की हाज़िरी में भावाभाव के स्पंदन होते हैं, उसमें इगोइज़म मिल जाए, तब वह स्पंदन टेप हो जाता है।

वाणी का ऐसा है कि वह दो व्यू पोइन्ट 'एट ए टाइम' नहीं बता सकती। इसलिए व्यक्त करने के लिए दूसरा वाक्य दूसरी बार बोलना ही पड़ता है। 'दर्शन' में एट ए टाइम समग्र प्रकार से देखा जा सकता है, परन्तु उसका वर्णन करना हो तो कोई भी व्यक्ति एट ए टाइम व्यक्त नहीं कर सकता। इसलिए वाणी स्यादवाद कहलाती है।

मंत्र बोलना स्थूल है। स्थूल का फायदा मिलता है, परन्तु फिर सूक्ष्म में जाना चाहिए। 'दादा भगवान को नमस्कार करता हूँ' ऐसा बोलने के बाद 'दादा' दिखने चाहिए, फोटो के बिना भी 'दादा' दिखने चाहिए। फिर सूक्ष्मतम में जाना चाहिए और सूक्ष्मतम में तो तुरन्त फल मिले, ऐसा है!

जहाँ प्रकट दीपक, वहीं काम होता है

आत्मा नहीं जानने से यह सब जगत् निम्न स्तर पर चला गया है। यह चलता-फिरता दिखता है, उसमें ऐसा मानते हैं कि आत्मा के बिना कुछ भी नहीं चल सकता। परन्तु जिसे वे चेतन कहते हैं, वह चेतन नहीं होता है। हम उसे 'निश्चेतन-चेतन' कहते हैं। वह सच्चा चेतन नहीं है, डिस्चार्ज चेतन है, चाबी भरा हुआ चेतन है। वास्तविक चेतन तो अंदर है, जो निरंतर स्थिर है और अचर है और निश्चेतन चेतन तो सचर है। इसलिए इस जगत् को सचराचर कहा है। जो विनाश होनेवाला है वह सचर और जो निरंतर है वह अचर।

इसलिए तमाम शास्त्रों में लिखा है कि आत्मज्ञान जानो, परन्तु

आत्मज्ञान जाना जा सके वैसा नहीं है। वह तो पूर्व का बहुत कुछ करते-करते आया हो तो प्रकट होता है, या फिर किसी 'ज्ञानी पुरुष' के पास से स्वयं को प्रकट हो जाता है! वर्ना तो आत्मज्ञान जाना जा सके ऐसी वस्तु नहीं है। सारे शास्त्र जान ले, परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता। कितने ही शास्त्र मौखिक होते हैं परन्तु उससे आत्मा का पता नहीं चलता, उसे पता चले तो शब्दों से पता चलता है। वह कैसा होता है? कि 'आत्मा ऐसा है, ऐसा है', ऐसा रहता है। अरे, तू ऐसा कह न कि 'मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ!' तब वह कहता है कि, 'नहीं, वैसा मुझसे कैसे कहा जा सकता है?' अर्थात् जो 'उस' रूप हो चुका हो वही बोल सकता है कि, 'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ, अनंत दर्शनवाला हूँ, अनंत शक्तिवाला हूँ।' आप ऐसा बोलते हो या नहीं बोलते?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बोलते हैं।

दादाश्री : क्योंकि आप 'उस' रूप हो चुके हो।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, आत्मा की पहचान तो जिसने पहचाना हो वे ही करवा सकते हैं न? दूसरा कोई नहीं करवा सकता न?

दादाश्री : इसलिए कहा है न कि आत्मज्ञानी को देहधारी परमात्मा के रूप में जान। पूर्व के ज्ञानी कह गए हैं कि 'ज्ञानी पुरुष' देहधारी रूप में परमात्मा हैं, इसलिए वहाँ पर काम निकाल लेना। 'ज्ञानी पुरुष' के अंदर ही आत्मा प्रकट हुआ है, जो जानने जैसा है। तुझे आत्मा जानना हो तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास जा। दूसरा कोई भी शास्त्र का या पुस्तकों का आत्मा नहीं चलेगा। पुस्तक के अंदर केन्डल का चित्र बनाया हो, वह दिखता ज़रूर है कि केन्डल ऐसा होता है, परन्तु उससे उजाला नहीं होता। उससे कुछ होता नहीं है। आत्मा जानने के लिए तो प्रत्यक्ष 'ज्ञानी पुरुष' से भेंट होनी चाहिए, तभी 'काम' होता है।

जय सच्चिदानंद

आप्तवाणी में रखे गए गुजराती शब्दों के हिन्दी समानार्थी शब्द

अटकण : जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे
अजंपा : बेचैनी, अशांति, घबराहट
अणहक्क : बिना हक़ का
आरा : कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा
अबंध : बंधन रहित
'ऑन' का व्यापार : मूल क़ीमत से ज़्यादा में बेचना
उपाधि : बाहर से आनेवाले दुःख
उपलक : सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस, नाटकीय, औपचारिक
ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक
कल्प : कालचक्र
कढ़ापा : कुढ़न, क्लेश
गोठवणी : सेटिंग, प्रबंध, व्यवस्था
घटमाळ : श्रृंखला या चक्र
घेमराजी(वाला) : अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने
चीकणी फाइल : गाढ़ ऋणानुबंधवाले व्यक्ति
चोविहार : सूर्यास्त से पहले भोजन करना
तायफ़ा : फज़ीता
तंतीली वाणी : विवादवाली, तीखी, चुभनेवाली वाणी
तरछोड़ : तिरस्कार सहित दुत्कारना
दुभना : आहत होना
नोंध : अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना
निकाल : निपटारा
नियाणां : अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक वस्तु की कामना करना
पुद्‌गल : जो पूरण और गलन होता है
पोतापणुं : मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन
भोगवटो : सुख-दुःख का असर
राजीपा : गुरजनों की खुशी
लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव
सिलक : जमापूँजी
शाता-अशाता : देह का सुख परिणाम-देह का दुःख परिणाम)
गच्छ : सम्प्रदाय का एक वर्ग
संवर : कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना
आश्रव : कर्म के उदय की शुरुआत
निर्जरा : कर्म का अस्त होना
अकाम निर्जरा : नए कर्म का बंधन होकर पुराने कर्म का अस्त होना
संवरपूर्वक निर्जरा : दुबारा कर्म बीज डले बिना कर्मफल पूरा होना

शुद्धात्मा के प्रति प्रार्थना

(प्रतिदिन एक बार बोलें)

हे अंतर्यामी परमात्मा! आप प्रत्येक जीवमात्र में बिराजमान हो, वैसे ही मुझ में भी बिराजमान हो। आपका स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है।

हे शुद्धात्मा भगवान! मैं आपको अभेद भाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानतावश मैंने जो जो ★★ दोष किये हैं, उन सभी दोषों को आपके समक्ष ज़ाहिर करता हूँ। उनका हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ और आपसे क्षमा याचना करता हूँ। हे प्रभु ! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँ, ऐसी आप मुझे शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे शुद्धात्मा भगवान! आप ऐसी कृपा करो कि हमें भेदभाव छूट जाये और अभेद स्वरूप प्राप्त हो। हम आप में अभेद स्वरूप से तन्मयाकार रहें।

★★ जो जो दोष हुए हों, वे मन में ज़ाहिर करें।

प्रतिक्रमण विधि

प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में, देहधारी (जिसके प्रति दोष हुआ हो, उस व्यक्ति का नाम) के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे शुद्धात्मा भगवान, आपकी साक्षी में, आज दिन तक मुझसे जो जो ★★ दोष हुए हैं, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ। मुझे क्षमा करें। और फिर से ऐसे दोष कभी भी नहीं करूँ, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ। उसके लिए मुझे परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

★★ क्रोध-मान-माया-लोभ, विषय-विकार, कषाय आदि से किसी को भी दु:ख पहुँचाया हो, उस दोषो को मन में याद करें।

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जिला : गांधीनगर, गुजरात - ३८२४२१. फोन : (०७९) ३९८३०१००, email : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८००१४. फोन : (०७९)२७५४०४०८, २७५४३९७९

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी, पोस्ट : मालियासण, जिला : राजकोट. फोन : ९९२४३४३४७८

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, सहयोगनगर के पास, एयरपोर्ट रोड, भुज (कच्छ), गुजरात. संपर्क : ०२८३२ २३६६६६

मुंबई : ९३२३५२८९०१ **पुणे** : ९८२२०३७७४०

वड़ोदरा : (०२६५)२४१४१४२ **बेंगलूर** : ९३४१९४८५०९

कोलकता : ०३३-३२९३३८८५

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institute : Dr. Bachu Amin,** 100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606. **Tel :** 785-271-0869, E-mail : bamin@cox.net
Dr. Shirish Patel, 2659, Raven Circle, Corona, CA 92882, Tel. : 951-734-4715, **E-mail :** shirishpatel@sbcglobal.net

U.K. : **Dada Centre**, 236, Kingsbury Road, (Above Kingsbury Printers), Kingsbury, London, NW9 0BH, **Tel. :** 07956476253, **E-mail:** dadabhagwan_uk@yahoo.com

Canada : **Dinesh Patel,** 4, Halesia Drive, Etobicock, Toronto, M9W 6B7. **Tel. :** 416 675 3543 **E-mail:** ashadinsha@yahoo.ca

Canada : +1 416-675-3543 **Australia** : +61 421127947

Dubai : +971 506754832 **Singapore** : +65 81129229

Website : www.dadabhagwan.org, www.dadashri.org